

श्रीवीतरागाय नमः।

आगमपाठानुकूल अधिकमास को और उस के दूनों पक्षों को और ३० दिन रात्रि को गिनती में लेना और श्रीपर्युषणपर्व ५० दिने करना तथा चतुर्दशी का क्षय होने पर पर्व तिथि रूप पूर्णिमा अमावास्या को और वृद्धि होने पर उदययुक्त पूर्ण प्रथम चतुर्दशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य अवश्य करना तत्सुबोधिनी—

श्रीप्रश्नोत्तरमंजरी।

प्रणम्य श्रीजिनंवीरं ध्यात्वादेवीं सरस्वतीं।
क्रियते शास्त्रपाठेन श्रीप्रश्नोत्तरमंजरी ॥१॥

श्री वीर जिन परमात्मा को नमस्कार और सरस्वती देवी का ध्यान करके शास्त्रपाठों के द्वारा श्रीप्रश्नोत्तरमञ्जरी नामक ग्रन्थ रचाता हूं ॥ १ ॥

[प्रश्न] १२ पर्वतिथि एक मास में तो वर्ष की १४४ इन में भी वेशी न होने का शांति विजय जी ने जैनपत्र में लिखा है तो अधिक मास की तिथि गिनती में आवे या नहीं।

[उत्तर] सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में साफ पाठ है कि—

३०० त्रीणिअहोरात्रशतानि ८३ त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्ठिभागा अहोरात्रस्य एतावदहोरात्रप्रमाणो ऽभिवर्द्धित संवत्सर उपजायते। इति।

देखिये—अधिक मास की तिथि गिनती में आती है अतएव उपर्युक्त पाठ में टीकाकार श्री मलयगिरि जी महाराज ने एक अहो रात्रि के ६२ भाग करना उस में से ४४ भाग युक्त ३८३ रात्रि दिन की तिथि प्रमाणवाला अभिवर्द्धितवर्ष बतलाया है इसी कारण से १२ पर्व तिथि एक मास की तो अभिवर्द्धित वर्ष के १३ मास संबंधी कुल १५६ पर्व तिथियां होती हैं । तथापि तपगच्छ वाले शांति विजय जी आदि अभिवर्द्धितवर्ष की १४४ पर्व तिथि और सवतिथियां ३६० उस वर्ष में मानते हैं सो प्रिय बंधुओं का यह मंतव्य आगम समत नहीं है।

[प्रश्न] शांतिविजय जी ने जैनपत्र में लिखा है कि अगर अधिकमास गिनती में लेवें तो कल्याणिक तिथि के रोज पुनरुक्ति दोष आता है। यानी तीर्थंकरों के कल्याणक दो दो दफे करना पड़ेगा फर्ज करो कि श्रावण महीने दो हुव तो क्या श्रावण सुदी पंचमी के रोज जो तीर्थंकर नेमनाथ जी का जन्मकल्याणक आता है उस को दो दफे करोगे या एक दफे इस बात को सोचे यह उन का लेख शास्त्रसंमत है या नहीं ?

[उत्तर] प्रियपाठकवृन्द ! पुनरुक्ति दोष उस को कहते हैं कि जैसे एकवार किसी वस्तु का [उक्ति] कथन करके पुनः दूसरी वार उसी का [उक्ति] प्रतिपादन करना । परन्तु जप तप सामायिक नियम आदि धर्मकृत्य पुनः पुनः करने से पुनरुक्ति दोष नहीं आता है। तथापि विद्वदवर्य्य श्रीशांतिविजय जी कल्याणिकतप दो द करने मे पुनरुक्ति दोष बतलाते हैं यह विषय विद्वान पुरुषों के विचारणीय है। अस्तु, तीर्थंकरों के च्यवनादि कल्याणिक दिनों के जो तपस्या की जाती है उस मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं जसे तीर्थंकर श्रीनेमनाथजी का जन्मकल्याणक श्रावण शुक्ल को एकवार हुआ है अतएव उस कल्याणकतिथि की तपस्या भी

उसी दिन एकवार खरतरगच्छ तपगच्छ आदि संप्रदाय वाले करते हैं। इसलिये शांतिविजयजी का लिखाहुआ ऊटपटांग पुनरुक्ति दोष कदापि नहीं आसकता। परन्तु श्रावण भाद्रपद आदि मासों की वृद्धि होने पर अधिकमास की गणना अवश्य की जाती है। देखिये—

श्रीसूयप्रज्ञप्तिसूत्र टीका का पाठ। यथा

पुरिणमपरियट्टपुण। बारसमासेहवइचंदो। तेरसय चंदमासा। वासो अभिवड्ढिओय नायव्वो॥ १॥

अर्थ—एक पूर्णिमा के परावर्तन से १ चन्द्रमास होता है ऐसे १२ मासों का एक चद्र वर्ष होता है और ऐसे ही १३ मासों का एक अभिवर्द्धित वर्ष होता है— तथापि तपगच्छ वाले अभिवर्द्धित वर्ष के १२ मास मानते हे इसलिये इन लोगों का यह मन्तव्य आगमानुकूल नहीं है।

[प्रश्न] शांतिविजयजी जैनपत्र मे लिखते हैं कि अधिकमास कालपुरुष की चोटी के समान है जेसे हरशख्स का शरीर मापा जाता हे मगर चोटी नहीं मापी जाती इसी तरह अधिकमास गिनती मे नहीं लिया जाता यह उनका लेख सत्य है वा असत्य।

[उत्तर] अधिक मास गिननी मे नहीं लिया जाता, यह लेख नो प्रत्यक्ष महामिथ्या है क्योंकि उपर्युक्त पाठों से तथा [वक्ष्यमाण] जो पाठ आगे चलकर बतलाये जायगे उन से भी यही सिद्ध होना है कि तीर्थंकर गणधर आचार्य आदि शास्त्रकारों ने अधिकमास को गिनती मे स्पष्ट रूप से लिया है।

और श्रीदशवैकालिकसूत्र की वृहट्टीका मे पाठ है कि।

अतिरिक्ता उचितकालात् समाधिका अधिकमासकाः प्रतीताः अधिकाः संवत्सराश्चषष्टयाब्दाद्यपेक्षया कालइति कालचूडा इति।

अर्थ—उपर्युक्त पाठ मे श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज ने लिखा है कि उचित काल के उपरांत अधिकमास और ६० वर्ष आदि की अपेक्षा से जो अधिकसंवत्सर होते हैं वे कालपुरुप के शिरपर चूड़ा [उष्णीका] समान हैं जैसे तीर्थंकर महाराजों के शिरपर-स्थित चूलिका [उष्णीका] और तीर्थंकर महाराजों का शरीर मापा जाता है तो उष्णीका सहित १२० अंगुल ऊंचा होता है देखिये—कल्पसुवोधिकाटीका मे पाठ-यथा

तीर्थंकरस्तुद्वादशांगुलोष्णीका [चूड़ा] सद्भावेन विंशत्यधिकशतांगुलोचोभवति इति—

अर्थ—तपगच्छ के श्रीविनयविजयजी उपाध्याय महाराज ने उक्तपाठ में लिखा है कि तीर्थंकरों के शिरपर १२ अंगुल की उष्णीका [चूड़ा, शिषा, चूला, चूलिका] होती है अतएव उष्णीका के माप सहित १२० अंगुल के ऊंचे श्रीतीर्थंकर महाराज होते हैं उसी तरह कालचूड़ा [चूलिका] रूप जो उत्तम अधिक मास की गिनती सहित अभिवर्द्धितवर्ष १३ मासों के गिनती वाला सिद्धांतकारों ने स्पष्ट वताया है अतएव अधिक मास अवश्य प्रमाण कोटी मे है तथापि मनःकल्पित दुराग्रह से शांतिविजय जी आदि तपगच्छीय लोग अधिकमास को गिनती मे नहीं मानते हैं अस्तु. प्रियपाठकगण ! यहां विचार करने का विषय यह है कि प्रथमभाद्र मास की पूर्णिमापर्यंत १२ मास का जो उचित काल है उस के अंतभाग मे कालपुरुष की चोटी के समान १३ वां दूसरा अधिक भाद्रपदमास यदि शांतिविजयजी के कथनानुसार पुरुष के शिर पर चोटी की तरह गिनती मे नही है तो आगमप्रतिकूल ८० दिने दूसरे अधिक भाद्रपद मे पर्युषण पर्व जप तप पूजा, प्रतिक्रमण पौषधादि वार्षिकपर्वसंवंधी जो २ धर्म कर्त्तव्य तपगच्छवाले करते हैं वह भी गिनती में नहीं आना चाहिये ।

अतएव श्रीशांतिविजयजी से मित्रभावपूर्वक मेरा यह प्रश्न है कि मस्तक के अंतभाग में पुरुष की चोटी के समान १२ मास के अंतभाग में चोटी की तरह १३ वां दूसरा अधिकभाद्रमास गिनती में नहीं है तो श्रीतीर्थंकरमहाराज की प्रतिमा के शिर पर अंतभाग में जो शिखा [चूलिका] उस की पूजा श्रावक लोग करते हैं सो तपगच्छवालों की गिनती में है या नहीं? यदि गिनती में है तो कालपुरुष की चूलिका रूप उत्तम अधिकमास को भी शास्त्रकारों ने गिनती में लिया है अतएव आप लोगों को भी शास्त्रानुसार अधिकमास को गिनती में प्रमाणित कर के ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व करना उचित है अन्यथा ८० दिने पर्युषणपर्व युक्त कालपुरुष की चोटी के सदृश दूसरा अधिकभाद्रमास आप के लेखानुसार गिनती में नही आवेगा तो आप ही को पूर्ण आपत्ति होगी, और भी आप से यह पूछा जाता है कि पञ्चपरमेष्ठी पदों के ऊपर। एसोपंचनमुकारो इत्यादि ४ चूलिकापद शास्त्रकारों ने बताया है परन्तु ढूंढिये लोग प्रमाणित नहीं करते उसी प्रकार आप भी कालपुरुष की चूलिकारूप अधिक मास की तरह उक्त पदों को गिनती में गिनते हैं या नहीं? इसी प्रकार दशवैकालिकसूत्र के १० अध्ययन के ऊपर दो भावचूलिका तीर्थंकर श्रीसीमधरस्वामी की बताई हुई आप गिनती में मानते हैं वा कालचूला रूप अधिकमास की तरह नही मानते? पुन मेरुपर्वत के ऊपर ४० योजन की क्षेत्र चूलिका है वहा पर विद्यमान श्रीजिनमन्दिर तथा जिनप्रतिमा इत्यादि आप गिनती में मानियेगा या ढूंढियों की तरह अथवा कालचूलिकारूप अधिकमास की तरह न मानियेगा? इसी तरह शास्त्रकारों ने द्विपदसचित्तद्रव्यचूलारूप श्रीतीर्थंकर महाराज तथा चक्रवर्त्ती आदिकों, और चतुष्पदसचित्तद्रव्यचूलारूप हस्ती आदि, अपदसचित्तद्रव्यचूलारूप कल्पवृक्षादिकों को बताया है एव शास्त्रोक्त अनेक विषयों को आप गिनती की प्रमाण

कोटी में मानियेगा, या कालचूलारूप और पुरुष की चोटी के समान दूसरा अधिकभाद्रपद आदि अधिकमासों की तरह न मानियेगा?

पाठकगण! आप ही लोग निष्पक्ष विचार कीजिये कि शास्त्रों में ६ चूलिका लिखी हैं यथा—प्रथम, नामचूलिका दूसरी स्थापना चूलिका, तीसरी द्रव्यचूलिका, चौथी क्षेत्रचूलिका, पांचवीं काल चूलिका, छट्ठीं भावचूलिका, इन ६ चूलिकाओं में प्रथम नाम २ स्थापना ३ द्रव्य ४ क्षेत्र ६ भाव, इन चूलिकाओं को मानना और ५ कालचूलिका को न मानना इस में जबतक कोई पुष्ट प्रमाण न दिया जायगा तब तक, अर्द्धजरतीन्याय की भांति श्री शांतिविजयजी आदि तपगच्छवालों का कथन कैसे प्रमाणित हो सकता है। क्योंकि कालचूला रुप दूसरा अधिकमास को श्रीतीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महानुभाव उत्तमपुरुषों ने १३ मास २६ पक्ष ३८३ रात्रिदिन की गिनती में स्पष्ट गिना है तथापि आप लोग आगमविरुद्ध अपनी कुतर्कणा से दूसरा अधिकभाद्र मास को गिनती में न लेने का परमाग्रह किया है न जाने दूसरा अधिकभाद्र आप लोगों का क्या विगाड़ किया है इसको विचार कर उत्तर प्रकाश कीजिय।

क्योंकि श्रीआचारांगसूत्र टीकामें पाठ है कि—

चूड़ायानिक्षेपः नामादिड्षविधः नामस्थापने क्षुसे द्रव्यचूड़ा व्यतिरिक्ता सचित्ता कुक्कुटस्य, अचित्ता मुकुटस्य चूड़ामिश्रामयूरस्य क्षेत्रचूड़ा लोकनिष्कुटरूपा,—

कालचूड़ा, अधिकमासकस्वभावा, भावचूड़ा त्वियमेव, क्षयोपशमित्वात्, इत्यादि।

अर्थ—चूड़ा [चूलिका] रूप पदार्थ के ६ प्रकार का [निक्षेप] भेद है यथा १ नामचूलानिक्षेप, २ स्थापनाचूलानिक्षेप, ३ द्रव्य

चूलानिक्षेप, यह तीनप्रकार का है। मुरगे के शिरपर कलगीरूप सचित्तद्रव्यचूलानिक्षेप, और मुकुट में मणिरूप [हीरा] अचित्त द्रव्यचूलानिक्षेप, तथा मयूर के शिरपर कलंगीरूप मिश्रद्रव्य चूलानिक्षेप, ४ लोकनिष्कुटरूप, क्षेत्रचूलानिक्षेप, और ५ अधिकमास स्वभाव रूप, कालचूलानिक्षेप, ६ क्षयोपशमिकभाव वर्त्तित्व से आचारांग चूलिका अध्ययनरूप भावचूलानिक्षेप कहा जाता है अब सुनिये—तपगच्छवालों को उपर्युक्तसर्वचूलानिक्षेप गिनती में मानने पडेंगे अन्यथा जैसे ढुंढियेलोग मन.कल्पित अनेक कुतर्क द्वारा स्थापनारूप चूलानिक्षेप को गिनती में नहीं मानते हैं अतएव दूसरा [स्थापना] निक्षेप के उत्थापन से दोषभागी होते हैं उसी तरह अगर आपलोग भी कालचूलानिक्षेप रूप अधिकमास को गिनती में न मानियेगा तो पांचवा कालचूला निक्षेप को उत्थापन करने का अवश्य दोषभागी बनियेगा इसमें संशय नहीं है।

[प्रश्न] शांतिविजय जी ने जैनपत्र में लिखा है कि—सूत्र आवश्यकनिर्युक्तिप्रतिक्रमण अध्ययन में साफपाठ है कि—

जइ फुल्ला कणियारया चूअग ।
अहिं मासयंमि घुट्ठंमि ॥
तुह न खमं फुल्लेउं। जइ—
पच्चंता करिंति डमराइं ॥१॥

इस का माइना यह हुआ कि हे आम्रवृक्ष अधिकमास की उद्घोषणा सुनकर कनेरवृक्ष की तरह जल्दी मत फुल जाना क्योंकि वनस्पतियों में तू प्रामाणिकवृक्ष है,इस से साबित हुआ कि अधिकमहीना गिनती में नहीं होना इसलेख में सत्यासत्य क्या है।

[उत्तर] आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा वता कर उस का माइना लिख के अन्त में आगम विरुद्ध अपनीवुद्धि से जो लिखा है कि इस से सावित हुआ कि अधिकमहीना गिनती में नहीं लेना सो यह लिखना उक्त शास्त्रपाठों से विरुद्ध है अतएव असत्य है। देखिये और भी श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति का मूलसूत्रपाठ यथा—

भयवं अभिवड्ढियसंवच्छरस्स कियाइंपक्खाइं गोयमा अभिवड्ढियसंवच्छरस्स छविसाइं पक्खाइं, इति।

अर्थ—गणधर श्री गौतमस्वामी ने तीर्थकर श्रीवीरप्रभु से प्रश्न किया कि, हे भगवन् अभिवर्द्धितसंवत्सर के कितने पर्व [पक्ष]होते हैं, तव तीर्थंकर वीरप्रभु ने अधिकमास के दोपक्षों को गिनती में लेकर उत्तर दिया कि, हे गौतम ! अभिवर्द्धितसंवत्सर के २६ [छब्बीस] पक्ष होते हैं। परन्तु शांतिविजय जी आदि महाशय अभिवर्द्धितवर्ष में २६ पाक्षिक प्रतिक्रमण कर के भी अधिकमास के दो पक्षों को गिनती में मायावृत्ति से न मान कर अभिवर्द्धितसंवत्सर के २४ पक्ष सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के खामणे में मिथ्या वोलते हैं। पाठकगण ! टुकविचार से देखिये कि तीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महानपुरुषों के आगमानुसार अधिकमास को गिनती में लेकर १३ मास २६ पक्ष ३८३ रात्रि-दिन के स्थान में ३६० रात्रिदिन को अभिवर्द्धितवर्ष के सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के अब्भुठ्ठिये में न वोल कर तपगच्छवाले अपनी मति कल्पना से चन्द्रवर्ष सम्वन्धी १२ मास २४ पक्ष ३५४ रात्रि-दिन के स्थान में ३६० रात्रिदिन का पाठ अभिवर्द्धितवर्ष के सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में वोलते हैं इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि उन लोगों का यह मंतव्य वीरपरमात्मा तथा गणधर आदि महाराजों के उपर्युक्त वचनानुकूल नहीं है तौभी निरर्थक अपनेमुख से पुकारते हैं कि हम तीर्थंकरों के वचनानुसार चलते हैं, यह वड़े आश्चर्य्य की वात है, अस्तु, अव देखिये।

अधिकमास को गिनती में न लेने का प्रमाण शांतिविजयजी ने आवश्यकसूत्रनिर्युक्ति की जो गाथा बताई है उस में [काणियारयाअहिमासयंमि फुल्ला] इत्यादि शब्दों से श्री भद्रबाहु स्वामी ने जैनटिप्पने के अनुसार पौष आषाढ इन दो अधिक मासों में कनेरवृक्षों का फूलना बताया है किन्तु आम्रवृक्ष का नहीं, क्योंकि आम्र प्राय बसत ही में विकशित होता है और कनेर का कोई नियम नही है परन्तु उक्त गाथा में अधिकमास को गिनती में न लेने का तात्पर्य कदापि नहीं सिद्ध होता है, अतएव निर्युक्तिकार महाराज के वाक्यों से तथा अन्य आगम पाठों से भी विरुद्ध, प्रत्यक्ष मिथ्या आप का अभिप्राय बुद्धिमान लोग कैसे प्रमाणित कर सकते हैं, अस्तु आप ही परामर्श कीजिये यदि आपलोग उचितकालोपरांत दूसरेभाद्रपद अधिकमास को गिनती में न लीजियेगा तो उक्त निर्युक्तिगाथानुसार उत्तम प्रामाणिक आम्र की भांति स्वाभाविक प्रथमभाद्र में आगमानुसार ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व करके प्रसन्नता से आपलोगों का भी फूलना समुचित होगा, अन्यथा [पचंता] याने अप्रामाणिक कनेर की तरह अस्वाभाविक अर्थात् दूसरे अधिकभाद्र में आगमप्रतिकूल ८० दिने पर्युषणपर्व कर के तपगच्छवालों का फूलना सर्वथा अनुचित है या नहीं ? और भी आगे देखिये—श्रीदशवेकालिकसूत्रचूलिकाध्ययन में निर्युक्ति तथा टीका सम्बन्धी पाठ है कि—

अइरित्त अहिगमासा । अहिगासंवच्छरा अकालंमि ॥
भावेखउवसमिए । इमाउ चूडा मूणेअव्वा ॥२८॥

व्याख्या—अतिरिक्ता उचितकालात् समधिका अधिकमासका प्रनीता अधिका सवत्सराश्च पठ्यन्दाद्यपेक्षया काल इति काल चूडा ।

अर्थ=इसपाठ में श्रीभद्रबाहुस्वामी तथा हरिभद्रसूरिजी महाराज ने १२ मासों का जो उचितकाल उस के उपरांत १३

तेरहवां दूसराभाद्रपद आदि मासों को अधिकमास बताया है, एवं ६० वर्षों के उपरांतअधिक संवत्सर भी होने को लिखा है, प्रियबन्धुगण ! अतएव श्रीशांतिविजयजी से न्यायपूर्वक मित्र भाव से पूछाजाता है कि, जैसे, निर्युक्तिकार टीकाकार इत्यादि महानुभावों के कहे हुवे अधिकमासों को आप गिनती में नहीं मानते हैं उसीतरह उपर्युक्त महाराजों का निश्चय कियाहुआ अधिकसंवत्सर आपलोग गिनती में स्वीकार करते हैं या नहीं ? यदि उक्तसंवत्सर गिनती में स्वीकार कर के उसवर्ष में ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व करते हों, तब तो अधिकमास को भी गिनती में मान कर आगमवचनानुकूल ५० दिने दूसरेश्रावण, वा, भाद्र मास में श्रीपर्युषणपर्व करना आपलोगों को उचित है, यदि अधिकसंवत्सर को गिनती में न मानते हों तो दूसरे अधिक भाद्रपदमास में आगमवचनो से विरुद्ध ८० दिने आपलोगों का पर्युषणपर्वसम्बन्धी धर्मकृत्य भी गिनती में न्यायतः कदापि न लिये जायंगे। इस को आपहीलोग मध्यस्थभाव से विचारिये कि सर्वथा सिद्धान्तप्रतिकूल ८० दिने नपुन्सक दूसरे भाद्रपद [अधिक, लोण, मल] मास में आप लोग पर्युषणपर्व करते हैं और निर्युक्तिकारोक्त [अइरित्त अहिगमासा] इस वाक्यानुसार बारहमासों के अनन्तर तेरहवां भाद्रपद अधिकमास को गिनती में नहीं मानते, पुनः निर्युक्तिकारोक्त [अहिगासंवच्छरा अकालंमि] इस वाक्य से ६० वर्ष के अनन्तर अधिकसंवत्सर में पर्युषणपर्व करके उसवर्ष को गिनती में मानते हैं, प्रियपाठकगण ! इस प्रकार शास्त्रोक्त प्रमाणो में बलात्कार अपने आग्रह से एक वचन को मानना और दूसरे को, न मानना यह परस्पर विषमवाद विशुद्ध जैन सिद्धान्तों में उत्पन्न करना क्या सर्वथा अन्याय नहीं है ?

[प्रश्न] ता० २७ जुलाई १९१३ के जैनपत्र में शांतिविजयजी

ने लिखा है कि वर्ष में १४४ पर्वतिथि से ज्यादापर्वतिथि कहां से आवेगी - सूर्यसंवत्सर चन्द्रसंवत्सर के भेदों को अच्छी तरह समझना चाहिये, इसलेखमें सत्यासत्य क्या है ?

[उत्तर] सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकामें स्पष्टपाठहै कि,

सूर्यसंवत्सरसत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो युगेच सूर्यमासाः षष्टि स्ततो भूयोपि सूर्यसंवत्सरसत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोधिकमासोभवति -उक्तंच सठीए अइयाए । हवइहु अहिमासगो जुगद्धंमि ॥ बावीसे पव्व सए । हवइ हुवी ओजुगंतंमि ॥१॥

इसपाठ में श्रीमलयगिरिजीमहाराज लिखते हैं कि सूर्य संवत्सर सम्बन्धी ३० मास वीत जाने पर एक अधिकमास होता है और एकयुग में ६० सूर्यमास होते हैं इसलिये पुन सूर्य संवत्सर सम्बन्धी ३० मास बीत जाने पर दूसरा अधिकमास होता है, इसीबात को पूर्वाचार्यमहाराजों ने भी कहा है कि श्रावणवदी १ से ६० पक्ष व्यतीत होने पर युग के मध्यभाग में ३१ वा दूसरा पौषमास जैनटिप्पने के अनुसार एक अधिक होता है, और उसी श्रावणवदी १ से १२२ पक्ष वीत जाने पर युग के अन्तभाग में ६२ वा दूसरा आषाढमास अधिकहोता है और **[जत्थ अधिमासगो पडतिवरिसेतं अभिवड्ढिय वरिसं-भण्णति जत्थ ण पड़ति तंचंदवरिसं]** इस निशीथचूर्णी-पाठ से जिसवर्ष में अधिकमास आपडे उसवर्ष को अभिवर्द्धित वर्ष कहते हैं और जिसवर्ष में अधिकमासन हो उस को चन्द्रवर्ष कहते हैं, प्रियपाठकगण। दुकविचार से देखिये कि उपर्युक्त पाठों में सूर्यसंवत्सर सम्बन्धी ३० मास वीत जाने पर १ अधिकमास होने को लिखा है और वह अधिकमास जिसवर्ष में हो उस को शास्त्रकारों ने १३ मास का अभिवर्द्धितवर्ष लिखा है और अधिक मास जिस वर्ष में न हो उस को १२ मास का चन्द्रवर्ष लिखा है,

इसलिये श्रीयुत् शान्तिविजयजीको यह लिखना उचित था कि अभिवर्द्धितसंवत्सर, चन्द्रसंवत्सरके भेदों को अच्छी तरह समझना चाहिये परन्तु ऐसा न लिखकर अभिवर्द्धितसंवत्सर के स्थान में सूर्य संवत्सर को समझने की आज्ञा देना कैसा है जैसे [माल खाना माटीका गीत गाना वीराका] ठीक इसी तरह श्रीशान्तिविजयजी महाशय १२ मास का उचित का लंकेवाद १३ वां दूसरा भाद्रपदअधिक [मल] मास में ८० दिने पर्युषणपर्व करते हैं और उस वर्ष को अभिवर्द्धित संवत्सर बोलते हैं एवं अधिकमास के अभाव से अन्यवर्ष को चन्द्रवर्ष बोलते हैं और सूर्यसंवत्सर चन्द्रसंवत्सर के भेदों को समझाने की गीत गाते हैं यह किस के घरका न्याय है, अथवा-शांतिविजयजी का यह लिखना यदि निष्कपट होता तो आगमोक्त प्रमाणों के अनुसार चन्द्रसंवत्सर अभिवर्द्धितसंवत्सर के मास, पक्ष, पर्व तिथि, आदि समस्त भेदों को गिनती के साथ सत्य बतलाना उन को उचित था, यतः श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति, चंदप्रज्ञप्ति, मूलसूत्र में तथा टीका में स्पष्ट पाठ है कि ।

चन्द संवच्छरस्स चउवीसाइं पव्वाइं तच्चसणं अभिवड्ढिय संवच्छरस्स छवीसाइं पव्वाइं ।

चन्द्रसंवत्सरस्य २४ चतुर्विंशतिः पर्वाणि [पक्षाणि] भवंति अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य २६ षड्विंशतिः पर्वाणि [पक्षाणि] तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात् ।

इस पाठ में अर्थतः श्रीवीरतीर्थंकर भाषित सूत्रतः श्रीगणधर महाराज रचित मूल पाठानुसार टीकाकार श्रीमलयगिरिजी महाराज लिखते हैं कि, चन्द्रसवत्सर के २४ पक्ष होते हैं और अभिवर्द्धितसवत्सर के २६ पक्ष होते हैं क्योंकि अभिवर्द्धितवर्ष १३ मासों का होता है अतएव २६ पक्ष गिनती में लिये जाते हैं, प्रियपाठकगण ! अब आपलोग विचारिये कि एक पक्ष में द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या वा

पूर्णिमा, ए ६ पर्वतिथियां होती हैं और चन्द्रसंवत्सर के २४ पर्वों की १४४ पर्वतिथियां होती हैं, इसी तरह १३ मास का अभिवर्द्धित संवत्सर के २६ पर्वों की सब तिथियां १५६ अवश्यमेव होती हैं, तथापि, शांतिविजय जी महाशय १२ मासों का जो उचितकाल उस के अनन्तर १३ वाँ दूसरे भाद्रपद अधिक [नपुंसक, लोण मल,] मास सम्बन्धी ३० दिनों को गिनती में न गिनने के लिये मिथ्या कदाग्रह से उस मास की १२ पर्वतिथियों का लोप कर के बाल जीवों को उत्तर प्रदान करने के लिये जैन पत्र में निरर्थक लेख लिखा कि, वर्ष में १४४ पर्वतिथियों से ज्यादा पर्वतिथि कहां से आवेंगी, वास्तव में उक्त महाशय जी का लिखना चन्द्र वर्ष की अपेक्षा से तो सत्य है परन्तु अभिवर्द्धितवर्ष सम्बन्धी १५६ पर्वतिथियों की अपेक्षा से तो प्रत्यक्ष मिथ्या प्रतीत होता है।

[प्रश्न] महाशय शांतिविजय जी ता० २७ जुलाई १९१३ के उसी जैनपत्र में लिखते हैं कि अगर कोई इस दलील को पेश करे कि क्या अधिकमास की १२ पर्वतिथियों के रोज व्रत नियम नहीं करना तो उस के जवाब में मालुम हो कि जो जो नित्य के कर्त्तव्य कार्य हैं वह करना मगर वार्षिकपर्वकर्त्तव्य कल्याणिक कर्त्तव्य नहीं करना इस लेख में सत्यासत्य क्या है ?

[उत्तर] प्रियपाठकवृन्द ! देखिये—शांतिविजय जी के मायाचारी की पोलपट्टी सब खुल गई क्योंकि उक्त महाशय जी उसी जैन पत्रसम्बन्धी अपने लेख में प्रथम लिख चुके हैं कि वर्ष में १४४ पर्वतिथि से ज्यादा पर्वतिथि कहां से आवेंगी इस वाक्य से एकमास की १२ पर्वतिथि के हिसाब से प्रथमश्रावण वा प्रथमभाद्रपदमास पूर्ण पर्यंत १२ मास की १४४ कुल पर्वतिथियोंको गिनती के साथ सामान्य से उक्त धर्मबन्धु ने अंगीकार कर ली, और अब उक्तलेख के नीचे लिखते हैं कि अगर कोई इस दलील

को पेश करे कि क्या अधिक महीने की १२ पर्वतिथि के रोज व्रत नियम नहीं करना तो उस के जवाव में मालुम हो कि जो जो नित्य के कर्त्तव्य कार्य हैं वह करना, इस वाक्य द्वारा उक्त महात्मा जी ने विशेषता से दूसरे श्रावण वा दूसरे भाद्रपद अधिक महीने की १२ पर्वतिथियों के रोज व्रत नियम करने की आज्ञा देकर उस अधिकमास की १२ पर्वतिथियों को गिनती पूर्वक मानना स्पष्ट वता चुके हैं अतएव १३ मास का उस अभिवर्द्धितवर्षमें कुल १५६ पर्वतिथि उक्त महाशय के लेखानुसार अवश्यमेव होती हैं। अन्यथा अधिकमास को १२ पर्वतिथियों के दिन व्रत नियम करने की आज्ञा देकर अधिकमास की १२ पर्वतिथियों को गिनती में नहीं मानने से तपगच्छवालों का उक्त १२ तिथियों में किया हुआ व्रत नियमादि कर्त्तव्य गिनती में किस तरह गिना जायगा इस को शोच कर धर्मबन्धुशांतिविजयजी को उत्तर प्रकाश करना आवश्यक है। और जैसे उक्त महात्मा जी अधिकमाससम्वन्धी १२ पर्वतिथियों के रोज व्रतादि नित्यकर्त्तव्य धर्मकार्यों को करना लिखा है उसी तरह आगम वचनानुकूल आषाढ़चातुर्मासी से ५० दिने वर्तमानकाल में प्रतिवर्ष श्रीपर्युषणपर्व सम्बन्धी ८ दिन के नित्य धर्मकर्त्तव्य कार्य हैं वह प्रथमभाद्रपद में वा दूसरे श्रावण में ५० दिने क्यों नहीं करते हैं अगर कहो कि दूसरे श्रावण अधिकमास की ३० तिथियों को और दूसरे भाद्रपद अधिकमास की भी ३० तिथियों को हम गिनती में नहीं मानते हैं तो हम आप से पूछते हैं कि दूसरे श्रावणमास की ३० तिथियों के और दूसरे भाद्रपद अधिकमास की ३० तिथियों के व्रत नियमादि नित्य के कर्त्तव्य तथा ५० दिने पर्युषणपर्व तपगच्छवाले गिनती में किस प्रकार मानेंगे, इस वात को भी अच्छी तरह सोच कर उक्त महाशय जाहिर करें क्योंकि तीसरे दिने द्वितीयादि और १५ वें दिने पाक्षि-कादि पर्व तिथियों के कर्तव्यों को तो आप नित्य के मान कर करेंगे

और आषाढचातुर्मासी से ५० वें दिन श्रीपर्युषणापर्वतिथि के ८ दिन सम्बन्धी कर्तव्य प्रत्येकवर्ष में नित्य के न मान कर ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास में करेंगे यह किस के घर का न्याय है अस्तु. अब श्रीशांतिविजय जी से मित्र भाव पूर्वक हम यह पूछते हैं कि आप ने अधिक महीने की पर्वतिथियों के रोज व्रत नियमादि नित्य के कर्तव्य करने को लिखा है और वार्षिकपर्व कर्तव्य कल्याणिक कर्तव्य नहीं करना लिखा है इस से सबूत होता है कि दूसरे भाद्रपदमास की ३० तिथियों में तपगच्छवालों को कल्याणिक कर्तव्य और वार्षिकपर्व कर्तव्य करना उचित नहीं है क्योंकि [अइरित्त अहिगमासा । अतिरिक्ता उचितकालात् समधिका अधिकमासकाः प्रतीताः] दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति तथा टीकासम्बन्धी इन वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रथमभाद्र पूर्णपर्यंत १२ मास का उचितकाल से तेरहवा अनुचित दूसराभाद्रपद अधिकमास है अतएव आप लोग उस दूसरे भाद्रपद अधिक [लोण, नपुंसक, मल] मास में सिद्धान्त विरुद्ध ८० दिने जो वार्षिक पर्युषणापर्व करते हैं वह आगम वचनों से सर्वथा प्रतिकूल है।

देखिये—श्रीसमवायागसूत्र तथा टीकासम्बन्धी पाठ यथा—

(मूल) समणेभगवं महावीरे वासाणं सवीसइराइमासे वइक्कंते सत्तरिएहिंराइंदि एहिं सेसेहिं वासा वासं पज्जोसवेइ ॥

(टीका) पंचाशति प्राक्तनेषुदिवसेषु तथा विधवमत्यभावादि कारणे स्थानान्तर मप्याश्रयति अति भाद्रपद शुक्ल पंचम्यांतु वृक्षमूलादावपि निवसतीतिहृदयमिति ॥

दूसरा प्रमाण—श्रीस्थानागसूत्र टीका सम्बन्धी पाठ यथा।

यत्रसंवत्सरेऽधिकमासकोभवति तत्राषाढया: विंशतिदिनानि यावदनभिग्रहिक आवासो अन्यत्र [चंद्रसंवत्सरे] सविंशति रात्रंमासं पंचाशतंदिनानीति।

अर्थ—उपर्युक्त मूल पाठ में गणधर श्रीसुधर्मस्वामी महाराज तथा टीका पाठ में खरतरगच्छनायक नवांगीटीकाकार श्रीमान् अभयदेवसूरिजी महाराज लिखते हैं कि जिससंवत्सर में अधिक मास होता है उस अभिवर्द्धितवर्ष में आषाढ़चातुर्मासी से २० दिन यानी श्रावणशुक्लपञ्चमी पर्यंत और अन्यत्र यानी चन्द्रवर्ष में अधिकमास न होने के कारण आषाढ़चातुर्मासी से २० रात्रि सहित एकमासपर्यंत यानी प्रथम के ५० दिनो में तथा विध रहने योग्य स्थान के अभावादि कारणो से श्रीवीरप्रभु दूसरे स्थान का भी आश्रय करते हैं परन्तु चन्द्रवर्ष में निकट भाद्रपदशुक्ल पञ्चमी को तो ७० दिन शेष चातुर्मासी के रहते वृक्षमूल आदि स्थानो में भी श्रीवीरपरमात्मा निवासरूपपर्युपण करते हैं, इस प्रकार सूत्रकार श्रीसुधर्मस्वामी के कहने का [हृदय] तात्पर्य हैं।

[प्रश्न] मासवृद्धि के अभाव से चन्द्रवप सम्बन्धी श्रीसमवायांगसूत्रपाठ को यदि तपगच्छवाले अभिवर्द्धितवर्ष में मानते हैं तो। [समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वइक्कंते] इस समवायांग मूलसूत्र के प्रथम वाक्यानुसार श्रीवीरपरमात्मा की तरह ५० दिने स्वाभाविक प्रथम भाद्रपदशुक्लचतुर्थी को श्रीपर्युषणपर्व करना उन को उचित है अन्यथा-अस्वाभाविक दूसरे भाद्रपद अधिक [नपुंसक, लोण, मल,] मास में शुक्ल ४ को ८० दिने आगमविरुद्ध तथा उक्त वाक्य को प्रत्यक्ष वाधाकारी पर्युषणपर्व क्यों करते हैं, क्या श्रीवीर तीर्थकर की आचरणा और उक्त समवायांग वाक्य को इसी प्रकार मानना उचित है।

[उत्तर] [सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ] अर्थात वर्षाकाल में पर्युषण के बाद मास वृद्धि न होने के कारण जघन्यता से ७० रात्रिदिन शेषकाल साधुओं को उसीक्षेत्र में स्थिति कर के रहना चाहिये अतएव तत्सम्बन्धी समवायांगसूत्र के इस दूसरे वाक्य को तपगच्छवाले मानते हैं इसी कारण उपर्युक्त समवायागसूत्र के प्रथमवाक्य को न मान कर तदनुसार ५० दिने स्वाभाविक [उचित] प्रथमभाद्रपद सुदी ४ को श्रीपर्युषणपर्व वीरप्रभु की तरह न कर के हीरी के स्थान में चीरी का विवाह की तरह अस्वाभाविक [अनुचित] दूसरे भाद्रपद अधिकमास में ८० दिने पर्युषणपर्व करते हैं।

[प्रश्न] वाह श्रीसमवायागसूत्र के एक वचन को न मानना और दूसरे वचन को मानना तपगच्छवालों का यहमन्तव्य क्या उचित है !

[उत्तर] नहीं, हां चन्द्रवर्ष में अधिकमास न होने के कारण से उक्त पाठ के प्रथम वाक्यानुसार ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व किये बाद उक्त दूसरे वाक्य से ७० रात्रिदिन शेष रहते हैं, अतएव उक्त समवायाग पाठ को चन्द्रवर्ष सम्बन्धी मानना आगमानुयायी खरतरगच्छवालों का यह मन्तव्य चूर्णि तथा टीकादि पाठानुकूल समुचित है।

[प्रश्न] तपगच्छवाले कहते हैं कि ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास में पर्युषणपर्व किये बाद ७० रात्रिदिन शेष रहने का उक्त समवायागसूत्र के दूसरे वाक्य को तो हम मानते हैं अत हमारामन्तव्य नरसिंह की तरह एक पक्ष से ठीक है परन्तु ५० दिने प्रथम भाद्रसुदी ४ को पर्युषणपर्व कर के कार्तिकसुदी १४ पर्यन्त १०० रात्रिदिन शेष उस चातुर्मासिक स्थित क्षेत्र में आपलोग रहते हैं अत ७० रात्रिदिन शेष रहने सम्बन्धी उक्त समवायाग वाक्य को बाधा आती है।

[उत्तर] ५० दिने पर्युषण पर्व करने सम्बन्धी उक्त समवायांग वाक्य को वाधाकारी ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिक मास में पर्युषण पर्व करते हो अतएव एक पक्ष से आप का मन्तव्य सिद्धान्त विरुद्ध है और पर्युषणपर्व किये वाद ७० रात्रि दिन शेष रहने के एक वाक्य को तो हम मानते हैं अतः हमारा मंतव्य एक पक्ष से ठीक है यह प्रलाप भी आप लोगो का महा मिथ्या है क्योंकि कार्तिक मास की वृद्धि होने पर पर्युषणपर्व किये वाद अत्यन्त ममत्व वाला ७० रात्रि दिन शेष रहने का श्रीसमवायांग सूत्र वाक्य को वाधा न होने के कारण से ७० दिने प्रथम कार्तिक सुदी १४ को चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य न करके दूसरे कार्तिक सुदी १४ पर्यन्त १०० रात्रि दिन शेष उस क्षेत्र में रह कर यावत दूसरे कार्तिक अधिक मास में पंचमासी के स्थान में चातुर्मासिक कृत्य करते हो अतएव दूसरे पक्ष से भी ७० रात्रि दिन उस क्षेत्र में शेष रहने का जो आप लोगों का एकांत मंतव्य अखीर में अनेकांत हो जाता है, इसलिये हम आप को कहते हैं कि ७० का ७१ और ५० का ४९ दिने श्रीमद् युगप्रधान कालिकाचार्य महाराज की तरह उक्त समवायांग पाठ के ७० दिन को वाधा न समझ कर श्रीपर्युषणपर्व ५० दिने करना स्वीकार करलो अन्यथा ८० दिने यावत् दूसरे अधिकभाद्रपद मास में करने से अवश्य आज्ञाभंग दोष के भागी वनोगे इस में कोई संशय नहीं है।

[प्रश्न] तपगच्छ के श्रीविनयविजयजी उपाध्याय कल्प सूत्र की सुवोधिका टीका में लिखते हैं कि आश्विनमास की वृद्धि होने पर ५० दिने पर्युषण के वाद ७० दिने दूसरे आश्विन अधिक मास की सुदी १४ को कार्तिक चातुर्मासिक कृत्य करना उचित है, अन्यथा—कार्तिक सु० १४ को चातुर्मासिक कृत्य करने पर १०० दिन हो जाने से समवायांग सूत्र सम्बन्धी ७० रात्रि दिन शेष रहने के वाक्य को वाधा आवेगी।

[उत्तर] ५० दिने पर्युषण के बाद आश्विनमास की वृद्धि के अभाव से चन्द्रवर्ष सम्बन्धी ७० रात्रि दिन शेष रहने के समवायाग वाक्य को आप लोग पक्षातकदाग्रह से आश्विनमास की वृद्धि होने पर उस अभिवर्द्धितवर्ष में भी मानते हे इस लिये समवायागसूत्रसम्बन्धी ७० दिन शेष रहनेके वाक्य को बाधा न होने के कारण दूसरे आश्विन अधिकमास की सुदी १४ को कार्तिकचातुर्मासिककृत्य करना अङ्गीकार कोजिये, अन्यथा आप लोगों की पर्युषणपर्व के अनन्तर ७० रात्रि दिन शेष रहने की प्रतिज्ञा भग होगी और आश्विनमास की वृद्धि होने पर कार्तिक शुक्र १४ पर्यंत १०० रात्रि दिन शेष उस क्षेत्रमें रह कर भी ७० रात्रि दिन शेष उस क्षेत्रमें हम रहे हैं ऐसा बोलना भी आप लोगों का मिथ्या प्रलाप ही कहा जायगा हम लोग तो वर्तमान कालमें जैन टिप्पने के अभाव से लौकिक टिप्पने के अनुसार चन्द्रवर्ष और अभिवर्द्धितवर्ष में आपाढ चातुर्मासी से ५० दिन जहा पूरे हों वहा श्रीपर्युषणपर्व जसे प्रतिबद्ध मानते हे उसी तरह कार्तिक चातुर्मासिककृत्य स्वाभाविक कार्तिक शुक्र १४ को प्रतिबद्ध मानते हे अत आगमानुकूल उसी दिन करते हैं परन्तु तुमारी तरह आगम प्रतिकूल यथा ८० दिने अस्वाभाविक यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास में श्रीपर्युषणपर्व प्रतिबद्ध नहीं मानते हे तथा १०० दिने कार्तिक चातुर्मासिककृत्य भी अस्वाभाविक दूसरे कार्तिक अधिकमास की शुक्र १४ को प्रतिबद्ध नहीं मानते हे अतएव उस दिन नहीं करते हैं।

[प्रश्न] दूसरे फाल्गुन शुक्र १४ को वा दूसरे आपाढ शुक्र १४ को पाच महीने आपलोग यथा चातुर्मासिक प्रतिक्रमण कृत्य करते हे तथा पाच महीने दूसरे कार्तिक शुक्र १४ को चातुर्मासिक प्रतिक्रमणकृत्य क्यों नही करते हे।

[उत्तर] जैन टिप्पने के अनुसार पौष और आपाढ मास

की वृद्धि होती थी तब पांच महीने यथा फाल्गुन शुक्ल १४ को और दूसरे आषाढ़ शुक्ल १४ को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण होता था और चार महीने कार्तिक शुक्ल १४ को कार्तिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने में आता था तथा लौकिक टिप्पने,के अनुसार वर्तमान काल में दूसरे फाल्गुन शुक्ल १४ को और दूसरे आषाढ़ शुक्ल १४ को हमलोग पांच महीने चातुर्मासिक प्रतिक्रमण कृत्य करते हैं सो पूर्ववत् उचित है परन्तु कार्तिकमास की वृद्धि होने पर अस्वाभाविक दूसरे कार्तिक अधिकमास की शुक्ल १४ को पांच महीने कार्तिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणाकृत्य करना सर्वथा अनुचित है, देखिये श्रीबृहत्कल्पसूत्र चूर्णिका पाठ यथा,

कत्तियपुरिसमाए पड़िक्कमित्ता वितियदिवसेणिग्गया ।

दूसरा पाठ श्रीनिशीथ चूर्णिका यथा

वरिसारत्तं एगखेत्ते अत्थित्ता कत्तियचाउम्मासिय पड़िवयाए अवस्सणिग्गंतव्वं ।

अर्थ—उपर्युक्त पाठों में चूर्णिकार महाराजों ने लिखा है कि वर्षाकालके समय एक क्षेत्रमें स्थित हुवे साधुओं को कार्तिक पूर्णिमा को चार महीने चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करके दूसरे दिन अवश्य विहार करना उचित है, प्रियपाठकगण ! उक्तचूर्णिवाक्यानुसार कार्तिकचातुर्मासिक प्रतिक्रमणादिकृत्य पूर्वकाल में आषाढ़ चातुर्मासिक पूर्णिमासे चारमास व्यतीत होनेपर कार्तिक पूर्णिमा को किया जाता था अतएव सम्प्रति कालमें भी प्रथमकार्तिक शुक्ल १४ को चारमास पूर्ण होजाने से चातुर्मासिक कृत्य करके उक्त चूर्णिकार महाराजों की आज्ञानुकूल दूसरे दिन अवश्य विहार करना चाहिये, तथापि तपगच्छवाले उक्त सिद्धांत वाक्य विरुद्ध केवल अपने कपोल कल्पित कदाग्रहों में पड़कर चारमास के उचित काल सम्बन्धी स्वाभाविक प्रथमकार्तिक शुक्ल १४ को चातुर्मासिक कृत्य तथा विहार नही करते हैं किन्तु पांच महीने

अनुचित काल सबधी दूसरे कार्तिक अधिकमास की शुक्ल १४ को अर्थात् पर्युषण के अनन्तर १०० दिने कार्तिक चातुर्मासिक कृत्य करते है और तपगच्छ वालों को आगम विरुद्ध इस बात का महा दुराग्रह है, अतएव उन महानुभावों से मित्रता पूर्वक मेरा यह कथन है कि पर्युषणके बाद १०० दिने दूसरे कार्तिक में चातुर्मासिक कृत्य करनेका आग्रह रखना और पर्युषण के अनतर ७० दिन शेष रहने सबधी समवायाग सूत्र के दूसरे वाक्यको बाधायतलाना यह प्रत्यक्ष परस्पर विषमवाद युक्त दोनो बातों की सिद्धि कभी नही होगी, इसलिये आपलोग यदि उक्तसमवायांग ७० दिन शेष रहने सम्बन्धी दूसरे वाक्यको अभिवर्द्धितवर्ष में सच्चे दिलसे मानते हैं तो उस वाक्यको बाधा न होने के लिये तदनुसार ७० दिने प्रथम कार्तिक शुक्ल १४ को चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके १०० दिने यावत् दूसरे कार्तिक शुक्ल १४ को उक्त चूर्णिपाठ विरुद्ध पांच महीने चातुर्मासिक प्रतिक्रमणकृत्य तथा विहार करनेका कदाग्रह त्याग देना आपलोगोंको सर्वथा उचित है, क्योंकि दूसरा कार्तिक अधिकमास चारमास के १२० रात्रि दिन की कार्तिक चातुर्मासी में नही है अतएव उस मासमें कार्तिक चातुर्मासिककृत्य करना और ३० दिन पर्यंत निनाकारण उस क्षेत्रमें रहना यह दोनो बातें अयोग्य हैं और चारमास पूर्ण होने पर दूसरे आश्विनमास में कार्तिक चातुर्मासिक कृत्य तथा विहार करनेके लिये शास्त्रकारोंने किसी आगम पाठों में आज्ञानहीं लिखी है, अतएव श्रावण भाद्रपद और आश्विन अधिकमास के ३० दिन उसी क्षेत्रमें रहना, नही त्याग किया जाता है, इसीलिये चातुर्मासी के स्थान में पचमासी कृत्य पयुषणपर्व के बाद १०० दिने स्वाभाविक कार्तिक शुक्ल १४ को करने में आते हैं सो तो पूर्वकालमें भी जैन टिप्पनेके अनुसार अभिवर्द्धित वर्ष में २० दिने श्रावण शुक्ल ५ को गृहिज्ञात सांवत्सरिक कृत्य विशिष्ट श्रीपर्युषणपर्व किये बाद स्वाभाविक उचित काल के चतुर्थ कार्तिक मास की पूर्णिमा को चातुर्मासिक कृत्य १०० दिने करने में

आते थे अतएव दोष नहीं है, और समवायांगसूत्र का उक्त पाठ चंद्रवर्ष सम्बन्धी है अतएव उस वर्ष में मास वृद्धि न होनेके कारण ७० दिन शेष रहने सम्बन्धी समवायांगसूत्र के दूसरे वाक्य को किंचित् बाधा भी नहीं होती है यदि बाधा आती तो निर्युक्तिकार श्रीमान् भद्रबाहुस्वामी तथा बृहत्कल्पसूत्र टीकाकार तपगच्छ नायक श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी महाराज और बृहत्कल्पचूर्णिकार महाराज निम्न लिखित पाठों में ५० दिने भाद्रपद शुक्ल ५ को चन्द्रवर्ष में गृहिज्ञात पर्युषणपर्व किये बाद कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत ७० दिन पंचकपरिहानि द्वारा पाँच पाँच दिनो की वृद्धि कर के, ७५-८०-८५ इत्यादि कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत शेष रहने का दिन और जैन टिप्पने के अनुसार २० दिने श्रावण शुक्ल ५ को अभिवर्द्धितवर्ष में गृहिज्ञात पर्युषणपर्व कियेबाद कार्तिक पूर्णिमापर्यंत १०० दिन तथा कारणयोगे मगसिर पूर्णिमापर्यंत १५० दिन उस क्षेत्रमें साधुओं को रहने की आज्ञा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट कालावग्रह द्वारा कभी नहीं लिखते— देखिये पर्युषण करनेकी असलीरीति श्रीभद्रबाहु स्वामी विरचित निर्युक्तिपाठ द्वारा यथा—

अभिवड्ढियंम्मि वीसा। इयरेसु सवीसइमासो॥

तपगच्छनायक श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी विरचित बृहत्कल्पसूत्र उक्तनिर्युक्ति वाक्य का टीका पाठ-यथा—

अभिवर्द्धितवर्षे विंशतिरात्रेगते इतरेषु च त्रिषु चन्द्रसंवत्सरेषु सविंशतिरात्रेमासेगते गृहिज्ञातं कुर्वन्ति।

अर्थ—जैनटिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्ष में आषाढ़ चातुर्मासी से २० रात्रि जाने पर श्रावण शुक्ल पञ्चमी को गृहिज्ञात [**सांवत्सरिक कृत्यविशिष्ट**] श्रीपर्युषण पर्व करते हैं और तीन चन्द्रसंवत्सरों में २० रात्रि सहित १ मास अर्थात् ५० दिन वीतजाने पर भाद्रशुक्ल पंचमी को गृहिज्ञात [**सांवत्सरिक**

कृत्यविशिष्ट] पर्युपणपर्व करते है। पर्यपण के वाद शेष दिन रहने सम्बन्धी श्रीभद्रवाहुस्वामी विरचित—निर्युक्ति पाठ यथा—

इयसत्तरीजहण्णा। असीइ णउइं दसुत्तारसयंच॥
जइवासमग्गसिरे। दसराया तिण्णिउक्कोसा॥१॥

तपगच्छनायकश्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी विरचित उपर्युक्त निर्युक्तिगाथा का टीका का पाठ यथा—

अथ पंचकपरिहाणीमाधिकृत्य जघन्य मध्यम ज्येष्ठ-कल्पावग्रहमाह इयइतिउपदर्शने—योकिलापाढ़पूर्णिमायाः सविंशतिरात्रेमासेगते पर्युपयन्ति तेषां ससतिदिवसा जघन्योवर्पावासावग्रहोभवति भाद्रशुद्धपंचम्यनंतरं कार्तिकपूर्णिमायां ससतिदिनसद्भावात् एवंभाद्रपदवहुलदशम्यां पर्युपयन्ति तेषामसीतिर्दिवसा मध्यमकालावग्रहः श्रावणपूर्णिमायां नवतिर्दिवसाः श्रावणवहुलदशम्यां दशोत्तरशतं दिवसाः मध्यमएव-वर्पाकालावग्रहोभवति शेषांतरेषु दिवसपरिमाणं गाथायामनुक्तमपि इत्थंवक्तव्यं भाद्रपदाऽमावास्यायां पर्युपणेक्रियमाणे पंचससतिर्दिवसाः भाद्रपदवहुलपंचम्यां पंचासीतिः श्रावणशुद्धदशम्यां पंचनवतिः श्रावणशुद्धपंचम्यां पर्युपिने दिवसशतं श्रावणामावास्यायां, पंचोत्तरशतं श्रावणवहुलपंचम्यां पंचदशोत्तरशतं मध्यमोवर्पाकालावग्रहः आपाढपूर्णिमायां तु पर्युपिने विंशत्युत्तरंदिवसशतंभवति एवमेतपांप्रकाराणामन्यतरेषांवर्पावासानामेकक्षेत्रेस्थित्वा कार्तिकचातुर्मासिकप्रतिपदिनिर्गतव्यं, अथमार्गशीर्षेवर्पाभवति कर्दमजलाकुलाश्चपंथान स्ततोऽपवादेनैकंदशरात्रमवतिष्ठंते अथ-तथापि वर्पानोपरते नतोद्वितीयं दशरात्रं-

तत्रासते अथैवमपि वर्षानतिष्ठति ततस्तितीयमपि दशरात्रमासते एवंत्रीणिदशरात्राणि उत्कर्षतस्तत्रक्षेत्रे आसितव्यं मार्गशीर्षपौर्णमासींयावदित्यर्थः ततऊर्द्ध्व यद्यपि कर्दमाकुलाः पंथानो वर्षं वागाढमनुपरतंवर्षति यद्यपिच पानीयैःपूर्यमाणै स्तदानींगम्यते तथापि अवश्यंनिर्गतव्यं एवं पंचमासिको ज्येष्ठकल्पावग्रहः संपन्नः।

अर्थ—पर्युषण के अनन्तर [पंचकपरिहाणी] याने पांच पांच दिनो की हानि का अधिकार करके निर्युक्तिकार क्रम से जघन्य, मध्यम, ज्येष्ठ, कालावग्रह अर्थात् वर्षाकाल में रहने सम्बन्धी स्थिति कहे हैं मूलपाठमे-इयशब्द उपदर्शन में, याने पूर्वोक्त पंचक परिहाणी दिखलाने के लिये यथा जो लोग आषाढी पूर्णिमा से १ मास २० दिन व्यतीत होने पर अर्थात् ५० वें दिन भाद्रशुक्ल पंचमी को चन्द्रवर्ष में गृहिज्ञात, सांवत्सरिक कृत्यविशिष्ट पर्युषणापर्व करते हैं उन का ७० दिन का जघन्य वर्षावास सम्बन्धी कालावग्रह होता है क्योंकि भाद्रशुक्लपंचमी के अनन्तर कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत ७० दिन शेष रहते हैं, और जो लोग भाद्रकृष्णादशमी को गृहिअज्ञात—वर्षायोग्य पीठ-फलकादि वस्तुओं की प्राप्ति होने पर कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, द्वारा स्थापना विशिष्ट पर्युषणापर्व करते हैं उन का कार्तिक पूर्णिमा को ८० दिन रहने का यह मध्यम वर्षाकालावग्रह है, इसी तरह यह गृहिअज्ञात स्थापनापर्युषण श्रावणशुक्ल पूर्णिमा को करने से कार्तिक पूर्णिमा को ९० दिन और श्रावण कृष्ण दशमी को करने से ११० दिन का मध्यम वर्षा कालावग्रह होता है, और जो दूसरे शेष अन्तरो में दिवसों का प्रमाण यद्यपि उक्तनिर्युक्तिगाथा में नहीं कहा है तौ भी इस प्रकार से कहना चाहिये, भाद्रपदकृष्ण अमावास्या को उक्त गृहिअज्ञात, स्थापना विशिष्ट पर्युषणापर्व करने से कार्तिक पूर्णिमा

को ७१ दिन और भाद्रपदकृष्ण ५ को ८५ दिन और श्रावण शुक्ल १० को ६५ दिन होते है एव चन्द्रवर्ष में उक्त गृहिअज्ञात स्थापना विशिष्ट और अभिवर्द्धितवर्ष में गृहिज्ञात सांवत्सरिककृत्य विशिष्ट आषाढ चतुर्मासी से २० दिने श्रावण शुक्ल पंचमी को पर्युषणपर्व करने के बाद १०० दिन कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत रहने के होते हैं और श्रावण कृष्ण अमावास्या को उक्त गृहिअज्ञात स्थापना विशिष्ट पर्युषण करने से १०५ दिन कार्तिक पूर्णिमा को होते है एव श्रावण कृष्ण ५ को उक्त स्थापना विशिष्ट पर्युषण करने से ११५ दिन का कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत मध्यम वर्षा कालावग्रह होता है और आषाढशुक्ल पूर्णिमा को उक्त गृहिअज्ञात स्थापना विशिष्ट पर्युषण करने से १२० दिन कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत उसक्षेत्र में रहने के होते है, इसी तरह उक्त वर्षावास सम्बन्धी प्रकारों में किसी एक का अवलम्बन करके पर्युषण के अनन्तर एक क्षेत्र में रह कर कार्तिक चातुर्मासिक कृत्य करके प्रतिपद को विहार करना चाहिये कदाचित् मार्गशीर्ष [मगसिर] में वर्षा के कारण कीचड और जल से भरा हुआ चलने का मार्ग होतो अपवादसे उसीक्षेत्रमें एक १० रात्रिपर्यंत रहना चाहिये, उसके अनन्तर वर्षानिवृत्त नहो तो फिरभी दूसरे १० रात्रिपर्यंत उसीक्षेत्रमें स्थिति करना उचित है पुन वर्षानमिटे तो तीसरी १० रात्रिपर्यंत भी उसीक्षेत्रमें निवास करना योग्यहै, उसके अनन्तर गाढ वृष्टिके कारण यद्यपि कीचड और जलसे चलनेका मार्ग [रास्ता] परिपूर्ण होगयाहो तौभी वहांसें दूसरे क्षेत्रोंमें साधुओंको विहार करना परमावश्यकहै, इसी प्रकार पाचमासका ज्येष्ठ कालावग्रह सिद्ध होता है।

प्रियपाठकगण ! धन्यहै तपगच्छवाले कि उपर्युक्त श्रीभद्रबाहुस्वामी विरचित निर्युक्तिके दोनोपाठोंमेओर तदनुसार अपने पूर्वज क्षेमकीर्तिसूरि जीमहाराज रचितटीका सयश्री उक्तदोनों पाठोंमें भी श्रद्धा नहीं,कर तेहें ओर ५० वें दिन चद्रवर्ष सबधी पर्युषण पर्वके बाद ७० दिन

शेष रहनेका समवायांगसूत्र संबंधी जघन्य कालावग्रह वाक्यको अभिवर्द्धितवर्षमें गृहिज्ञात पर्युषणाके बाद कार्तिक पूर्णिमापर्यंत १०० दिन शेष रहनेसे उपर्युक्त आगम पाठ वाक्योंका अनादर पूर्वक अज्ञतासे व्यर्थ बाधाबतारहे हैं यह प्रत्यक्ष अन्यायहै यानही ? यह बात आप लोगों को विचारणीयहै, और आषाढ़ चातुर्मासी में जैनटिप्पनेके अनुसार अधिकमास न होने के कारण अभिवर्द्धितवर्षमें कार्तिकपूर्णिमाके १०० दिनशेषरहते २० दिने गृहिज्ञात [सांवत्सरिक कृत्यविशिष्ट] श्रावणशुक्ल पंचमीको श्रीपर्युषणपर्व करनेके लिये निर्युक्तिकार तथा उक्त टीकाकार तपगच्छनायक श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने पूर्वकालकी रीतिसे लिखा है, उसके स्थानमें संप्रति कालमें जैन टिप्पने के अभावसे लौकिक टिप्पने के अनुसार आषाढ चातुर्मासीमें श्रावण वा, भाद्रपद आदि अधिकमास होनेके कारणसे उस मासके ३० दिनोको गिनतीमें लेकर कुल ५० वें दिन याने पूर्वकालकी तरह कार्त्तिकपूर्णिमा को १०० दिन शेष रहते दूसरे श्रावण वा प्रथम भाद्रशुक्ल ४ को श्रीपर्युषणपर्व करना युक्तहै तथापि जैनटिप्पने के अनुसार २० दिने और लौकिक टिप्पने के अनुसार ५०वें दिन अभिवर्द्धितवर्ष सम्बन्धी उक्त इन दोनो पर्युषणाका प्रतिषेध करतेहुवे तपगच्छवाले अपनी मनमानी शास्त्र विरुद्ध अनेकानेक कल्पनाओं से श्रावण वा दूसरे भाद्रपद अधिक मासके ३० दिनोको गिनतीमें न मानकर यावत् ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमासकी शुक्ल ४ को आगम विरुद्ध पर्युषण स्थापन करतेहैं सो अयुक्तहै या नही यह बातभी आपलोगों को विचारणीय है।

दूसरा प्रमाण वृहत्कल्पसूत्र चूर्णिका—यथा—

इयसत्तरगाथा—एवंसत्तरीभवति सवीसतिराते मासे पज्जोसवेत्ता कत्तियपुण्णिमाए पड़िक्कमित्ता बितियदिवसे णिग्गयाणं पंचसत्तरी भद्दवयअमावसाए पज्जोसवेत्ताणं भद्दवय बहुलदसमीए असीत्ति भद्-

वयवहुलपंचमीए पंचासीति सावणपुम्मिमाए णउत्ति सावणसुद्धदसमीए पंचणउत्ति सावणसुद्धपंचमीए सतं सावणअमावसाए पंचुत्तरंसयं, सावणवहुलदसमीए दसुत्तरंसतं सावणवहुलपंचमीए पणरसुत्तरंसतं आषाढपुम्मिमाए विसुत्तरंसतं कारणे पुण छम्मासितो जेठोत्ति उक्कोसो उग्गहो भवति।

अर्थ—इस पाठमें चूर्णिकार महाराज लिखते हैं कि इय सत्तरी इत्यादि निर्युक्ति की गाथाहे तदनुसार चंद्रवर्षमें २० रात्रिसहित १ मास अर्थात् ५० दिने भाद्र शुक्ल पचमीको गृहिज्ञात [सांवत्सरिक कृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युषणपर्व कियेवाद कार्तिकपूर्णिमाको प्रतिक्रमण करके दूसरेदिन विहार करने वाले साधुओं को ७० दिन उसक्षेत्रमे रहने के लिये होतेहैं ७५ दिन भाद्रपद अमावास्या को गृहिअज्ञात पर्युषणस्थापना करनेवालों को होतेहैं इसीतरह भाद्रपद कृष्णदशमी को ८० दिन एव भाद्रपद कृष्णपचमी को ८५ दिन श्रावणपूर्णिमा को ९० दिन एव श्रावणशुक्लदसमी को चन्द्रवर्षमे गृहिअज्ञात पर्युषण पर्व की स्थापना करनेवाले साधुओं को कार्त्तिक पूर्णिमापर्यंत ९५ दिन रहनेके लिये होतेहं एवचद्र वर्षमे श्रावण शुक्ल ५ को गृहिअज्ञात उक्त स्थापना पर्युषण और अभिवर्द्धितवर्षमे जैनटिप्पने के अनुसार २० दिने श्रावण शुक्ल पचमीको गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्य विशिष्ट] श्रीपर्युषणपर्व करनेवाले साधुओंको कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत १०० दिन उसक्षेत्रमे शेषरहने के होतेहं श्रावण अमावास्याको उक्त गृहिअज्ञात पर्युषणपर्व की स्थापना करनेवालों को १०५ दिन होते हैं एव श्रावण कृष्णदशमी को ११० दिन एव श्रावण कृष्णपंचमीको ११५ दिन एव आषाढपूर्णिमाको गृहिअज्ञात पर्युषणपर्व की स्थापना करके रहेहुवे साधुओंको कार्तिकपूर्णिमापर्यंत १२० दिन रहनेके होतेहं कारणयोगे पुन. [काऊणमासकप्पं तत्थेव

ठियाए जइ वास। मग्गसिरे सालंवणाणं। छम्मासिओ जेट्ठोग्गहोहो इति ॥२॥] इस निर्युक्ति गाथासे आषाढ मास कल्प के साथ मगसिर मास कल्प पर्यंत ६ महीना उसक्षेत्रमें स्थविर कल्पि साधुओंको रहने का [ज्येष्ठ] उत्कृष्टकालावग्रहहै

औरभी देखिये—अषाढ़ चातुर्मासीसे ५० दिने पर्युषणपर्व करनेसे ७० रात्रिदिन शेष समवायांगसूत्रसंबंधी वाक्यको उक्त प्रमाणोसे बाधानही आती है किंतु ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व की मर्यादा को त्याग देनेहीसे समवायांग सूत्रसंबंधी ५०दिने पर्युषणपर्व करने के प्रथमवाक्य को अवश्य वाधा आवेगी—

प्रमाण—श्रीपर्युषण कल्पसूत्र मूलपाठ, यथा—अंतरा वियसे कप्पइ नोसे कप्पइ तंरयणिं उवायणा वित्तए। तपगच्छ के श्रीविनयविजयजी उपाध्याय विरचित पर्युषण कल्पसूत्र सुबोधिका टीकापाठ, यथा—अंतरा वियसे कप्पइ अंतरा पिच्च अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं परंन कल्पते तांरात्रिं भाद्रपद शुक्ल पंचमीं उवायणा वित्तएत्ति अतिक्रामितुं।

अर्थ—कारण योगे ५० दिनके भीतर भी पर्युषण करना कल्पता है परंतु ५० वें दिन की रात्रि को श्रीपर्युषणपर्व कियेविना उल्लंघन करना नहीं कल्पता है, पाठकगण! वस, उपर्युक्त वाक्यों सेही तपगच्छवालों का यावत् ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिक [नपुंसक, लोण, मल] मासमें शुक्ल ४ को कियाहुआ पर्युषण समवायांग संवधी उक्तपाठ को और पर्युषण कल्पसूत्र पाठको वाधा कारी है।

[प्रश्न] श्रावण मासकी वृद्धि होनेपर ८० दिने भाद्रपद में और भाद्रपदमास की वृद्धि होनेपर ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिक मासकी शुक्ल चतुर्थीको तपगच्छवाले पर्युषणपर्व करते हैं परंतु उसमें दूसरा श्रावण वा दूसरा भाद्रपद कालचूलारूप अधिकमास के ३० दिनो को गिनती मे नहीं मानते हैं इसलिये उक्त समवायांग—

सूत्रपाठमे ५० दिने पर्युषण संबंधी प्रथमवाक्य को बाधा कहांसे होगी और ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिक मास मे पर्युषण पर्व करने की बात भी कैसे सिद्ध होगी इसी तरह श्रीपर्युषणपर्व करने के पश्चात् आश्विन मास की वृद्धि होनेपर १०० दिने कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को और कार्तिक मास की वृद्धि होनेपर १०० दिने दूसरे कार्तिक अधिकमासकी शुक्ल चतुर्दशीको कार्तिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमण विहार आदि कृत्य करतेहैं परंतु उसमें भी कालचूलारूप दूसरे आश्विन या दूसरे कार्तिक अधिकमासके ३० दिनो को गिनती में नहीं मानतेहैं इसी कारणसे उक्त समवायांगसूत्र पाठमें ७० दिन शेषरहने संबंधी दूसरे वाक्यको भी बाधाकैसे होगी और पर्युषणके बाद १०० दिने यावत् दूसरे कार्तिकशुक्ल चतुर्दशी को चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादिकृत्य किये हैं यहबात भी आप कैसे कहसकतेहैं क्योंकि उपर्युक्त इस प्रश्न मंतव्यद्वारा तपगच्छवाले उक्त समवायांग सूत्रपाठ के उक्तदोनो वाक्यों को बाधारहित मानकर पर्युषण पर्व ८० दिने और कार्तिक चतुर्मासी प्रतिक्रमणादिकृत्य १०० दिने करतेहैं लेकिन गणधरप्रणीत उक्त श्रीसमवायांग मूलपाठ तथा श्रीमान् अभयदेव-सूरिजी महाराज विरचित टीकापाठसे उक्तमंतव्य अनुकूल है या प्रतिकूल ?

[उत्तर] प्रियपाठकगण ! तपगच्छवालों का यह मंतव्यतो वैसाहै कि जैसे कोई अज्ञमनुष्य इत व्याघ्र ततः नदी इनदोनोके मध्य भागमें प्राप्त हुआ भयभ्रान्त होकर अपनी आत्मा को बचाने के लिये अन्यउपाय नपाकर इधर उधर कूद २ के निरर्थक आकाशको पकडने जाताहै परन्तु उससे क्या बचाव होसकता है अर्थात् नहीं, उसी प्रकार तपगच्छीय लोग भी कर्मानुयोगसे यावत् ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमासमें पर्युषणपर्व करना स्वीकारकर इत श्रावण या भाद्रपदकी वृद्धि होनेपर ८० दिनके भयसे और ततः आश्विन या कार्तिकमासकी वृद्धि होनेपर १०० दिनके भयसे अन्य

रीति द्वारा अपने मंतव्यका बचाव नपाकर काल चूलारूप दूसरे श्रावण वा दूसरे भाद्रपद अधिक मासको और दूसरे आश्विन वा दूसरे कार्तिक अधिक मासको अपनी मिथ्या कल्पनासे गिनतीमें न मानकर ५०वें दिन पर्युषण और ७० दिने कार्तिक चतुर्मासीकृत्य करना स्वीकार किया तो ५० वें दिन दूसरे श्रावणमें वा प्रथम भाद्रमें पर्युषण और ७० दिने प्रथम कार्तिकमें चतुर्मासी कृत्य स्वीकार करनेमें उनकी क्या हानिथी, अगर यह कहा जाय कि ५० वें दिन दूसरे श्रावण अधिकमासमें पर्युषण नही करना तो ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमास में क्यों करते हो अगर यह कहो कि अधिक मास गिनतीमें नहीहै तो हम कहतेहैं कि उपर्युक्त सूर्य प्रज्ञप्ति मूल सूत्रपाठ तथा टीकापाठ से स्पष्ट विदित होताहै कि तीर्थंकर श्रीवीर परमात्माने स्वकीय शुद्ध प्ररूपणा द्वारा तथा गणधर महाराज श्रीसुधर्मास्वामी और टीकाकार श्रीमलयगिरिजी आदि महाराजोंने भी अधिकमास और उसके दोनो पक्ष और ३० दिन इनको अभि-वर्द्धितवर्ष सम्बन्धी कालमानके साथ गिनतीमें प्रमाणित कियाहै तथापि तपगच्छवाले गिनतीमें प्रमाण नहीं करतेहैं इससे यह सिद्ध होताहै कि उक्ततीथकर आदि महाराजोंकी प्ररूपणासे उनलोगोंका मंतव्य सर्वथा विपरीतहै, जैसे कोई भोजनार्थी भिक्षुक लाड्डू आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंके भोजन द्वारा पेट भर लिया तौभी दाता के सामनेविपरीत भावसे कहने लगाकि आपने जो वस्तु मुझको खिलाई है उनको तो मैं गिनतीमें नहीं मानूंगा किन्तु दूसरी वस्तु जब दीजियेगा उसको अपनी गिनतीमें मानूंगा इसीतरह तपगच्छ-वालेभी उपर्युक्त दशवैकालिक निर्युक्ति टीका प्रमाणसे बारह मासोंके उचित कालोपरांत १३ वाँ दूसरा भाद्रपद अधिक [नपुंसक-लोण-मल] मासमें उत्तमोत्तम पर्युषणपर्वके कृत्य तथा दूसरे कार्तिक अधिकमासमें चातुर्मासिक कृत्य करते हुयेभी कहतेहैं कि हम अधिकमास के ३० दिनो को गिनतीमें नही मानतेहैं अतएव उन महानुभावों का यह कथन आगम विरुद्ध ८० दिने

दूसरे भाद्रपद अधिकमासमें पर्युपणपर्व का निषेध सूचक स्पष्ट विदित होता है अस्तु, इस प्रश्नके मतव्य द्वारा तपगच्छीय लोगोंकी महामाया चारोंकी पोल पट्टी स्पष्ट प्रकाशित होचुकी क्योंकि उक्त समवायांगसूत्रपाठ चन्द्रवर्ष सम्बन्धी निश्चित होनेसे उसपाठके अनुसार यावत् ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमासमें पर्युपणकृत्य और १०० दिने यावत् दूसरे कार्तिकमें चातुर्मासिक कृत्य किसी तरह सिद्ध न हुआ इसलिये आगम विरुद्ध केवल अपनी कपोल कल्पनासे पर्युपणके पूर्वभागमें श्रावण वाभाद्रपद अधिकमासरूप कालचूलाके ३० दिनोंको गिनतीमें नमानकर असत्य कल्पनासे ८० दिनके स्थानमें ५० दिन बनादिया इसीतरह पर्युपणपर्वके उत्तर

पत्र ३१ प० १२ में ७० के पूर्व इतना और अधिक पढिये। दिनो

अपनी मिथ्याकल्पनासे न मान कर १०० दिनके स्थानमें उक्त

समवायांगपाठके अनुसार जो अपना मतव्य दिखाया है उसको अल्पबुद्धि मनुष्यभी समझ सकताहै कि यह कथन उक्त समवायांग पाठ तथा टीकापाठसे सर्वथा विरुद्ध कवल कपोल कल्पित माया का प्रपचहै क्योंकि समवायाग सूत्रके उक्त मूल पाठमे गणधर महाराजने तथा टीकाकार महाराज श्रीमान् अभयदेवसूरिजीने उक्त टीकापाठ में तपगच्छ वालोंके इस मतव्यका किंचित् गधभी नहीं दिखाया है अतएव उक्त निर्मूल मतव्यको कौन बुद्धिमान मानेगा देखिये श्रीसमवायागसूत्रपाठ सहित टीकापाठ यथा—

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वइक्कंते सत्तरी एहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।

अथ सप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते।

समणे इत्यादि—वर्षाणां चातुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशति दिवाधिकेमासे व्यतिक्रांते पंचाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः सप्तत्यांच रात्रिदिनेषु

शेषेषु भाद्रपद शुक्ल पंचम्यामित्यर्थः वर्षास्वावासो वर्षावासः वर्षावस्थानं पज्जोसवेइति परिवसति सर्वथाकरोति पञ्चाशति प्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविध वसत्यभावादि कारणे स्थानान्तर मप्याश्रयति अति-भाद्रपद शुक्ल पञ्चाम्यांतु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयमिति ॥

देखिये—क्या इस समवायांगसूत्रके मूलपाठमें तथा टीकापाठमें उपर्युक्त कपोलकल्पना का गंध दिखलाई पड़ता है अर्थात् किंचित् नहीं तब कैसे बुद्धिमान लोग उपर्युक्त आगम वाक्य विरुद्ध तपगच्छ वालों की उक्त मनमानी मिथ्या कल्पना को स्वीकार करेंगे क्योंकि यह पाठ चंद्रवर्ष में मास वृद्धि न होने के कारण चंद्रसंवत्सर के लिये केवल इतना ही विदित करता है कि श्रमण भगवान् महावीर प्रभु ४ महीने अर्थात् १२० रात्रि दिन के प्रमाण वाला वर्षा काल में २० रात्रि सहित १ मास अर्थात् ५० दिन बीतने पर और ७० रात्रि दिन शेष रहते भाद्र शुक्ल ५ को वर्षा काल में रहने की स्थिति सर्वथा करते हैं याने सूत्रकार महाराज के कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथम के ५० दिनों में रहने योग्य तिस प्रकार स्थान का अभावादि कारणों से दूसरे स्थान का भी भगवन् आश्रय कर के रहते हैं कदाचित् स्थान न मिला तो ५० वें दिन भाद्र शुक्ल ५ को वृक्ष के मूल आदि स्थानों में भी निवास करते हैं।

प्रिय पाठक गण ! आप लोग भी अपनी दृष्टि से अवलोकन कीजिये—कि मास वृद्धि के अभाव से चंद्रवर्ष संबंधी इस समवायांग सूत्र के मूल पाठ तथा टीका पाठ में पूर्वार्द्ध संबंधी ५० दिन के वाक्य में क्या कुछ दिखाई पड़ता है किश्रावण वा भाद्र पद काल चूलारूप अधिक मास के ३० दिनों को गिनती में न लेना और पर्युषण दूसरे भाद्रपद अधिक मास में ८० दिने करना इसी तरह उत्तरार्द्ध संबंधी ७० दिन के वाक्य में काल चूला रूप आश्विन वा

कार्तिक अधिक मास के ३० दिनों को गिनती में न लेना और चातुर्मासी कृत्य १०० दिने दूसरे कार्तिक अधिक मास में करना यह अधिकार भी क्या कुछ दिखाई पडता है अर्थात् नहीं तो सिद्धांत प्रतिकूल प्रत्यक्ष आगम वाक्यों को बाधाकारी तपगच्छ वालों के इस मतव्य को किस तरह मजूर किया जाय अर्थात् नहीं।

[प्रश्न] [कालगज्जो पविट्ठेहिं भणियं भद्दवयसुद्ध-पंचमीए पज्जोसविज्जई] इत्यादि निशीथ चूर्णिपाठसे और [अज्जकालगेण सालवाहणो भणिओ भद्दवयजुद्धपंच-मीए पज्जोसवणा] इत्यादि पर्युषणाकल्प चूर्णिपाठसेभी स्पष्ट विदित होता है कि श्रीकालकाचार्य महराजने शालिवाहनराजा को भाद्रपद शुक्ल पचमीको पर्युषणपर्व करनेके लिये कहाहै और जिन सिद्धान्तग्रन्थोंमे पर्युषणका निरूपणहै वहां भाद्रपद का विशेषण दिया है अतएव हम कहते हैं कि [नकाप्यागमे भद्दवयसुद्ध-पंचमीए पज्जोसविज्जति इतिपाठवत् अभिवड्ढिअवरिसे सावणसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ इतिपाठ उपलभ्यते

अर्थ—भाद्रपद शुक्ल पचमी को पर्युषणपर्व करने का पाठ आगमोमे जैसा मिलताहै वैसा अभिवर्द्धिनवर्ष मे श्रावण शुक्ल पच-मीको पर्युषणपर्व करनेकापाठ श्रीनिशीथचूर्णि आदि सिद्धांत ग्रन्थोमे नही मिलता है इसलिये ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिक मासकी शुक्ल ४ को पर्युषणपर्व करना चाहिये लेकिन आपलोग ५० दिने दूसरे श्रावण शुक्ल ४ को पर्युषणपर्व करते है सो क्या उचित है ?

[उत्तर] अहोश्वित् देवानुप्रिय ! दूसरे भाद्रपद अधिक [नपुंसक लोए मल] मासमे ८० दिने पर्युषणपर्व करनेका पाठ तो किसी आगमोमे नहीं लिखा है यदि आपको भाद्रपद शुक्ल ४ को ही पर्युषणपर्व करना इष्ट है तो उचित काल सबधी स्वाभा-

विक प्रथम भाद्रपद शुक्ल ४ को ५० दिने श्रीकालकाचार्य महाराज की तरह श्रीपर्युषणपर्व क्यों नहीं करते हैं यतः

[छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जउ आयरिएहिं भणिअं न वट्ठति अतिक्कमितुं ताहे रसा भणिअं तओ अणागए चउत्थीए पज्जोसविज्जाति आयरिएहिं भणिअं एवं भवउ ताहे चउत्थीए पज्जोसवितं एवंजुगप्पहाणेहिं कारणे चउत्थीपवत्तिआ] इसनिशीथचूर्णिपाठसे स्पष्ट ज्ञात होताहै कि ५१ दिने भाद्र शुक्ल ६ को पर्युषण करनेकेलिये शालिवाहनराजाने आग्रह किया परंतु युगप्रधान श्रीकालकाचार्यमहाराजने ५० दिन के ऊपर १ दिनभी अधिक बढ़ानेसे श्रीजिनागम संबंधी-आज्ञा का अतिक्रमण होगा इस भय से उनकी प्रार्थना स्वीकार नकी तो ५० दिनके ऊपर ३० दिन बढ़ाकर ८० दिने दूसरे भाद्र अधिक मासमे पर्युषणपर्व करना क्या आज्ञाके प्रतिकूलनहींहै अस्तु उक्त आचार्यमहाराजनेतो राजाके कहनेसे और ५० दिनके भीतर आगम-ग्रंथोंमे श्रीपर्युषणपर्व करने की आज्ञा है इसलिये ५० दिने भाद्र शुक्ल ५ पर्वतिथिमे पर्युषणनकरके ४९ दिने भाद्र शुक्ल ४ को अपर्व तिथिमे कारण योग से पर्युषणपर्व किया अतएव चतुर्थी अपर्वतिथि का पर्युषणपर्व अभीतक युगप्रधान की आचरणासे किया जाताहै इसी विषयको शिष्य की तरफसे प्रश्नोत्तर द्वारा श्रीनिशीथचूर्णिकार आदि महाराजोंने प्रतिपादन कियाहै और उस प्रकरणमे चंद्रवर्ष तथा अभिवर्द्धितवर्ष संबंधी श्रीपर्युषणपर्व करने के विषय मे जोपाठ है उसको त्यागकर चंद्रवर्षमे ४९ दिने श्रीकालकाचार्य महाराज के [भद्दवयसुद्ध पंचमीए पज्जोसविज्जई] केवल इस वाक्य द्वारा भाद्रशुक्ल ५ को पर्युषणपर्व करनाबताते हैं और उपर्युक्त बृहत्कल्पचूर्णिपाठमे [सावणसुद्धपंचमीएसतं] तथा उक्त बृहत्कल्पसूत्र टीका पाठोंमे [अभिवर्द्धितवर्षे विंशतिरात्रेगते-श्रावणशुद्ध पंचम्यांपर्युषितेदिवसशतं] इत्यादि वाक्योंसे

चूर्णिकार तथा तपगच्छ नायक श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजीने अभिवर्द्धित वर्षमे जैन टिप्पने.के अनुसार आषाढ चतुर्मासीसे २० रात्रि जाने-पर श्रावण शुक्ल ५ को पर्युषणपर्व करने के लिये और तत्पश्चात् कार्तिक पूर्णिमापर्यंत, १०० दिन शेष रहनेको लिखा है इसीप्रकार आगमोमे अनेक पाठ विद्यमानहै तथापि सिद्धांत विरुद्ध मनमानी धृष्टता, धारण करके-

[नक्वाप्यागमे-अभिवड्ढिअवरिसे सावणसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ इतिपाठ उपलभ्यते] इसवाक्यद्वारा अभिवर्द्धितवर्षमे श्रावण शुक्ल पचमी को श्रीपर्युषणपर्व करनेके लिये कोई भी पाठ आगमोमें नहींमिलता यह लिखना आपलोगों का महामिथ्या एक प्रलापमात्रहै और इससे अभिवर्द्धितवर्ष में शास्त्र विरुद्ध ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमासमे शुक्ल ४ को पर्युषणपर्व करने की सिद्धि कदापिनहीं होसक्ती क्योंकि श्रीनिशीथचूर्णिकार महाराजने [कालगओपविट्ठेहिंभणियं] इत्यादि पाठ के उपरिभागमे जैनटिप्पनेके अनुसार चंद्रवर्ष तथा अभिवर्द्धितवर्ष संबधी श्रीपर्युषणपर्व करने के लिये स्पष्ट पाठ लिखाहै—यथा

अभिवड्ढियवरिसे वीसतिरातेगते गिहिणातं करेंति तिसुचंदवरिसेसु सवीसतिराते मासेगते गिहिणातं करेंति जत्थ अधिमासगो पडति वरिसे तं अभिवड्ढियवरिसं भणंति जत्थ ण पडति तं चंद वरिसं सोयअधिमासगो जुगस्स अंते मज्झे वा भवति जइअंते नियमादोआषाढाभवंति अहमज्झेदोपोसा सीसोपुच्छति कम्हा अभिवड्ढियवरिसे वीसतिरातं चंदवरिसे सवीसतिमासो उच्यते जम्हा अभिवड्ढियवरिसे गिम्हेचेवसोमासोअतिक्कंतो तम्हा वीसदिणा अणभिग्गहियंतंकरेंति इयरेसु तिसु चंदवरिसेसु सवीसतिमासइत्यर्थः।

अर्थ—श्रीमान् जिनदास महत्तराचार्य महाराज इस उपर्युक्त पाठमे लिखते हैं कि जैनटिप्पनेके अनुसार दो अभिवर्द्धितवर्षोंमे आषाढ़ चतुर्मासी दिनसे २० रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत १०० रात्रि दिन चतुर्मासी के शेष रहते श्रावण शुक्ल ५ को **गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट]** श्रीपर्युषणपर्व करे और तीन चंद्रवर्षोंमे २० रात्रि सहित १ मास **[५० रात्रिदिन]** वीतनेपर अर्थात् कार्तिक पूर्णिमापर्यंत ७० रात्रिदिन चतुर्मासीके शेषरहते भाद्रपद शुक्ल ५ को **गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट]** श्रीपर्युषणपर्व करे जिसवर्षमे अधिक मास आपड़े [होवे] उसको अभिवर्द्धित वर्ष कहतेहैं और जिसवर्षमे अधिकमास न आपड़े [नहो] उसको चंद्रवर्ष कहतेहैं वह अधिकमास जैनसिद्धांत टिप्पने की रीतिसे जो ६० सूर्यमास का एक युग उसके अंतभाग और मध्यभागमे होता है यदि अंतभागमे अधिकमास हुआ तो नियमसे दो आषाढ़ मास होते हैं और मध्यभागमे अधिक मासहोवे तो दो पौषमास होते हैं शिष्य पूछता है कि किसकारण जैनटिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्षमे आषाढ़ चतुर्मासी दिनसे २० रात्रि जानेपर और कार्तिकपूर्णिमापर्यंत १०० दिनशेषरहते श्रावण शुक्ल ५ को **गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट]** श्रीपर्युषणपर्व करे और चंद्रवर्ष में २० रात्रि सहित १ मास अर्थात् ५० दिन जानेपर और ७० दिन कार्तिक चतुर्मासी के शेष रहते **गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट]** श्रीपर्युषणपर्व करे। गुरु उत्तर देते हैं कि अभिवर्द्धित वर्षमे जैनटिप्पनेके अनुसार ग्रिष्म और शीतकालमेहीं वहकालचूला **[चूड़ा]** रूप अधिकमास अतिक्रांत होजाताहै उसविवक्षासे दो अभिवर्द्धितवर्षोंमे आषाढ़ चतुर्मासीसे पांच २ दिने चारपर्वतिथियोंके यावत् २० दिन पर्यंत **[अनभिग्रहीत]** अनिश्चित

गृहिअज्ञात [स्थापनाविशिष्ट] पर्युपणकरे और २० व दिन की रात्रिको निश्चय उपर्युक्त गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युपणपर्व करे और तीनचन्द्रवर्षो मे कालचूला [चूडा] रूप अधिकमास न होने की विवक्षासे पाच २ दिने दशपर्वतिथियों के २० रात्रि सहित १ मास याने ५० दिन पर्यंत [अनभिग्रहीत] अनिश्चित गृहिअज्ञात [स्थापनाविशिष्ट] पर्युपणकरे और ५० वें दिनकी रात्रिको तो निश्चय उपर्युक्त गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युपणपर्वकरे—

प्रिय पाठकगण ! उपर्युक्त पाठानुसार जैनटिप्पनेकी रीतिसे कालचूला [चूडा] रुप अधिक पौप और आपाढ मास चारमास की आपाढ चतुर्मासीसे बाहर रहता था अतएव उसविवक्षासे अभिवर्द्धितवर्षमे २० दिने श्रावण शुक्ल ५ को पर्युपणपर्व पूर्वकालमे किया जाताथा परन्तु वर्तमान कालमें लौकिकटिप्पने के अनुसार कालचूला [चूडा] रूप श्रावणादि अधिकमास आपाढ चतुर्मासी के भीतर होता है अतएव इस विवक्षासे अधिक श्रावणादि १ मासके ३० दिनोको अभिवर्द्धितवर्ष सबन्धी उपर्युक्त पर्युपणपर्व के ७० दिनोके साथ मिलाकर कुल ५० दिने दूसरे श्रावणमे या प्रथमभाद्रमे श्रीपर्युपणपर्व करना युक्त है तथापि तपगच्छवाले चन्द्रवर्ष सबन्धी ७० दिनयुक्त ५० दिनका जो समवायांगसूत्र उक्तपाठको अभिवर्द्धितवर्षमे मानकर कालचूला [चूडा] रूप दूसरा श्रावण और दूसरा भाद्रपद अधिकमास के ३० दिनो को गिनतीमे अपनी मिथ्या विवक्षासे न मान के उक्त श्रीसमवायांगसूत्र पाठ तथा टीका पाठ और निशीथ चूर्णि आदि आगम पाठों से प्रत्यक्षविरुद्ध केवल बालजीवोंको भुलवाने के लिये अपनीमनमानी मिथ्या कल्पनासे ८० दिनको ५० दिन और १०० दिनशेपको ७० दिनशेप बतलातेहैं और पर्युपणपर्व ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास में तथा कार्तिकचतुर्मासी के कृत्य १०० दिने यावत्

दूसरे कार्तिक अधिकमासमें ५ महीनेपर करतेहैं अतएवयह मंतव्य उपर्युक्त सिद्धांतपाठोंसे प्रतिकूलहै तथापि आगम विरुद्ध तपगच्छी-यलोग कहतेहैं कि श्रावणमासमें श्रीपर्युषण पर्व करनेकापाठ सिद्धांतोमें नहीं मिलताहै सोयह मिथ्याप्रलाप उपर्युक्त [अभिवड्ढिय वरिसे वीसतिराते गते गिहिणातं करेंति इसनिशीथचूर्णिपाठसे सिद्ध होचुका इसमें कोई संशय नहीं है क्योंकि अनादि कालसे श्रीजैनटिप्पने के अनुसार चंद्रवर्षमें ५० दिने भाद्रपद शुक्ल ५ को और अभिवर्द्धितवर्ष में २० दिने श्रावण शुक्ल ५ कोही श्रीपर्यषणपर्व कियाजाताथा अतएव सम्यग् दृष्टिभव्य जिवों को तदनुसार वर्तनेके लिये चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीमान् भद्रबाहुस्वामी ने निम्नलिखित निर्युक्ति की दोगाथायें लिख वताईहै सो सिद्धातोमे प्रसिद्धहै - तत्संबंधीपाठ-यथा

इत्थय अणभिग्गहियं । वीसतिरायं सवीसइमासं ।
तेणपरमभिग्गहियं । गिहिणायं कत्तिओजाव ॥१॥

असिवाइ कारणेहिं । अहवा वासं ण सुट्ठु आरद्धं ।
अभिवड्ढियंमिवीसा इयरेसु सवीसइ मासो ॥२॥

अर्थ—आषाढ़ चतुर्मासी स्थित होने के अनन्तर [अनभिग्रहीत] अनिश्चितस्थितिसे गृहिअज्ञात [स्थापनाविशिष्ट] पर्युषण अभिवर्द्धितवर्षमे २० दिनपर्यंत और चंद्रवर्षमे २० रात्रि-सहित १ मास अर्थात् ५० दिन पर्यंत करना चाहिये उसके बाद [अभिग्रहीत] निश्चितस्थिति पूर्वक गृहिज्ञात [सांवत्स-रिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युषणपर्व करे और यावत् कार्तिक चतु-र्मासी कृत्यकी पूर्णितापर्यंत उसक्षेत्रमे अवश्यरहना उचितहै इसी-बातको निर्युक्तिकार महाराज दुसरीगाथामे कारण पूर्वकफिर स्पष्ट लिखतेहैं कि, अशिव [उपद्रव] आदि कारणोसे अथवा सुवृष्टि इत्यादि अधिकरणदोष नलगे इसलिये दो अभिवर्द्धितवर्षोंमे आषाढ़

चतुर्मासी से २० रात्रि बीतजानेपर अर्थात् श्रावणशुक्ल ५ को उपर्युक्त गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युषण करे और [इयरेसु] तीनचन्द्रवर्षों मे २० रात्रि सहित १ मास होनेपर अर्थात् ५० वें दिन भाद्रपद शुक्ल ५ को उपर्युक्त गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युषणपर्वकरे

[प्रश्न] श्रीभद्रबाहुस्वामी विरचित उपर्युक्त निर्युक्ति की दूसरी गाथा सबंधी [अभिवड्ढियंमिवीसा इयरेसु सवीसइमासो] यह जो उत्तरार्द्धगाथा पाठ है उस में इयरेसुसवीसइमासो इस दूसरे वाक्यको सांवत्सरिक कृत्य विशिष्ट गृहिज्ञात नामक पर्युषणका भेदद्वारा मानकर चन्द्रवर्ष में २० रात्रि सहित १ मास अर्थात् ५० वें दिन भाद्रशुक्ल ४ को श्रीपर्युषणपर्व करना उचित है परन्तु उक्तनिर्युक्तिगाथार्द्ध पाठ के अभिवड्ढियंमिवीसा इस प्रथम वाक्यको जैनटिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्ष में आषाढ चतुर्मासी से २० दिने श्रावणशुक्ल ४ को सांवत्सरिककृत्यविशिष्टगृहिज्ञात नामक पर्युषणकाभेद द्वारा न मानकर सांवत्सरिककृत्य रहित गृहिज्ञातमात्र नामक एक नवीन भेदद्वारा अंगीकारकरके तपगच्छवाले अभिवर्द्धित वर्षमें ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमासकी शुक्ल ४ को सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट पर्युषणपर्व करतेहैं उसीतरह आपलोगों कोभी करना चाहिये—

[उत्तर] अहोश्वित् गच्छ दुराग्रही विषमवादी ! क्या, यही न्यायहै कि, उपर्युक्त श्रीतीर्थंकर गणधर तथाश्रुतकेवली आदि महाराजोंके प्रणीत सभी आगम पाठोंका अनादर करके सिद्धांत विरुद्ध अपनी मनमानी गप्पमप्पद्वारा जिसकिसी प्रकारसे अभिवर्द्धितवर्षमे ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमासमे

पर्युषणपर्व करनेका शास्त्र विरुद्ध अपने गच्छ मंतव्य को स्थापन करनेके लिय प्राचीन काल संबंधी जैनटिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्षमे असली मूलमुद्देके आषाढ़ चतुर्मासीसे २० दिने श्रावण शुक्ल पंचमीको [गृहिज्ञात [सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट] श्रीपर्युषणपर्वको जड़मूलसे उत्थापन करने के लिये और उसके स्थानमे पौष आषाढ़ अधिकमासवाले जैनटिप्पनेके अभावसे वर्तमान कालमे श्रावणादि अधिकमासवाले जोलौकिक टिप्पनेहैं तदनुसार दूसरा अधिकश्रावणादि एकमासके ३० दिनो को अधिक सामिल करके कुल ५० वें दिन आगमानुकूल दूसरे श्रावणमे वा,प्रथम भाद्रपदमे श्रीपर्युषणपर्व को भी उत्थापन करनेकेलिये गृहिज्ञातमात्रा नामक नवीनभेद की आगम विरुद्ध उत्सूत्रप्ररूपणा करना आपको सर्वथा अनुचितहै क्योंकि उपर्युक्त बृहत्कल्पसूत्रटीका पाठमे आपके तपगच्छनायक श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी तथा निशीथचूर्णि पाठमे श्री जिनदास महत्तराचार्य महाराज एवंउक्त निर्युक्ति प्रथमगाथा पाठमे श्रीश्रुतकेवली श्रीमान् भद्रबाहुस्वामी ने अभिवर्द्धितवर्षमे जैनटिप्पने के अनुसार आषाढ़ चतुर्मासी दिनसे २० दिने श्रावणशुक्ल ५ के श्रीपर्युषणपर्व को सांवत्सरिक कृत्य रहित गृहिज्ञात मात्रा नामक भेद द्वारा नहीं लिखाहै किंतु चंद्रवर्षमे ५० दिने भाद्रशुक्ल ५ के श्रीपर्युषणपर्व को जैसे गृहिज्ञात नामसे कहाहै वैसेही अभिवर्द्धितवर्षमेभी २० दिने श्रावणशुक्ल ५ के श्रीपर्युषणपर्वको गृहिज्ञात नामसे कहाहै इसलिये उक्तदोनो गृहिज्ञात पर्युषणपर्व अवश्यमेव सांवत्सरिककृत्यविशिष्ट हैं :देखिये श्रीकल्पसूत्र अवचूरिमे पर्युषणपर्व की समाचारी संबंधी पाठ यथा

गृहिज्ञाता यस्यां तु सांवत्सरिकातिचारालोचनं लुंचनं पर्युषणायां कल्पसूत्रकथनं चैत्यपरिपाटी अष्टमं-तपः सांवत्सरिकं प्रतिक्रमणं क्रियते ययाच व्रतपर्याय

वर्षाणिगएयंते सा चन्द्रवर्षे नभस्यशुक्लपञ्चम्यां कालकसूर्य्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटाकार्या यत्पुनरभिवर्द्धितवर्षे दिनविंशत्या पर्युषितव्यमित्युच्यते तत्सिद्धांत टिप्पनानुसारेण तत्रहि युगमध्ये पौषो युगांते चाषाढएव वर्द्धते नान्येमासास्तानि च टिप्पनानि अधुनानसम्यग्ज्ञायन्तेऽतो दिनपंचाशतैव पर्युषणासंगतेतिवृद्धाः

अर्थ--इस पाठमें तपगच्छनायक श्रीमत्कुलमडन सूरिजी महाराज लिखते हैं कि गृहिज्ञात पर्युषणपर्व तो उसीको कहते हैं कि जिसमें सांवत्सरिक अतिचारोंका आलोचन केशलुचन पर्युषणमें कल्पसूत्रका कथन चैत्यपरिपाटी और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण यह कृत्य किये जाते हैं और जिस गृहिज्ञात पर्युषणपर्व से व्रत [दीक्षा] पर्यायवर्षोंकी गिनतीकी जाती है वह गृहिज्ञात पर्युषणपर्व चन्द्रवर्षमें ५० दिने भाद्रशुक्ल ५ को था परन्तु युगप्रधान श्रीकालकसूरि महाराजकी आज्ञासे चतुर्थीको भी लोकप्रसिद्ध करनेमें आती है और जो अभिवर्द्धितवर्षमें आषाढचतुर्मासीसे २० दिने श्रावणशुक्ल ४ को उक्त सांवत्सरिककृत्य विशिष्ट गृहिज्ञात पर्युषणपर्व करनेके लिये निर्युक्तिनीशीथचूर्णि आदि आगमोमें लिखा है सो जैनसिद्धातटिप्पनेके अनुसार है क्योंकि उस जैनसिद्धांतटिप्पनेमें युगके मध्यभागमें पौषमास और युगके अंतभागमें आषाढमास वढता है दूसरेमासोंकी वृद्धि नहीं होती लेकिन वह जैनटिप्पने इस कालमें सम्यक् प्रकारसे नहीं जाननेमें आते हे इसलिये वर्तमान कालमें श्रावणादि मासोंकी वृद्धिवाले लौकिकटिप्पनेका दूसरा श्रावण आदि १ मासके ३० दिनोको जैनटिप्पनेके अनुसार उपर्युक्त अभिवर्द्धितवर्ष सम्बन्धी श्रावण शुक्ल ४ को श्रीपर्युषणपर्व के २० दिनोके साथ अधिक सामिलकरके कुल ५० दिने दूसरे श्रावणशुक्ल ४ को वा स्वाभाविक प्रथम भाद्रपदशुक्ल ४ को अवश्यमेव श्रीपर्युषण

आदि कल्पसूत्रकी टीकाओंमे यहविषय प्रधानरूपसे प्रतिपादन कियाहै अत. तत्सम्बंधीपाठ लिखजाता है.—

देखिये श्रीकल्पकिरणावली टीकामे पर्युषण समाचारी का पाठ यथा।

इहहिपर्युषणाद्विविधा गृहिज्ञाताऽज्ञातभेदात्तत्र गृहिणामज्ञातायस्यां वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते यत्नेनकल्पोक्त द्रव्यक्षेत्रकाल भावस्थापना क्रियते साचाषाढ़पूर्णिमायां योग्यक्षेत्राभावेतु पंचपंचदिनवृद्ध्या दशपर्वतिथिक्रमेण यावत्भाद्रसित पंचमीमेवेति, गृहिज्ञातातुद्विधा सांवत्सरिककृत्यविशिष्टा गृहिज्ञात-मात्राच तत्र सांवत्सरिककृत्यानि

सांवत्सरप्रतिक्रांति १ लुंचनं २ चाष्टमंतपः ३ सर्वार्हद्भक्तिपूजाच ४ संघस्यक्षामणंमिथः ५ एतत्कृ-त्यविशिष्टा भाद्रपदसितपंचम्यां कालकाचार्या देशा-चतुर्थ्यामपि जनप्रकटा कार्या, द्वितीयातुअभिवर्द्धित-वर्षे चातुर्मासिक दिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमत्र-स्थितास्म इतिपृच्छतां गृहस्थानां पुरोवदन्तिसातु गृहिज्ञातमात्रैव तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्येपौषोयुगान्ते चाषाढ़एववर्द्धते नान्येमासा स्तचाधुनासम्यग् न ज्ञायंतेऽतः पञ्चाशतैवदिनैः पर्यु षणासंगतेति वृद्धाः।

अर्थ—पर्युषणा दोप्रकारकी है एक गृहिज्ञाता और दूसरो गृहिअज्ञाता इसमे गृहिअज्ञाता पर्युषणपर्व वहहै कि जिसमे वर्षा योग्य पीठफलकादि वस्तु प्राप्त होनेपर यत्नसे कल्पोक्त द्रव्य क्षेत्र, काल,भाव, द्वारा स्थापना की जातीहै वहस्थापनाविशिष्ट पर्युषणा आषाढ़पूर्णिमाको करे योग्यक्षेत्रके अभावमे पांच २ दिनोंकी वृद्धि

करके योग्यक्षेत्र की प्राप्ति होने पर उपर्युक्त चूर्णि टीकापाठों से अभिवर्द्धितवर्षोंमे जैनटिप्पनेके अनुसार श्रावणशुक्ल ५ पयन्त चार- पर्वतिथियोंमे एवंचंद्रवर्षोंमे यावत् भाद्रपद शुक्ल ५ पर्यंत दशपर्व- तिथियोंमे उक्त **गृहिअज्ञात [स्थापना विशिष्ट]** पर्युषण करे परन्तु उक्त उपाध्याय महाराजोंने तो पांचपांच दिनों की वृद्धि करके दशपव तिथियों के क्रमसे यावत् भाद्रशुक्ल ५ कोही करने का लिखा है सो यह वातविचार करनेयोग्यहै अस्तु पुनः उक्त उपाध्याय जी ने लिखाहै कि **गृहिज्ञाता** पर्युषणा दोप्रकारकीहै एक सांवत्सरिक कृत्यविशिष्टा दूसरी **गृहिज्ञातमात्रा** नामकी पाठकगण! देखिये— आगमप्रतिकूल उत्सूत्रप्ररूपणाद्वारा उक्त उपाध्याय महाराजोंने **गृहिज्ञाता** पर्युषणाके मनःकल्पित यह दोभेद करके जैनटिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्षमे आषाढ़ चतुर्मासीसे २० दिने श्रावण शुक्ल ४ को सांवत्सरिककृत्य विशिष्ट **गृहिज्ञाता** नामकी पर्युषणा के स्थानमे सांवत्सरिक कृत्यरहित **गृहिज्ञातमात्रा** नामकी पर्यु- षणा ठहराईहै सो उपर्युक्त निर्युक्ति निशीथचूर्णि वृहत्कल्पसूत्र टीका तथा श्रीपर्युषण कल्पसूत्र अवचूरि आदिआगम पाठोंसे प्रत्यक्ष विरुद्धहै अतएव सांवत्सरिक कृत्य रहित **गृहिज्ञातमात्रा** नामक यह नवीनभेद सर्वथा अमान्यहै क्योंकि चंद्रवर्षमे ५० वें दिन और अभिवर्द्धितवर्षमे २० वें दिन उक्तपाठों के अनुसार **गृहिज्ञाता** नामसेही पर्युषण माननेयोग्यहै और उस **गृहिज्ञाता** पर्युषणामे उक्तउपाध्याय महाराजके कथनानुसार यह सांवत्सरिक कृत्य करनेके हैं १ सांवत्सरिकप्रतिक्रमण २ केशलुंचन ३ अष्टमतप ४ सव अरिहंत प्रतिमाका दर्शन तथा पूजा और ५ सवसंघ को परस्पर क्षमतक्षामणा करना इनकृत्योंसे विशिष्ट **गृहिज्ञाता** पर्युषण चंद्रवर्षमे ५० वें दिन भाद्रपदशुक्ल पंचमी पर्वतिथि कोथी परन्तु युगप्रधान श्रीकालकाचार्य महाराजके आदेशसे चतुर्थी अपर्वतिथि मेभी लोकप्रसिद्ध

करनेमे आतीहै और दूसरी गृहिज्ञाता [उक्तसांवत्सरिक-कृत्यविशिष्ट] पर्युषणापर्व अभिवर्द्धितवर्षमे आषाढ चातुर्मासिक दिनसे २० वें दिन श्रावण शुक्ल ४ को १०० दिन कार्तिक पूर्णिमापयत शेषरहते उपर्युक्त निशीथ चूर्णि आदि आगमपाठोंके अनुसार अवश्य करनेकी है और हम यहां स्थित हुवेहैं इसप्रकार साधुलोग पूछने हुवे गृहस्थों के अगाडी बोलतेहैं परन्तु जैनटिप्पने के अनुसार प्राचीन काल संबधी अभिवर्द्धितवर्ष की इस गृहिज्ञात पर्युषणाको ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमासमे स्थापन करने के लिये उक्त उपाध्याय महाराजोंने सिद्धान्त विरुद्ध गृहिज्ञातमात्रा नामक कपोलकल्पित एक नवीन भेद द्वारा लिखवताईहै इस से ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास की शुक्ल चतुर्थीको पर्युषणपर्व उक्त पचकृत्य विशिष्ट करना कभी नहीं सिद्ध होसकता है क्योंकि उक्त उपाध्याय महाराजोंने उपर्युक्त पाठमें लिखाहै कि [तदपि] याने अभिवर्द्धितवर्षमे २० दिने श्रावण शुक्ल ४ को श्रीपर्युषणापर्व निर्युक्ति निशीथ चूर्णि आदि सिद्धान्तोमे करनेका जो लिखाहै सो जैनटिप्पने के अनुसारहै क्योंकि उसमे युगके मध्य भागमे पौष और युगके अतभागमे आषाढ यही दोनो मास अधिक होतेहैं अन्यमासों की वृद्धि नहीं होती और वे जैनटिप्पने वर्तमानकालमे सम्यक् प्रकार सिद्धात रीतिसे जाननेमे नहीं आतेहैं अतएव जैनटिप्पनेके अनुसार २० वें दिन उक्त पर्युषणा के स्थानमें लौकिक टिप्पने के अनुसार अभिवर्द्धितवर्षमे दूसरा अधिक श्रावण आदि १ मासके ३० दिनो को अधिक सामिल करके कुल ५० वें दिन अवश्य दूसरे श्रावण शुक्ल ४ को वा प्रथम भाद्रशुक्ल चतुर्थीको श्रीपर्युषणपर्व करना कल्पसूत्र मूलपाठ के साथ सगतहै इस प्रकार प्राचीन श्रीमान् वृद्धपूर्वाचार्यों का कथन है, परन्तु तपगच्छवाले २० वें दिन उक्त पर्युषण के स्थानमे लौकिक टिप्पनेके अनुसार अभिवर्द्धितवर्षमे दूसरा अधिक श्रावण आदि ... मासोंके

६० दिनो को सामिलकरके ८० दिने भाद्रशुक्ल चतुर्थीको वा ८० दिने दूसरे भाद्रपद अधिकमास की शुक्ल चतुर्थीको पर्युषणपर्व उक्तपाठ से असंगत करतेहैं अतएव उक्त श्रीमान् वृद्धपूर्वाचार्य महाराजोंके वचनों की और कल्पसूत्र पाठ की आज्ञा को भंग करतेहैं—

देखिये श्रीकल्पसूत्रमे पर्युषण समाचारी संबंधी अंतिमपाठ यथा—

वासाणं सवीसइराएमासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो अंतराविय्से कप्पइ नोसे कप्पइ तंरयणिं उवायणावित्तये ।

अर्थ—वीर संमत ६८० वा ६९३ मे श्रीकल्पसूत्र के विषे [अंदर] स्थविरावलीपाठको तथा पर्युषण समाचारीपाठको समयानुसार अनुसंधानकरके श्रीपर्युषणाकल्पसूत्र आगम के उद्धारकर्त्ता श्रीमत् देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी महाराजने इसपाठसे जैनटिप्पनेके अभावसे लौकिकटिप्पनेके अनुसार चंद्रवर्ष और अभिवर्द्धितवर्षमे पर्युषण करनेका नियम लिखाहै कि वर्षाकाल के २० रात्रि सहित १ मास अर्थात् ५० दिन वीत जानेपर वर्षा वास संबंधी श्रीपर्युषण हमकरतेहैं और कारणयोगसे ५० दिनकेभीतर भी पर्युषणपर्व रना कलपताहै लेकिन ५० वें दिन की रात्रिको श्रीपर्युषण संबंधी साँवत्सरिक प्रतिक्रमण और केश लुंचन [लोच] इत्यादि उक्त कृत्यकिये विना उल्लंघन करना सर्वथा नहीकलपताहै अतएव इसवातको स्पष्ट रीति से श्रीकल्पसूत्रके सवी टीकाकारोंने चंद्र-वर्ष मे ५० दिने भाद्रशुक्ल ४ को और अभिवर्द्धितवर्षमे जैनटिप्पनेके अनुसार २० दिने श्रावण शुक्ल ४ को पर्युषणके स्थानमे लौकिक टिप्पने के अनुसार दूसरा श्रावणआदि १ मासके ३० दिनको अधिक सामिलकर ५० वें दिन श्रीपर्युषणपर्व करनेके लिये प्राचीन वृद्ध पूर्वाचार्योंकी संमतिपूर्वक श्रीकल्पसूत्र उक्त मूल पाठानुसार संगत कियेहैं इसलिये वह ५० दिन दूसरे श्रावणसुदी ४ को और प्रथम

भाद्रसुदी ४ को पूरे होतेहैं अतएव उसी दिन श्रीजिनाज्ञा के आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको श्रीपर्युषणपर्व करना युक्तहै परन्तु जैनटिप्पनेके अनुसार २० वें दिन पर्युषणके स्थानमे दोमासके ६० दिन मिलाकर ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमास की सुदी ४ को पर्युषण करना यह मतव्य तो तपगच्छीय श्रीधर्मसागरजी विरचित उक्त कल्पकिरणावलीटीका पाठ से भी सगतनही है।

[प्रश्न] उक्त आगम पाठोंसे अभिवर्द्धितवर्षोंमे जैनटिप्पनेक अनुसार २० दिने श्रावणशुक्ल ४ को पर्युषणपर्व प्राचीनकालमे कियाजाता था परन्तु वर्तमान कालमे जैनटिप्पने के अभावसे उसके स्थानमे लौकिक टिप्पनेके अनुसार ८० दिने यावत् दूसरे भाद्रपद अधिकमासमे पर्युषण पर्व करना उचित नहीहै किंतु ५० वें दिन दूसरे श्रावण वा प्रथमभाद्रपदमे उक्त कल्पसूत्र मूलपाठ तथाटीका पाठ से सगतहे। परतु यह प्रवृत्ति कब से हुईहै सो बताइये –

[उत्तर] जिज्ञासुगण ! उपाध्याय श्रीविनयविजयजी विरचित कल्पसुबोधिका टीकामे पाठ है कि।

वीरात्रिनंदांक [६९३] शरद्यचीकरत् त्वच्चैत्यपूतेध्रुवसेन भूपतिः॥ यस्मिन् महैः संसदि कल्पवाचना माद्यां तदानंदपुरं न कःस्तुते ॥१॥

अर्थ—हेप्रभो उस आनन्दपुर [गुर्जरदेशस्थ वडनगर] की स्तुति कौन नहीं करताहै अर्थात् सबी करतेहं क्योंकि आपके मंदिरसे पवित्र श्रीआनदपुर नगरमे वडेमहोत्सव के साथ श्रीसंघके समक्ष श्रीवीर निर्वाणसे ९९३ वर्षमे श्रीध्रुवसेन राजाने अपनीराज सभामे श्रीकल्पसूत्रकी प्रथम वाचना [व्याख्यान] कराई उससमय निम्नलिखित गाथानुसार ३ बातोंका विच्छेद हुआ—

प्रमाण श्रीतीत्थो गालिय[तीर्थोंद्धार] पयन्ने की गाथा यथा—

१ वीसदिणेहिं कप्पो । २ पंचगहाणीय ३ कप्पठवणाय ॥ नवसय तेणउएहिं । वुच्छिन्ना संघआणाए ॥१॥

अर्थ—वीरसंवत् ६६३ वर्षमे जैनटिप्पनेकी गुरुगमताका अभाव होने से तदनुसार २० दिने अभिवर्द्धितवर्षमे पर्युषण करनेका कल्प उक्त श्रीसंघने विच्छेद किया क्योंकि उस कल्पके स्थानमे वीरसंवत् ९८० वा ९९३ वर्षमे श्रीदेवर्द्धि गणिक्षमाश्रमणजी महाराजने भावी-कालमे जैनटिप्पने की गुरुगमताका अभाव होनेके कारण कल्पसूत्र की पर्युषण समाचारी को पुस्तकपर लिखते समय [**वासाणं २० सवीसइराए १ मासे वइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ**] इस वाक्यानुसार लौकिक टिप्पने की रीति से वर्षा काल सम्बन्धी २० रात्रि सहित १ मास बीत जाने पर अर्थात चन्द्रवर्ष में ५० दिने भाद्रपद में और अभिवर्द्धितवर्ष में भी ५० दिने दूसरे श्रावण में वा प्रथम भाद्रपद मास में वर्षावास के पर्युषणपर्व करने की आज्ञालिखीहै यह बात उक्त कल्पसूत्र टीकापाठोंसे विदित होतीहै और जैनटिप्पनेके अभावसे लौकिक टिप्पनेके अनुसार चैत्र आदि अन्यमासोंकी वृद्धिहोनेसे उस अभिवर्द्धितवर्षमे आषाढ़ चतुर्मासी ४ महीनेकी होती है और श्रावणादिमासों की वृद्धि होने से आषाढ़ चतुर्मासी ५ महींनेकी होती है इसी कारण ५० वें दिन पर्युषण किये बाद कभी ७० दिन कभी १०० दिन कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत शेष रहते हैं अतएव उक्त दिनोको सामिल करनेसे कभी १२० दिन और कभी १५० दिन आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीसे कार्तिक शुक्ल १४ पर्यंत वर्षा कालमे रहनेके लिये होते हैं इस लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, द्वारा कल्प स्थापना रूप पर्युषण के पश्चात् ७५ दिन ८० दिन ८५ दिन इत्यादि दशपंचकपरिहानी से

रहने का जो कल्प था सो वर्तमानकालमें नहीं रहा, इसी लिये श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी ने पञ्चकपरिहानी का कल्प श्रीकल्पसूत्रमें नहीं लिखा है अतएव उक्त श्रीसंघने पञ्चकपरिहानी से वर्षाकाल में रहने सम्बन्धी कल्पका विच्छेद बताया है यहा पर तात्पर्य यह है कि आषाढ चतुर्मासी से ५० दिने पर्युषणपर्व किये बाद कार्तिक पूर्णिमापर्यंत चाहे ७० दिन शेष रहने का हो चाहे १०० दिन इससे कुछ भी हानि नहीं है क्योंकि जब लौकिक टिप्पने के अनुसार ५० दिने पर्युषणपर्व और कार्तिकमें कार्तिक चतुर्मासिककृत्य करना निश्चित है तो उक्त रीतिसे कार्तिक पूर्णिमा पर्यंत कभी ७० दिन और कभी १०० दिन शेष रहेंगे उसका कभी विच्छेद नहीं हो सकता इसी लिये ५० दिनकी श्रीपर्युषणपर्व सम्बन्धी मर्यादाका उल्लंघन करना श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी ने मना किया है। और लौकिक टिप्पनेके अनुसार आषाढचतुर्मासीसे किसी एक क्षेत्रमें स्थिति करके ५० वें दिन मूल कल्पसूत्रकी वाचना पूर्वक एक गृहिज्ञात पर्युषणपर्व करनेकी मर्यादा वर्तमानकालमें सदाके लिये रक्खी गई है अतएव रहने योग्य क्षेत्रके अभावमें पाच पाच दिनोंकी वृद्धिपूर्वक दशपचकोंमें रहने योग्य अन्य क्षेत्र मिलने पर मूल कल्पसूत्र वाच कर द्रव्य क्षेत्रकाल भाव द्वारा गृहिअज्ञात पर्युषणकी स्थापना पूर्वकालमें की जाती थी वह कल्प स्थापना करनेकी रीति श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी ने कल्पसूत्रमें नहीं लिखी है इसीसे ज्ञात होता है कि उक्त श्रीसंघकी आज्ञासे विच्छेद हुई है पाठकगण ! बड़ा आश्चर्य है कि १०० दिनके भयसे तपगच्छके उक्त उपाध्याय महाराजोंने तो कल्पसूत्रादि आगमोक्त ५० दिने श्रीपर्युषणपर्व करना निषेध करके ८० दिने यावत दूसरे भाद्रपद अधिकमासमें पर्युषणपर्व स्थापन किये तथापि आश्विन व कार्तिककी वृद्धि होने पर १०० दिन यावत् दूसरे कार्तिक अधिक मासमें चतुर्मासीकृत्य

पर्यन्त होतेही हैं तो ५० दिनकी मर्यादाको उल्लंघन करनेके अतिरिक्त उक्त उपाध्याय महाराजोंने क्या लाभ उठाया इसको आपही लोग विचारिये—

[प्रश्न] उपर्युक्त आगमपाठोंमें तीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महाराजोंने स्वाभाविक प्रथममास और दूसरा अधिकमास इन दोनों मासोंको गिनतीमें लिया है तथापि तपगच्छ वाले अपनी मतिकल्पनासे कहते हैं कि प्रथम भाद्रमास और दूसरा श्रावण अधिकमास गिनतीमें नहीं है तो उक्त महाराजोंके वचनोंको अथवा स्वाभाविक प्रथममास तथा दूसरा अधिकमासको मानना नहीं रहा किन्तु गच्छपक्षपातसे प्रथम श्रावण और दूसरा भाद्रपद अधिकमास अपनी इच्छानुसार गिनतीमें मानना रहा इसलिये तपगच्छीय प्रियबन्धुओंको हम मैत्रीभावसे पूछते हैं, कि दूसरा भाद्रपद अधिकमास आप गिनतीमें मानते हैं या नहीं !

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि स्वगच्छमन्तव्यद्वारा दूसरे भाद्रपद अधिकमासमें ८० दिने हम पर्युषणपर्व करते हैं इसी लिये उस मासको गिनतीमें मानते हैं।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं दूसरे भाद्रपद अधिक मासकी तरह दूसरे श्रावण मासको गिनतीमें मानकर ५० दिने दूसरे श्रावणमासमें श्रीपर्युषणपर्व क्यों नहीं करते हो !

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं हम भाद्रपदमें पर्युषण मानते हैं इसलिये दूसरे श्रावण अधिक मासको गिनतीमें न मान कर उस माससें पर्युषणपर्व नहीं करते हैं किन्तु ८० दिने भाद्रपदमें करते हैं—

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं कि भाद्रपदमें पर्युषण मानते हो तो प्रथम भाद्रपदमें ५० वें दिन पर्युषणपर्व क्यों नहीं करते हो।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते है कि हम प्रथम भाद्रपदको भी गिनतीमें नही मानते हैं इसलिये प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषण न करके दूसरे भाद्रपद अधिक माससे ८० दिने करते हैं।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं कि आप प्रथम भाद्रपद को गिनतीमें नहीं मानते है इसी तरह प्रथम श्रावणको गिनतीमें मानते हैं या नही !

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि प्रथम श्रावणको हम गिनती में मानते है किन्तु दूसरे श्रावणको नहीं।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते है कि प्रथम श्रावणको आप गिनतीमें मानते हो तो इसी तरह प्रथम भाद्रपदको गिनतीमें नही मानना यह किसके घरका न्याय है।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते है कि न्याय हो चाहे अन्याय हो हमलोग तो अपने गच्छमन्तव्यके साथ मिलते हुवे मासोंको मानेगे परन्तु आपके कहनेसे प्रथम श्रावणकी तरह प्रथम भाद्रपद को गिनतीमें नहीं मानेगे क्योंकि प्रथम भाद्रपदको गिनतीमें हम मान लें तो अवश्य प्रथम भाद्रमासमें ५० दिने अपर्युषणपर्व हमको करना पडे और इससे ८० दिने दूसरे भाद्र अधिक मासमें पर्युषण-पर्व करनेकी हमारी गच्छरीति भगडी जाती है सो किस तरह होने देंगे इस गूढ बातको समझनेको तो समझो !

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं कि प्रथम श्रावणको गिनतीमें मानते हो इसी तरह प्रथम भाद्रपद मासको गिनतीमें न मानना और दूसरे भाद्रपद अधिक मासको गिनतीमें मानते हो इसी तरह दूसरे श्रावण अधिक मासको गिनतीमें न मानना और पर्युषण ८० दिने करना इस पक्षपातयुक्त मिथ्याप्रलापको कौन मानेगा।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि मिथ्याप्रलाप हो चाहे न हो हमलोग दूसरा भाद्रपद अधिक मासको गिनतीमें मानते हैं इसी तरह अगर दूसरे श्रावण अधिक मासको भी गिनतीमें मान लेवें तो ५० दिने दूसरे श्रावणमें अवश्य पर्युषणपर्व करना पड़े इससे भी श्रावण वृद्धि होने पर ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणपर्व करनेका हमारा मन्तव्य भंग हो जाता है सो किस तरह होने देंगे।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं कि अधिक मासको गिनतीमें नहीं मानते हो तो पांच महीना होने पर दूसरे कार्तिक अधिक मासमें १०० दिने चतुर्मासिककृत्य करना त्याग कर प्रथम श्रावण मासकी तरह प्रथम कार्तिक मासको गिनतीमें मान कर उस प्रथक कार्तिक मासमें ७० दिने कार्तिक चतुर्मासिककृत्य करना आगमसंमत है सो क्यों नहीं स्वीकार करते हो।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि आगमसंमत हो चाहे न हो हम प्रथम श्रावणको गिनतीमें मानते हैं इसी तरह प्रथम कार्तिक मासको अगर गिनतीमें मानलेवें तो ७० दिने उस प्रथम कार्तिकमें चातुर्मासिककृत्य करना पड़े इससे भी हमारा गच्छ-मन्तव्य भङ्ग होता है इसी लिये दूसरे कार्तिक अधिक मासको गिनतीमें मान कर १०० दिने दूसरे कार्तिक अधिक मासमें कार्तिक चतुर्मासीकृत्य करेंगे।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते हैं कि आषाढ़ चतुर्मासीके अनन्तर यावत् दूसरे भाद्रकृष्ण चतुर्दशी पर्यंत ५ पाक्षिक प्रति-क्रमण के अप्भुट्ठियेमें आप पन्द्रह २ दिन बोलते हैं उस सम्बन्धी ७५ दिन हुवे और तदनन्तर ५ वें दिन दूसरे अधिक भाद्रपद शुक्ल ४ को पर्युषण करते हैं इसलिये आपही के मुखसे कुल ८० दिनहो चुके हैं तो फिर मिथ्यापुकारसे ५० दिने पर्युषणपर्व किये क्यों बताते हैं और इसी तरह पर्युषणके बाद दूसरे अधिक कार्तिक शुक्ल १४

पर्यंत पाक्षिककृत्योंके हिसावसे १०० दिन आपही के मुखसे स्पष्ट सिद्ध होते हे उस को मायामृषावादसे ७० दिन क्यों वोलते हे और कार्तिकादिक तीन चातुर्मासिककृत्य अधिक मास होने पर ५ पाच महीनेके १० दश पाक्षिक कृत्यों में पन्द्रह २ दिनो का उच्चारण पूर्वक आप १५० दिने करते हैं तथापि अभ्भुट्टियेमें ४ मास ८ पक्ष १२० रात्रि दिन निरर्थक मिथ्या क्यों वोलते हैं कारण कि दूसरे कार्तिक अधिक मासको और दूसरे भाद्र अधिक मासको आप अवश्य गिनतीमें मानते हे तो दूसरा अधिक श्रावण और प्रथम कार्तिक तथा प्रथम भाद्रमासने आपका क्या विगाड किया है कि उन मासोंको अभ्भुट्टियेके पाठमें नहीं गिनते हैं सो ऐसा करना उस अभ्भुट्टियेके पाठमें तो नहीं लिखा है क्योंकि अभ्भुट्टिया तो मास वृद्धिके अभावसे जेसा चन्द्रवर्षमें १२ मास २४ पक्ष ३६० रात्रि दिनका है वैसाही अधिक मास न होनेके कारण चन्द्र चतुर्मासीमें ४ मास ८ पक्ष १२० रात्रि दिनकी गिनतीके पाठ वाला है अत दूसरा श्रावण तथा प्रथम कार्तिक और प्रथम भाद्र आदि मासोंको गिननीमें न माननेका सिद्धातविरुद्ध आग्रह करना अनुचित है।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि तुमने उपर्युक्त प्रश्नमें जो कथन किया है सो सत्य है परन्तु वैसा सत्य वर्ताव प्रकाश करनेसे हमारा पर्युषण आदि उक्तमन्तव्य प्रत्यक्ष मिथ्यासिद्ध होता हैं इसलिये हमारे पर्युषणादि गच्छमन्तव्यके साथ मिलना हुआ दूसरा भाद्रपद अधिक मासादि आगमवचनोको गिननीमें मानेगे अन्यको नहा।

[प्रश्न] खरतरगच्छवाले पूछते है कि तुमारा उक्तगच्छ मन्तव्य मिथ्यासिद्ध होता है तो उक्त आगमपाठोंसे अपना मन्तव्य प्रतिकूल क्यों प्रति पादन करते हो।

[उत्तर] तपगच्छवाले कहते हैं कि हमारे पूर्वजोंने जिस किसी तरह हमारे उक्त पर्युषण मन्तव्यको प्रतिपादन किया है वैसा हमभी करेंगे और अपने गच्छपक्षकी हानि देखकर उक्तआगम पाठोंकी प्रतिकूलताका भय नहीं रक्खेंगे क्योंकि वैसा करनेसे लोकमें हमारी पराजय द्वारा न्यूनता तो न होगी।

[उत्तरोत्तर] खरतरगच्छवालेभी कहते हैं कि तपगच्छीय श्रीशांतिविजयजी आदि महाशय याद रक्खें कि उक्त आगम पाठोंसे आपके उक्त पर्युषण मन्तव्यका पराजय कर दिया है इसी प्रकार फिरभी करते रहेंगे इसलिये चुपचाप बैठ रहिये आगम विरुद्ध आपलोगोंका मिथ्याप्रलाप कौन सुनेगा।

इति श्रीप्रश्नोत्तर मञ्जरीग्रंथे प्रथमोभागः

॥ सम्पूर्णः ॥

निवेदन !

महाशय, धर्म्मानुरागी सज्जनादि वृन्द !

आप लोगों से सविनय निवेदन है कि जो कुछ प्रमाद से या प्रेस में छपने संबंधी इस ग्रन्थ में त्रुटि रह गई हो उस को शुद्धता से पढ़ें क्योंकि भूल होना छद्मस्थ का सहज स्वभाव है और आशा है कि इस ग्रंथ को पढ़ कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करेंगे।

आप लोगोंका कृपाकांक्षी

निवेदक—

बुद्धिसागर मुनिः

❋ ॐनमः परमात्मने ❋

श्रीप्रश्नोत्तरमंजरीग्रंथस्य

द्वितीय भागः ।

लेखक.

शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमज्जिनयश
स्सूरिजी महाराज की आज्ञा के अनुसार
पन्यास श्रीकेशर मुनिजी गणि ।

प्रकाशक

बुद्धिसागरमुनि ।

मकसूदाबाद निवासी श्रावक कालुरामजी श्रीमाल की
पत्नी श्राविका गुलाब बाई आदि की तरफ से द्रव्य
की सहायता से

श्रीठाकुरद्वार प्रेस लखनऊ में शिवनाथ शर्मा द्वारा मुद्रित ।

निवेदन

महाशय ! धर्मानुरागी सज्जनादि वृन्द !

आप लोगों से सविनय निवेदन है कि इस ग्रंथ को एकवार मध्यस्थ भावसे संपूर्ण वाँचकर सत्यता को स्वीकार करें और असत्यता को त्यागें यदि इस पुस्तक में प्रमादसे या छपने में कोई त्रुटि वा अशुद्धि हुई हो तो उसको सुधार कर पढियेगा किंबहुना

इस पुस्तकके खरचमें निम्न लिखित महाशयों ने अपनी उदारता से सहायता की है उनके नाम-

रायबहादुर श्रावक मेघराजजी कोठारी की पत्नी श्राविका मुन्नू बाई. मु. मक्सूदाबाद अजीमगंज ।

श्रावक कालुरामजी श्रीमाल की पत्नी श्राविका गुलाब बाई. मु. श्रीमक्सूदाबाद अजीमगंज

श्रावक हीरानंदजी सुचंती की पत्नी मु. विहार

ॐ

॥ नमोवीतरागाय ॥

* अथ श्रीप्रश्नोत्तरमञ्जरी ग्रंथस्य *

। द्वितीयभागः प्रारभ्यते ।

[प्रश्न] लौकिक टिप्पने में पूर्णिमा या अमावास्या तिथि घटने पर तपगच्छ वाले अपनी मिथ्या कल्पनासे तेरस को घटाकर उस उदय त्रयोदशी तिथिमे पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं और उदय चौदश तिथि को पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि करके मानते हैं सो यह उन लोगों का मतव्य शास्त्रानुकूल है या प्रतिकूल ?

[उत्तर] तपगच्छ वालो का यह उक्त मतव्य शास्त्रपाठो से प्रतिकूल ही सिद्ध होता है । क्योंकि श्रीहीरविजयसूरिजी कृत हीरप्रश्नोत्तर नाम के ग्रथ में लिखा है कि पाठ यथा

____पंचमी तिथि स्त्रुटिता भवति तदा तत्तपः कस्यां तिथौ क्रियते पूर्णिमायां च त्रुटितायां कुत्रेति अत्र पंचमी तिथिस्त्रुटिता भवति तदा तत्तपः पूर्वस्यां तिथौ क्रियते पूर्णिमायां च त्रुटितायां त्रयोदशी चतुर्दश्योः क्रियते त्रयोदश्यां विस्मृतौ तु प्रतिपद्यपीति॥

अर्थ-इस पाठमें तपगच्छनायक श्रीहीरविजयसूरिजी का यह कथन है कि पचमी तिथिकी त्रुटि होतो उस तिथिकी तपस्या किस तिथि मे की जाय और पूर्णिमा की त्रुटि होने पर उस पूर्णिमा तिथिकी तपस्या किस तिथि मे करना चाहिये इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि पंचमी तिथिकी त्रुटि होतो उस तिथिका तप पूर्वली याने पूर्वकी जो चतुर्थी तिथि है उसमें करना चाहिये और पूर्णिमा की त्रुटि होने पर उस पूर्णिमा तिथिकी तपस्या

त्रयोदशी वा चतुर्दशी इन दो तिथियों में करें यदि त्रयोदशी तिथि में वह तप करना भूल जाय तो टूटी हुई पूर्णिमा संबंधी तपस्या [प्रतिपदि] एकम तिथि को अवश्य करें–

पाठकगण ! देखिये श्रीहीरविजयसुरिजी ने उक्त पाठमें पूर्णिमा तिथि के घटने पर उस तिथिकी तपस्या त्रयोदशी चतुर्दशी और एकम इन तिथियों में करने की आज्ञा लिखी है परंतु पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि घटने पर त्रयोदशी तिथि मिथ्या कल्पनासे घटाकर उस त्रयोदशी तिथिमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने की आज्ञा नहीं लिखी है तथापि वर्तमान काल के तपगच्छीय लोग उदय चतुर्दशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य त्याग कर उदय त्रयोदशी में पाक्षिक प्रतिक्रमण संबंधी कृत्य करते हैं और उस उदय चतुर्दशी को अपनी मिथ्या-कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि बनाते हैं यह कितनी बड़ी अपने आचार्य के कथन से प्रतिकूल हमारे प्रियबंधुओं की साहसिकता है सत्यरीतिसे विचार किया जाय तो पूर्वकाल में जब पंचमी पर्व तिथिकी पर्युषणा की जातीथी तब पूर्णिमा और अमावास्या पर्व तिथि को पाक्षिक प्रतिक्रमण के कृत्य किये जाते थे परंतु युग प्रधान श्रीमान् कालकाचार्यमहाराज ने चतुर्थी को पर्युषण पर्व किया इस लिये उसी आचारणाके अनुसार पाक्षिक प्रतिक्रमण भी चतुर्दशी पर्व तिथि को करना स्थिर किया गया परन्तु उसको भी वर्तमानकाल में चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमावास्या का क्षय होने पर तपगच्छ वालों ने आगम और उक्त आचारणा के विरुद्ध त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमण संबंधी कृत्य करना स्वीकार कर लिया है और भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी वा पंचमी तिथिका क्षय होने पर भाद्र कृष्ण एकादशी से पर्युषण बैठाकर तपगच्छ वाले तृतीया अपर्व तिथि में भी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के कृत्य कर लेते हैं अतएव यह मंतव्य कदापि आगम संमत नहीं हो सकता है क्योंकि जो पंचमी की पर्युषणा थी वह कारण योगसे श्रीकालकाचार्यमहाराज ने चतुर्थी को की उस चतुर्थी का क्षय होने पर तीज अपर्व तिथि को पर्युषण करना उचित नहीं है। यतः

[पव्वेसु पज्जोसवेयव्वं णो अपव्वेसु]

ॐ

॥ नमोवीतरागाय ॥

॥ अथ श्रीप्रश्नोत्तरमञ्जरी ग्रंथस्य ॥

। द्वितीयभागः प्रारभ्यते ।

[प्रश्न] लौकिक टिप्पने में पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि घटने पर तपगच्छ वाले अपनी मिथ्या कल्पनासे तेरस को घटाकर उस उदय त्रयोदशी तिथिमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं और उदय चौदश तिथि को पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि करके मानते हैं सो यह उन लोगों का मतव्य शास्त्रानुकूल है या प्रतिकूल !

[उत्तर] तपगच्छ वालों का यह उक्त मतव्य शास्त्रपाठो से प्रतिकूल ही सिद्ध होता है । क्योंकि श्रीहीरविजयसूरिजी कृत हीरप्रश्नोत्तर नाम के ग्रंथ में लिखा है कि पाठ यथा

पंचमी तिथि स्त्रुटिता भवति तदा तत्तपः कस्यां तिथौ क्रियते पूर्णिमायां च त्रुटितायां कुत्रेति अत्र पंचमी तिथिस्त्रुटिता भवति तदा तत्तपः पूर्वस्यां तिथौ क्रियते पूर्णिमायां च त्रुटितायां त्रयोदशी चतुर्दश्योः क्रियते त्रयोदश्यां विस्मृतौ तु प्रतिपद्यपीति॥

अर्थ–इस पाठमें तपगच्छनायक श्रीहीरविजयसूरिजी का यह कथन है कि पचमी तिथिकी त्रुटि होतो उस तिथिकी तपस्या किस तिथि मे की जाय और पूर्णिमा की त्रुटि होने पर उस पूर्णिमा तिथिकी तपस्या किस तिथि मे करना चाहिये इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि पचमी तिथिकी त्रुटि होतो उस तिथिका तप पूर्वली याने पूर्वकी जो चतुर्थी तिथि है उसमें करना चाहिये और पूर्णिमा की त्रुटि होने पर उस पूर्णिमा तिथिकी तपस्या

त्रयोदशी वा चतुर्दशी इन दो तिथियों मे करे यदि त्रयोदशी तिथि में यह तप करना भूल जाय तो टूटी हुई पूर्णिमा संबंधी तपस्या [प्रतिपदि] एकम तिथि को अवस्य करे–

पाठकगण ! देखिये श्रीहीरविजयसुरिजी ने उक्त पाठमें पूर्णिमा तिथि के घटने पर उस तिथिकी तपस्या त्रयोदशी चतुर्दशी और एकम इन तिथियों मे करने की आज्ञा लिखी है परंतु पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि घटने पर त्रयोदशी तिथि मिथ्या कल्पनासे घटाकर उस त्रयोदशी तिथिमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने की आज्ञा नहीं लिखी है तथापि वर्तमान काल के तपगच्छीय लोग उदय चतुर्दशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य त्याग कर उदय त्रयोदशी में पाक्षिक प्रतिक्रमण संबंधी कृत्य करते हैं और उस उदय चतुर्दशी को अपनी मिथ्या–कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि बनाते हैं यह कितनी बड़ी अपने आचार्य के कथन से प्रतिकूल हमारे प्रियबंधुओं की साहसिकता है सत्यरीतिसे विचार किया जाय तो पूर्वकाल में जब पंचमी पर्व तिथिकी पर्युषणा की जातीथी तब पूर्णिमा और अमावास्या पर्व तिथि को पाक्षिक प्रतिक्रमण के कृत्य किये जाते थे परंतु युग प्रधान श्रीमान् कालकाचार्यमहाराज ने चतुर्थी को पर्युषण पर्व किया इस लिये उसी आचारणाके अनुसार पाक्षिक प्रतिक्रमण भी चतुर्दशी पर्व तिथि को करना स्थिर किया गया परन्तु उसको भी वर्तमानकाल में चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमावास्या का क्षय होने पर तपगच्छ वालों ने आगम और उक्त आचारणा के विरुद्ध त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमण संबंधी कृत्य करना स्वीकार कर लिया है और भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी वा पंचमी तिथिका क्षय होने पर भाद्र कृष्ण एकादशी से पर्युषण बैठाकर तपगच्छ वाले तृतीया अपर्व तिथि में भी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के कृत्य कर लेते हैं अतएव यह मंतव्य कदापि आगम संमत नहीं हो सकता है क्योंकि जो पंचमी की पर्युषणा थी वह कारण योगसे श्रीकालकाचार्यमहाराज ने चतुर्थी को की उस चतुर्थी का क्षय होने पर तीज अपर्व तिथि को पर्युषण करना उचित नहीं है। यतः

[पव्वेसु पज्जोसवेयव्वं णो अपव्वेसु]

इस निशीथ चूर्णि वाक्य से पर्व तिथि मे पर्युषण करने की आज्ञा है अपर्व तिथि मे नहीं इसी लिये चतुर्थी का क्षय होने पर पंचमी पर्व तिथि में पर्युषण करना उचित है क्योंकि पूर्वकाल में पंचमी को ही किया जाता था और उस पचमी तिथिका क्षय होने पर चतुर्थी को ही पर्युषण पर्व करना उचित है क्योंकि

[सीसो पूच्छति इयाणिं कहं चउत्थीए अपव्वे पज्जोसविज्जति आयरिओ भणाति कारणी-या चउत्थी अज्ज कालगायरिएहिं पवत्तिआ]

इस निशीथ चूर्णिपाठ से युग प्रधान श्रीकालकाचार्यमहाराज की आचरणा से चतुर्थी को पर्युषण पर्व करना आगम समत है अतएव पचमी तिथि घटने पर तीज को मिथ्या कल्पना से घटाकर उस तृतीया को सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पर्युषण पर्व के कृत्य करना और चतुर्थी को पचमी बनाकर उसरोज [नीलोत्तरी] हरासाग खाना इत्यादि आचरण तपगच्छीय लोगों का सर्वथा अनुचित है और इसी तरह पूर्णिमा वा अमावास्या का क्षय होने पर मनमानी मिथ्या कल्पना से सूर्योदय युक्त त्रयोदशी तिथि को तोड़कर उस तेरस के ही रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी को पूर्णिमा वा अमावास्या बनाना यहभी तपगच्छीय लोगों का बर्ताव आगम पाठ तथा आचरणासे प्रतिकूलही प्रतीत होता है।

[प्रश्न] तारीख २७ वीं जुलाई १९१३ के जैन पत्र मे श्रीयुत शांतिविजयजी लिखते है कि " सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति के आधार से साबित है कि पर्व तिथि टूटजाय तो अपर्व तिथिको तोडकर पर्व तिथि को कायम रखना उसका पाठ यहा देना है सुनिये।

[सूर्यप्रज्ञप्ति का पाठ]

अह जइ कहवि न लभइ। तत्ताओ सुरुग्गमेण जुत्ताओ ता अवरविद्ध अवरा वि। हुज्ज नहु पुव्वतिविद्धा ॥ १ ॥

इसका माइना यह हुवा कि जब तिथि सूर्योदय करके युक्त न मिले तो पिछली तिथिमें वो तिथि सुमार करना यानी मानना मतलब जैसे सूर्योदय के वख्त अष्टमी तिथि न हो तो सप्तमी तिथि को तोड़कर अष्टमी को कायम रखते हैं यानी सप्तमी मे अष्टमी मानते हैं वैसेही जब दो पर्व तिथि साथ आवें जैसे कि चौदश पूनम या चौदश अमावास्या उस वख्त भी तेरस को तोड़कर चौदश पूनम कायम रखना यह सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्तिका प्रमाण है। तपगच्छ वाले इसी पाठके प्रमाण से चलते हैं " सो शांति विजयजी का यह कथन उक्त गाथा पाठसे संमत है या नहीं।

[उत्तर] प्रियपाठकगण ! शांतिविजयजी ने सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति का नाम लिखकर-अहजइ इत्यादि जो गाथा बताई है सो सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र वृत्ति में कहीं नहीं मिलती है इस लिये उक्त महाशय ने सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र वृत्ति के किस पाहुड़े में और किस अंक के पत्रमे उक्त गाथा को देखकर प्रमाण के लिये लिख बताई है सो उस स्थान का पूर्वापर संबंधयुक्त सब पाठों को लिखकर प्रकाशित करना उनको उचित है क्योंकि सत्येनास्तिभयं-कचित्-कदाचित् उक्त महाशय यह कहैं कि यह गाथा मैंने सूर्यप्रज्ञप्ति-सूत्र वृत्तिमे देखकर नहीं लिखी है किंतु श्री आत्मारामजी महाराज के शिष्य कांतिविजयजी तथा अमरविजयजी ने जैन सिद्धांत समाचारी की किताब में छपाई हैं उसी को देखकर हमने भी लिखदी है तो मेरा कथन यह है कि वे दोनों महात्मा अभी वर्तमान कालमें विद्यमान हैं इस लिये उन लोगों से पूछकर उक्त गाथा के पूर्वापर संबंधयुक्त सब पाठों को सत्यरूपसे प्रकाश कीजिये और उक्त दोनों महानुभावों से भी मित्रता पूर्वक प्रार्थना है कि इस बाबत को भयसे छिपाना अनुचित है अस्तु-महाशय शांतिविजयजी ने [अहजइ] इत्यादि गाथा को लिखकर उसका माइना अपने मंतव्य के अनुकूल जो लिख दिखाया है सो उक्त गाथार्थ के अनुसार नहीं है क्योंकि आपने इस गाथा के माइने में लिखा है कि " जब दो पर्व तिथि साथ आवें जैसे कि चौदश, पूनम या चौदश, अमावास्या उस वख्त भी तेरस को तोड़कर चौदश पूनम कायम रखना " इस लेख से यह आशय बताया है कि पूनम वा अमावास्या की त्रुटि होनेपर मिथ्या कल्पना से तेरस को तोड़कर

उस उदय त्रयोदशीमे पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना और उदय चौदश को मनमानी मिथ्या कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या बनाकर उस उदय चतुर्दशी मे पाक्षिकप्रतिक्रमणादि कृत्य न करना किंतु दैवसिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना सो उक्त महाशय जी का यह आशय उपर्युक्त गाथा पाठ मे किंचित् मात्रभी नहीं दिखाई पडताहै तथापि उनके कथनानुसार वर्तमान कालमें तपगच्छीय लोग वर्तते हैं सो अनुचित है, क्योंकि उपर्युक्त श्रीहीर विजयसूरिजी विरचित हीरप्रश्न ग्रथ सबंधी पाठसे स्पष्ट यही आशय विदित होता है कि पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी के रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करे और टूटी हुई पूर्णिमा की तपस्या त्रयोदशी वा चतुर्दशी को करे अगर त्रयोदशी मे करना भूल जाय तो प्रतिपद याने एकम के रोज अवश्य करे इससे पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर अपने आचार्यो के कथन से विपरीत त्रयोदशी के रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना स्पष्ट अनुचित है यदि पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना उक्त आचार्य को इष्ट होता तो [त्रयोदश्या विस्मृतौ प्रतिपद्यपीति] इस वाक्य से टूटी हुई पूर्णिमा की तपस्या त्रयोदशी को और भूल जाने पर एकम को करने की आज्ञा नहीं लिखते इस लिये त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने का आग्रह करना उक्त हीरप्रश्न ग्रथ पाठसे विरुद्ध केवल मिथ्या प्रलाप मात्र है अस्तु शांति विजय जी ने, अह जइ, इत्यादि जो गाथा लिखी है उसका जैसा तात्पर्य गाथा के शब्दार्थ द्वारा पाया जाता है वैसा अपने लिखे हुवे माइने मे पूरी तौरसे नहीं लिखा है किन्तु अपने [मतव्य] वर्ताव के अनुकूल लबा चौडा माइना लिखकर अत मे लिखा है कि तेरस को तोडकर चौदश पूनम कायम रखना यह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिका प्रमाण है।

पाठक गण! बडे आश्चर्य का विषय है कि सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति की प्रति पक्ति देखी गई न तो किसी स्थान मे उक्त गाथा दिखाई पड़ती है, और इस गाथा का माइना जोकि शांति विजयजी ने लिखा है वह भी उक्त गाथा के अदर देखने मे नहीं आता है, और यह बात तो सभी को मान्य है कि सूर्योदय मे लेकर सपूर्ण ६० घडी की तिथि जो हो वही धर्म कार्यो मे प्रमाण

करने योग्य है इस लिये

[अह जइ कहवि न लभई। तत्ताओ सुरुग्गमेण जुत्ता-ओ ता अवरविद्ध अवरावि हुज्ज नहु पुव्वतिविद्धा]

इस गाथा का संपूर्ण शब्दार्थ पूर्वापर विचार करने से यही निश्चित होता है कि, यदि किसी प्रकार से वह तिथियाँ सूर्योदय से आरंभ होकर संपूर्ण ६० घड़ी की न मिलै तो प्रातःकाल मे सूर्योदय समय से युक्त अल्प भी जो तिथियाँ हों वही धर्म कृत्यों मे प्रमाण की जाती हैं अन्य नहीं क्योंकि

[अपरविद्ध अवरात्रि हुज्ज] याने दूसरी तिथि से विद्ध जो सूर्योदय युक्त पहली तिथि है वह प्रमाण करने योग्य होती है, जैसे सूर्योदय समय मे २ घड़ी चतुर्दशी है और उसके वाद पूर्णिमा वा अमावास्या हो तो वह चतुर्दशी धर्म कार्यों मे ली जायगी किंतु

[नहु पुव्वतिविद्धा] याने पूर्व तिथि से विद्ध जो उदय रहीत पर तिथि वह प्रमाण नहीं की जाती है जैसे सूर्योदय मे २ घड़ी त्रयोदशी है उसके अनंतर चतुर्दशी होवे तो वह चतुर्दशी प्रमाण नहीं की जायगी किंतु त्रयोदशी ही मानी जायगी ॥ यही उपर्युक्त गाथा का यथार्थ अर्थ है अन्य नहीं और इसी वातको तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने भी अपने वनाये हुवे श्राद्धविधि ग्रंथ के तीसरे प्रकाश मे अच्छी तरह प्रति पादन किया है तत्संबंधी पाठ यथा—

तिथिश्च प्रातःप्रत्याख्यानवेलायां या स्यात् सा प्रमाणा सूर्योदयानुसारेणैव लोकेपि दिवसादि व्यवहारात् ॥

अर्थ—प्रातःकाल मे [प्रत्याख्यान] पच्चखानके समय जो पर्व तिथि हो वही प्रमाण की जाती है अन्य नहीं क्योंकि सूर्योदय के अनुसारही लोक मे दिवस आदि का व्यवहार होता है और इसी वातको श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज ने श्राद्धविधि ग्रंथ मे आगम प्रमाण द्वारा भी सिद्ध करके दिखाई है तत्संबंधी पाठ यथा

आहुरपि-चाउम्मासिअ वरिसे पक्खिअ पंचट्ठ मीसु नायव्वा। ताओ तिहीओ जासिं उदेइ सूरो न अन्नाओ ॥ १ ॥

अर्थ सिद्धांत कारों ने भी कहा है कि चातुर्मासिक सांवत्सरिक पाक्षिक पचमी अष्टमी आदि पर्व तिथियों के प्रतिक्रमण आदि धर्म कृत्यों मे वही तिथियाँ मानने योग्य हैं जिन पर्व तिथियों मे सूर्य उदय हुआ हो याने सु-र्योदय के समय चातुर्मासिक-सॉवत्सरिक-पाक्षिक आदि पर्व तिथियाँ जो हों उन्हीं को अवश्य माननी चाहिये इस लिये सूर्योदय युक्त उक्त तिथियों को त्याग कर सूर्योदय विनाकी अन्य तिथियाँ जैसे त्रयोदशी आदि को मा-नना उचित नहीं है। देखिये-और भी श्राद्धविधि मे उक्त विषय सबधी पाठ यथा—

पूआ पच्चक्खाणं पडिक्कमणं तहय नियम ग-हणं च। जीए उदइ सूरो तीए तिहीएओ का-यव्वं ॥ २ ॥

अर्थ—जिनेश्वर महाराज की पूजा, प्रत्याख्यान, [पच्चखान] प्रति क्रमण तथा नियमों का ग्रहण करना इत्यादि धर्मकृत्य सूर्योदय के समय मे जो पर्व तिथियाँ हों उन्ही मे करना चाहिये उन पर्व तिथियों को त्यागकर सूर्योदय रहित अन्य अपर्व तिथियों को मानने से आज्ञाभग एव मिथ्यात्व आदि दोष लगते हैं यत उक्त श्राद्धविधि ग्रथ मे पाठ है कि।

उदयमि जा तिही। सा पमाणा इयरा उ कीर माणाए। आणाभंगणवत्था मिच्छत्त विराहणी पावे ॥ ३ ॥

अर्थ—सूर्योदय के समय मे जो पर्व तिथि हो सो पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि धर्म कार्यों में प्रमाण करने योग्य है क्योंकि पूर्णिमा वा अमावास्या का क्षय होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी तिथि को त्याग कर वा चतुर्दशी

का क्षय होनेपर सूर्योदय युक्त पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथिको त्यागकर [इयरा] अन्य जो त्रयोदशी आदि अपर्व तिथि उसमे पाक्षिक प्रतिक्रमणादि करने से आज्ञाभंग की अवस्था प्राप्त होती है और आज्ञाभंग द्वारा मिथ्यात्व मे चलने से पाप बंधन होता है इस लिये पूर्णिमा वा अमावास्या या चतुर्दशी का क्षय होनेपर पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य त्रयोदशी मे न करके सूर्योदय युक्त चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमावास्या मे करना सर्वथा उचित है क्योंकि वर्तमान कालमे जितने धर्म कृत्य किये जाते हैं वे लौकिक टिप्पने के आधार से और लौकिक शास्त्रमे भी सूर्योदय विनाकी अन्यातिथि को त्यागकर सूर्योदय के समय मे जो तिथि हो वह अवश्य मानने की लिखी है देखिये-तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज स्वविरचित श्राद्धविधि ग्रंथ मे इस तरह लिखते हैं। तत्पाठ—यथा।

परासरस्मृत्यादावपि—आदित्योदयवेलायां या-स्तोकापि तिथिर्भवेत् सा संपूर्णेति मंतव्या प्रभूता नोदयं विना। १।

अर्थ—परासर स्मृति आदि ग्रंथो मे भी कहा है कि सूर्योदय के समय मे थोड़ी सी भी जो तिथि हो तो वही तिथि संपूर्ण मान लेनी चाहिये और सूर्योदय के वख्त जो तिथि न हो और पश्चात् बहुत हो तो वह तिथि मानने योग्य नहीं है।

प्रिय पाठक गण! वर्तमान कालमे तपगच्छ संप्रदाय वाले अपने पूर्वज रत्नशेखर सूरिजी महाराज के उक्त कथन से विरुद्ध होकर लौकिक टिप्पने मे जब पूर्णिमा वा अमावास्या ए दो तिथियां घटती हैं तो सूर्योदय समय से युक्त चतुर्दशी तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि धर्मकृत्य नहीं करते हैं सो सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पाक्षिककृत्य सूर्योदययुक्त उदय चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमास्या मे करने की आज्ञा सिद्धान्तकारों ने लिखी है तथापि उदय चतुर्दशी को बलात्कार से पूर्णिमा वा अमावास्या अपनी मिथ्या कल्पना द्वारा मानते हैं और सूर्योदय के समय में जो त्रयोदशी तिथि है उसको मनमानी मिथ्या कल्पना से चतुर्दशी बनाकर उस उदय त्रयोदशी में आगमविरुद्ध

इस निशीथ चूर्णि वाक्य से पर्व तिथि मे पर्युषण करने की आज्ञा है अपर्व तिथि मे नहीं इसी लिये चतुर्थी का क्षय होने पर पचमी पर्व तिथि मे पर्युषण करना उचित है क्योंकि पूर्वकाल मे पचमी को ही किया जाता था और उस पचमी तिथिका क्षय होने पर चतुर्थी को ही पर्युषण पर्व करना उचित है क्योंकि

[सीसो पूच्छति इयाणिं कहं चउत्थीए अपव्वे पज्जोसविज्जति आयरिओ भणति कारणी-या चउत्थी अज्ज कालगायरिएहिं पवत्तिआ]

इस निशीथ चूर्णिपाठ से युग प्रधान श्रीकालकाचार्यमहाराज की आचरणा से चतुर्थी को पर्युषण पर्व करना आगम समत है अतएव पचमी तिथि घटने पर तीज को मिथ्या कल्पना से घटाकर उस तृतीया को सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पर्युषण पर्व के कृत्य करना और चतुर्थी को पचमी बनाकर उसरोज [नीलोत्सवी] हरासाग खाना इत्यादि आचरण तपगच्छीय लोगों का सर्वथा अनुचित है और इसी तरह पूर्णिमा या अमावास्या का क्षय होने पर मनमानी मिथ्या कल्पना से सूर्योदय युक्त त्रयोदशी तिथि को तोडकर उस तेरस के ही रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी को पूर्णिमा या अमावास्या बनाना यहभी तपगच्छीय लोगों का वर्तान आगम पाठ तथा आचरणासे प्रतिकूलही प्रतीत होता है।

[प्रश्न] तारीख २७ वीं जुलाई १९१३ के जैन पत्र मे श्रीयुत शांतिविजयजी लिखते हैं कि " सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति के आधार से साबित है कि पर्व तिथि टूटजाय तो अपर्व तिथिको तोडकर पर्व तिथि को कायम रखना उसका पाठ यहा देता हू सुनिये।

[सूर्यप्रज्ञप्ति का पाठ]

अह जइ कहवि न लभइ। तत्ताओ सुरुग्गमेण जुत्ताओ ता अवरविद्ध अवरा वि। हुज नहु पुव्वतिविद्धा ॥ १ ॥

इसका माइना यह हुवा कि जब तिथि सूर्योदय करके युक्त न मिले तो पिछली तिथिमें वो तिथि सुमार करना यानी मानना मसलन जैसे सूर्योदय के वख्त अष्टमी तिथि न हो तो सप्तमी तिथि को तोड़कर अष्टमी को कायम रखते हैं यानी सप्तमी मे अष्टमी मानते हैं वैसेही जब दो पर्व तिथि साथ आवें जैसे कि चौदश पूनम या चौदश अमावास्या उस वख्त भी तेरस को तोड़कर चौदश पूनम कायम रखना यह सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्तिका प्रमाण है। तपगच्छ वाले इसी पाठके प्रमाण से चलते हैं " सो शांति विजयजी का यह कथन उक्त गाथा पाठसे संमत है या नहीं।

[उत्तर] प्रियपाठकगण ! शांतिविजयजी ने सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति का नाम लिखकर-अहजइ इत्यादि जो गाथा बताई है सो सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र वृत्ति में कहीं नहीं मिलती है इस लिये उक्त महाशय ने सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र वृत्ति के किस पाहुड़े में और किस अंक के पत्रमे उक्त गाथा को देखकर प्रमाण के लिये लिख बताई है सो उस स्थान का पूर्वापर संबंधयुक्त सब पाठों को लिखकर प्रकाशित करना उनको उचित है क्योंकि सत्येनास्तिभयं-क्वचित्-कदाचित् उक्त महाशय यह कहें कि यह गाथा मैंने सूर्यप्रज्ञप्ति-सूत्र वृत्तिमे देखकर नहीं लिखी है किंतु श्री आत्मारामजी महाराज के शिष्य कांतिविजयजी तथा अमरविजयजी ने जैन सिद्धांत समाचारी की किताब में छपाई है उसी को देखकर हमने भी लिखदी है तो मेरा कथन यह है कि वे दोनों महात्मा अभी वर्तमान कालमें विद्यमान हैं इस लिये उन लोगों से पूछकर उक्त गाथा के पूर्वापर संबंधयुक्त सब पाठों को सत्यरूपसे प्रकाश कीजिये और उक्त दोनों महानुभावों से भी मित्रता पूर्वक प्रार्थना है कि इस बाबत को भयसे छिपाना अनुचित है अस्तु-महाशय शांतिविजयजी ने [अहजइ] इत्यादि गाथा को लिखकर उसका माइना अपने मंतव्य के अनुकूल जो लिख दिखाया है सो उक्त गाथार्थ के अनुसार नहीं है क्योंकि आपने इस गाथा के माइने में लिखा है कि " जब दो पर्व तिथि साथ आवें जैसे कि चौदश, पूनम या चौदश, अमावास्या उस बख्त भी तेरस को तोड़कर चौदश पूनम कायम रखना " इस लेख से यह आशय बताया है कि पूनम या अमावास्या की त्रुटि होनेपर मिथ्या कल्पना से तेरस को तोड़कर

उस उदय त्रयोदशीमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना और उदय चौदश को मनमानी मिथ्या कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या बनाकर उस उदय चतुर्दशी में पाक्षिकप्रतिक्रमणादि कृत्य न करना किंतु दैवसिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना सो उक्त महाशय जी का यह आशय उपर्युक्त गाथा पाठ में किंचित् मात्रभी नहीं दिखाई पड़ताहै तथापि उनके कथनानुसार वर्तमान कालमे तपगच्छीय लोग वर्तते हैं सो अनुचित है, क्योंकि उपर्युक्त श्रीहीरविजयसूरिजी विरचित हीरप्रश्न ग्रंथ साक्षी पाठसे स्पष्ट यही आशय विदित होता है कि पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी के रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करे और टूटी हुई पूर्णिमा की तपस्या त्रयोदशी वा चतुर्दशी को करे अगर त्रयोदशी मे करना भूल जाय तो प्रतिपद याने एकम के रोज अवश्य करे इससे पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर अपने आचार्यों के कथन से विपरीत त्रयोदशी के रोज पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना स्पष्ट अनुचित है यदि पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना उक्त आचार्य को इष्ट होता तो [त्रयोदश्यां विस्मृतौ प्रतिपद्यपीति] इस वाक्य से टूटी हुई पूर्णिमा की तपस्या त्रयोदशी को और भूल जाने पर एकम को करने की आज्ञा नहीं लिखते इस लिये त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने का आग्रह करना उक्त हीरप्रश्न ग्रंथ पाठसे विरुद्ध केवल मिथ्या प्रलाप मात्र है अस्तु शांति विजय जी ने, अह जइ, इत्यादि जो गाथा लिखी है उसका जैसा तात्पर्य गाथा के शब्दार्थ द्वारा पाया जाता है वैसा अपने लिखे हुवे माइने मे पूरी तौरसे नहीं लिखा है किन्तु अपने [मतव्य] वर्ताव के अनुकूल लंबा चौडा माइना लिखकर अंत मे लिखा है कि तेरस को तोड़कर चौदश पूनम कायम रखना यह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिका प्रमाण है।

पाठक गण! बड़े आश्चर्य का विषय है कि सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति की प्रति पंक्ति देखी गई न तो किसी स्थान में उक्त गाथा दिखाई पड़ती है, और इस गाथा का माइना जोकि शांति विजयजी ने लिखा है वह भी उक्त गाथा के अंदर देखने मे नहीं आता है, और यह बात तो सभी को मान्य है कि सूर्योदय से लेकर संपूर्ण ६० घड़ी की तिथि जो हो वही धर्म कार्यों मे प्रमाण

करने योग्य है इस लिये

[अह जइ कहवि न लभई। तत्ताओ सुरुग्गमेण जुत्ता-ओ ता अवरविद्ध अवरावि हुज्ज नहु पुव्वतिविद्धा]

इस गाथा का संपूर्ण शब्दार्थ पूर्वापर विचार करने से यही निश्चित होता है कि, यदि किसी प्रकार से वह तिथियाँ सूर्योदय से आरंभ होकर संपूर्ण ६० घड़ी की न मिलै तो प्रातःकाल मे सूर्योदय समय से युक्त अल्प भी जो तिथियाँ हों वही धर्म कृत्यों मे प्रमाण की जाती हैं अन्य नहीं क्योंकि

[अपरविद्ध अवरावि हुज्ज] याने दूसरी तिथि से विद्ध जो सूर्योदय युक्त पहली तिथि है वह प्रमाण करने योग्य होती है, जैसे सूर्योदय समय मे २ घड़ी चतुर्दशी है और उसके वाद पूर्णिमा वा अमावास्या हो तो वह चतुर्दशी धर्म कार्यों मे ली जायगी किंतु

[नहु पुव्वतिविद्धा] याने पूर्व तिथि से विद्ध जो उदय रहीत पर तिथि वह प्रमाण नहीं की जाती है जैसे सूर्योदय मे २ घड़ी त्रयोदशी है उ-सके अनंतर चतुर्दशी होवे तो वह चतुर्दशी प्रमाण नहीं की जायगी किंतु त्रयोदशी ही मानी जायगी ॥ यही उपर्युक्त गाथा का यथार्थ अर्थ है अन्य नहीं और इसी वातको तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने भी अपने वनाये हुवे श्राद्धविधि ग्रंथ के तीसरे प्रकाश मे अच्छी तरह प्रति पादन किया है तत्संवंधी पाठ यथा—

तिथिश्च प्रातःप्रत्याख्यानवेलायां या स्यात् सा प्रमाणा सूर्योदयानुसारेणैव लोकेपि दिवसादि व्यवहारात् ॥

अर्थ—प्रातःकाल मे [प्रत्याख्यान] पच्चखानके समय जो पर्व तिथि हो वही प्रमाण की जाती है अन्य नहीं क्योंकि सूर्योदय के अनुसारही लोक मे दिवस आदि का व्यवहार होता है और इसी वातको श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज ने श्राद्धविधि ग्रंथ मे आगम प्रमाण द्वारा भी सिद्ध करके दिखाई है तत्संवंधी पाठ यथा

आहुरपि–चाउम्मासिअ वरिसे पक्खिअ पंचट्ठ मीसु नायव्वा । ताओ तिहीओ जासिं उदेइ सूरो न अन्नाओ ॥ १ ॥

अर्थ सिद्धात कारो ने भी कहा है कि चातुर्मासिक सावत्सरिक पाक्षिक पंचमी अष्टमी आदि पर्व तिथियों के प्रतिक्रमण आदि धर्म कृत्यो मे वही तिथियाँ मानने योग्य हैं जिन पर्व तिथियों मे सूर्य उदय हुआ हो याने सूर्योदय के समय चातुर्मासिक–सॉवत्सरिक–पाक्षिक आदि पर्व तिथियाँ जो हों उन्हीं को अवश्य माननी चाहिये इस लिये सूर्योदय युक्त उक्त तिथियाँ को त्याग कर सूर्योदय बिनाकी अन्य तिथियाँ जैसे त्रयोदशी आदि को मानना उचित नहीं है। देखिये–और भी श्राद्धविधि मे उक्त विषय सबधी पाठ यथा—

पूआ पच्चक्खाणं पडिकमणं तहय नियम गहणं च । जीए उदइ सूरो तीए तिहीएओ कायव्वं ॥ २ ॥

अर्थ—जिनेश्वर महाराज की पूजा, प्रत्याख्यान, [पच्चखान] प्रतिक्रमण तथा नियमों का ग्रहण करना इत्यादि धर्मकृत्य सूर्योदय के समय मे जो पर्व तिथियाँ हो उन्ही मे करना चाहिये उन पर्व तिथियों को त्यागकर सूर्योदय रहित अन्य अपर्व तिथियों को मानने से आज्ञाभंग पव मिथ्यात्व आदि दोष लगते हैं यत. उक्त श्राद्धविधि ग्रथ मे पाठ है कि।

उदयमि जा तिही । सा पमाणा इयरा उ कीरमाणाए । आणाभंगणवत्था मिच्छत्त विहारणी पावे ॥ ३ ॥

अर्थ—सूर्योदय के समय मे जो पर्व तिथि हो सो पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि धर्म कार्यों मे प्रमाण करने योग्य हैं क्योंकि पूर्णिमा या अमावास्या का क्षय होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी तिथि को त्याग कर या चतुर्दशी

का क्षय होनेपर सूर्योदय युक्त पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथिको त्यागकर [इयरा] अन्य जो त्रयोदशी आदि अपर्व तिथि उसमे पाक्षिक प्रतिक्रमणादि करने से आज्ञाभंग की अवस्था प्राप्त होती है और आज्ञाभंग द्वारा मिथ्यात्व मे चलने से पाप बंधन होता है इस लिये पूर्णिमा वा अमावास्या या चतुर्दशी का क्षय होनेपर पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य त्रयोदशी मे न करके सूर्योदय युक्त चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमावास्या मे करना सर्वथा उचित है क्योंकि वर्तमान कालमे जितने धर्म कृत्य किये जाते हैं वे लौकिक - न के आधार से और लौकिक शास्त्रमे भी सूर्योदय विनाकी अन्यतिथि को त्यागकर सूर्योदय के समय मे जो तिथि हो वह अवश्य मानने की लिखी है देखिये-तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज स्वविरचित श्राद्धविधि ग्रंथ मे इस तरह लिखते हैं। तत्पाठ-यथा।

परासरस्मृत्यादावपि-आदित्योदयवेलायां या-स्तोकापि तिथिर्भवेत् सा संपूर्णेति मंतव्या प्रभूता नोदयं विना । १ ।

अर्थ—परासर स्मृति आदि ग्रंथो मे भी कहा है कि सूर्योदय के समय मे थोड़ी सी भी जो तिथि हो तो वही तिथि संपूर्ण मान लेनी चाहिये और सूर्योदय के वख्त जो तिथि न हो और पश्चात् बहुत हो तो वह तिथि मानने योग्य नहीं है।

प्रिय पाठक गण ! वर्तमान कालमे तपगच्छ संप्रदाय वाले अपने पूर्वज रत्नशेखर सूरिजी महाराज के उक्त कथन से विरुद्ध होकर लौकिक टिप्पने मे जब पूर्णिमा वा अमावास्या ए दो तिथियां घटती हैं तो सूर्योदय समय से युक्त चतुर्दशी तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि धर्मकृत्य नहीं करते हैं सो सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पाक्षिककृत्य सूर्योदययुक्त उदय चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमास्या मे करने की आज्ञा सिद्धान्तकारों ने लिखी है तथापि उदय चतुर्दशी को बलात्कार से पूर्णिमा वा अमावास्या अपनी मिथ्या कल्पना द्वारा मानते हैं और सूर्योदय के समय में जो त्रयोदशी तिथि है उसको मनमानी मिथ्या कल्पना से चतुर्दशी बनाकर उस उदय त्रयोदशी में आगमाविरुद्ध

पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो उक्त सिद्धांत पाठों से प्रत्यक्ष प्रतिकूल सिद्ध होता है क्योंकि शास्त्रकारों की आज्ञा विनाही पूर्णिमा वा अमावास्या की त्रुटि होनेपर अपने मनसे त्रयोदशी घटाकर उसमें पाक्षिक कृत्य करना और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी को पूर्णिमा वा अमावास्या बना देना इसमें कोई सिद्धांत संबंधी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है अतएव यह व्यवहार वैसा है कि जैसे किसी अन्य व्यक्ति ने कुछ कसुर किया और उसका दंड तीसरे अन्यव्यक्ति को दियाजाय ठीक इसी प्रकार यहा भी देखिये कि टिप्पने मे घटी तो पूर्णिमा वा अमावास्या उसके बदले मिथ्या कल्पना द्वारा बलात्कार से त्रयोदशी घटाना और उस त्रयोदशी में पाक्षिक कृत्य करना और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी को पूर्णिमा वा अमावास्या बना देना यह प्रत्यक्ष अन्याय नहीं तो क्या है अस्तु-श्रीयुत शांतिविजय जी से मित्र भाव पूर्वक मेरा यह कथन है कि आपने [प्राभृत] पाहुडे और पत्राक के विनाही सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र वृत्ति के नाम से-छहज्जइ इत्यादि गाथाको लिखकर उक्त आगम गाथाओं से प्रतिकूल अपना मनमाना माइना लंबा चौड़ा लिखकर क्यों दिखाया है। याद रखना चाहिये कि चतुर्दशी वा अमावास्या या पूर्णिमा के टूट जाने पर वर्तमान कालमें तपगच्छीय लोग उदय त्रयोदशी में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो आगम और आचरणा इन दोनों प्रकारों से असमत है यत श्रीहेमाचार्य महाराज के गुरु श्रीमान् देवचंद्रसूरिजीमहाराजकृत श्रीठाणागवृत्ति मे लिखाहै कि

एवं च कारणेणं कालगायरिएहिं चउत्थीए पज्जोसवणं पवत्तिअं समत्त संघेण य अणुमन्निअं तव्वसेण य परिकआईणि वि चउद्दशीए आयरिआणि अन्नहा आगमुत्ताणि पुणिमाएत्ति ॥

अर्थ—कारण योग से श्रीकालकाचार्य महाराज ने चतुर्थी को पर्युषणपर्व प्रवर्तित किया और उसको समस्त सघने स्वीकार किया उसी कारण से पाक्षिक और आदि शब्द से चातुर्मासिक कृत्यभी चतुर्दशी को

करना आचरणें में आया है अन्यथा आगमों में उक्त कृत्य पूर्णिमा को करने के लिये कहा है । इसी तरह श्रीजीवानुशासनवृत्ति में भी पाठ है कि ।

यदा सांवत्सरिकं पंचम्यामासीत्तदा पाक्षिकाणि पंचदश्यां सर्वाण्यभूवन् सांप्रतं तु चतुर्थ्यां पर्युषणा ततश्चतुर्दश्यां पाक्षिकाणि घटंते इति

अर्थ—जिस समय सांवत्सरिक प्रतिक्रमण पंचमी को किया जाता था उस समय पाक्षिक कृत्य [पंचदशी] पूर्णिमा अमावास्या को सब होते थे वर्तमान काल में तो चतुर्थी को पर्युषण पर्व किया जाता है इस लिये चतुर्दशी को पाक्षिक कृत्य करना उचित हैं ।

अब देखिये इन उपर्युक्त पाठों के अनुसार आगमोक्त पंचमी का पर्युषण पर्व था सो आचरणा से चतुर्थी को कायम हुआ उसको चतुर्थी वा पंचमी तिथिका क्षय होने पर तृतीया को करना अनुचितहै इसी तरह आगमोक्त पूर्णिमा और अमावास्या को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने के थे सो आचरणा से चतुर्दशी को करना कायम हुवे हैं उस को भी चतुर्दशी वा, पूर्णिमा अमावास्या का क्षय होने पर त्रयोदशी अपर्व तिथि में करना सर्वथा आगम और आचरणा से प्रत्यक्ष विरुद्ध है इस लिये पूर्णिमा वा अमावास्या घटने पर चतुर्दशी को ही पाक्षिक कृत्य करना उक्त आचरणा से संमत है त्रयोदशी को नहीं और जैसे चौथ घटने पर पंचमी पर्वतिथि को पर्युषण करना आगम संमत है वैसे चतुर्दशी घटने पर भी पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि में पाक्षिक कृत्य करना आगमोक्त अनेक पाठों से संमत है । तथापि उदय त्रयोदशी अपर्व तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना तपगच्छ वालों ने कदाग्रह से अनुचित क्यों स्वीकार कर लिया है । यतः श्रीज्योतिष्करंडपयन्नादिग्रंथों में पाठ है कि ।

छट्ठीसहिआ न अट्ठमी, तेरसिसहिअं न परिकअं होई ।
पडिवयासहिअं न कइआवि । इयं भणिअं वीतरागेहिं १

अर्थ-षष्ठी [छट्ठ] तिथि के संग में अष्टमी के धर्मकृत्य नहीं और तेरस सहित तथा [प्रतिपदा] एकम सहित कदापि पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य नहीं होसकता है, ऐसा तीर्थंकर श्रीवीतराग महाराज का कथन है।

इसी तरह श्रीहरिभद्र सूरि जी महाराज विरचित तत्वविचारसार ग्रंथ में तथा अन्य ग्रन्थों मे भी उक्त आचार्य का यह कथन मौजूद है कि

भवइ जहिं तिही हाणी । पुव्व तिही विधि आयसा कीरइ॥परकी न तेरसीए। कुज्जा सा पुण मासीए॥१॥

अर्थ—यदि तिथि की हानि हो तो उस तिथि के धर्मकृत्य पूर्व तिथि में करै परतु चतुर्दशी के पाक्षिक कृत्य तेरस अपर्व तिथि में न करै किंतु पूर्णिमा अमावास्या पर्व तिथियों में करै ॥ १ ॥

इसी प्रकार श्रीउमास्याती वाचक विरचित्र आचारवल्लभा ग्रंथ में और अन्य ग्रंथों में भी उक्त वाचकजी का यह वचन मौजूद है पाठ यथा—

तिहि पड़णे पुव्वतिही कायव्वा जुत्त धम्मकज्जेसु,
चाउद्सी विलोवे पुणिमीअं परकी पाड़िक्कमणं ॥१॥

अर्थ-तिथि घटने पर धर्मकार्यों में पूर्व तिथि को ग्रहण करना युक्त है और चतुर्दशीका क्षय होनेपर पूर्णिमा अमावास्या को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना आगमानुकूल होने से उचित है ॥ १ ॥

उक्त आचार्यों के कथनानुसार श्रीजिनप्रभसूरिजी महाराजने भी विधिप्रपा ग्रंथ मे लिखा है पाठ यथा—

संपयं तिही विहीपक्खिय चउम्मासिय अठ्ठमि पंचमी कल्लाणयाइ तिहीसु तत्र पूयाइए उदइय तिही अप्पयर भूरीत्ति घेत्तव्वा न वहुतर भुत्तीत्ति इयरा जयाय पक्खिआइ पव्व तीही पड़इ तया पुव्व तिही चेव तब्भृत्ति वहुला पच्चरकाण पूआ-

इसु घिप्पइ न उत्तरा तब्भोग गंधस्स वि अभावाओ नवरं चाउम्मासीए तहय चउद्दसी हाणे पुणिमा जुज्जइ तेरसी गहणे आगम आयरणाणं अन्नत्तरंपि नाराहिअं होज्जा ॥ इति ॥

अर्थ-अब तिथि विधि बताते हैं कि पाक्षिक चातुर्मासिक अष्टमी पंचमी कल्याणिक आदि तिथियों में तपस्या पूजा आदि धर्म कृत्य करने के लिये उदयातिथि अल्पतर भोगवाली हो तोभी ग्रहण करना, सूर्योदय रहित बहुत भोगवाली दूसरी तिथि ग्रहण करना उचित नहीं जब पाक्षिकादि यानी पूर्णिमा अमावास्या आदि पर्व तिथि का क्षय हो तब पूर्व तिथि जो चतुर्दशी आदि को निश्चय उस क्षय तिथि संबंधी भोगबहुलतावाली जानकर पच्चखान पूजा आदि धर्म कृत्यों में ग्रहण करना परंतु उत्तर की तिथि एकम आदि को ग्रहण नहीं करना क्योंकि उस क्षय तिथि संबंधी भोग गंध काभी उस उत्तर की तिथि में अभाव है इस लिये और यहांपर यह विशेष है कि चातुर्मासिक पर्व तिथि की तथा चतुर्दशी पर्व तिथि की हानि होनेपर चातुर्मासिक तथा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने के लिये पूर्णिमा अमावास्या पर्व तिथि को ग्रहण करना युक्त है क्योंकि तेरस को चातुर्मासिक और पाक्षिक कृत्यों में ग्रहण करने से आगम और आचरण इन दोनों में से एककाभी आराधन नहीं होता है परंतु तपगच्छ संप्रदाय वालों ने तो वर्तमान काल में सूर्योदय युक्त चतुर्दशी विद्यमान होनेपर भी पूर्णिमा अमावास्या की हानि होने से त्रयोदशी में चातुर्मासिक तथा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने दुराग्रह से उपर्युक्त हीरप्रश्न के पाठ विरुद्ध मान लिये है। सो यह मंतव्य युक्त नहीं है क्योंकि पर्व भूत चतुर्दशी वा पूर्णिमा अमावास्या में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य त्यागकर अपर्वभूत त्रयोदशी में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना क्या उचित है अर्थात् नहीं क्योंकि कौन बुद्धिमान निकट वर्तिनी बृहत्प्रवाह वाली तीर्थभूतानिर्मल गंगा को त्यागकर अतीर्थभूत कूपमें स्नान करेगा अथवा समीपवर्ती राज-

धानी को त्यागकर [चोर पल्ली] चोरों के निवास स्थान में रहना कौन स्वीकार करेगा।

[प्रश्न] तारीख २७ वीं जुलाइ सन् १९१३ के जैन पत्र में शान्तिविजयजी ने लिखा है कि खरतरगच्छ वाले अष्टमी टूटती है तब तो सप्तमी में अष्टमी मानलेते हैं और चौदश टूटती है तब तेरस में चौदश न मानकर एक पर्व तिथि कम कर देते हैं यह किस सूत्रके आधार से करते हैं उसका पाठ बतलाइये।

[उत्तर] अष्टमी टूटती है तब उस अष्टमी की तपस्या आदि धर्म कर्त्तव्य सप्तमी के रोज करना उक्त पाठों से संमत है परन्तु चतुर्दशी वा अमावास्या या पूर्णिमा की त्रुटि होनेपर त्रयोदशी में चतुर्दशी मानकर पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने से आगम और आचरणा इन दोनों में एक काभी आराधन नहीं होता है इस लिये वैसा करना उपर्युक्त पाठों में शास्त्रकार ने मना किया है और अनेक शास्त्रपाठों से विदित होता है कि सूर्योदय के समय जो पर्व तिथि न हो उसी को (त्रुटि) हानि-क्षय कहते हैं अतएव पाठकगण ! विचार कीजिये कि, वह पर्व तिथि कम कर देना क्या किसी के हाथ में है अर्थात् नहीं हां उस टूटी हुई चतुर्दशी वा पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों की तपस्या त्रयोदशी आदि तिथियों में करने की श्रीहीरविजयसूरि आदि महाराजों की आज्ञा है लेकिन त्रयोदशी को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करने की आज्ञा नहीं है इसी लिये खरतरगच्छ संप्रदाय वाले वैसा मानते हो हैं परंतु लौकिक टिप्पने में दो पर्व तिथि होनेपर सूर्योदय युक्त ६० घडी की पूर्ण प्रथम पर्व तिथि को तपगच्छ वाले धर्म कृत्यों से विराधकर आज्ञाभंग आदि दोष के भागी क्यों बनते हैं इस बातका शान्तिविजयजी अपने गच्छ के श्रावक सप्रदाय में अवश्य प्रचार करें अन्यथा पूर्ण पर्व तिथि को विराधने से अशुभ आयुष्य आदि दुष्कर्म वा नरक दुर्गती में पडने का संभव है और तपगच्छ वाले श्रावक पर्व तिथि को विराधने में किंचित् भय नहीं करते हैं क्योंकि भाद्र शुद्ध पंचमी महापर्व तिथि को भी [नीलोत्तरी] हरा साग बाजार से लेकर

पंचमी की पर्युषणा करने वालों को [चौटे] चौरस्ते में दिखलाते हुए घर में लाकर छूरी से काट काट कर प्रायः गुजरात में बड़ी प्रसन्नतासे भक्षण करते हैं इससे तपगच्छ वाले अवश्य एक पर्व तिथि का पालन करना कम कर देते हैं इस वास्ते इस अधर्म कृत्य का श्रीयुत शांतिविजय जी अपने गच्छवर्ती श्रावक संप्रदाय को त्याग करावें इसमें अपने को और दूसरों को भी परम लाभ है अन्यथा ' शास्त्र पाठानुयायी ' खरतरगच्छ वालों पर इर्षा द्वेषभाव लाकर निरर्थक आक्षेप करने से क्या लाभ होगा ? कुछ भी नहीं।

[प्रश्न] तप गच्छ वाले मानते हैं कि दो चौदश या दो पूनम वा दो अमावास्या हो उसमें पूर्व की तिथि को अपर्व तिथि मानना दूसरी को पर्व करना इसी प्रकार और भी तिथि मानना किस आधार से !

[उत्तर] लौकिक टिप्पनें में जब दो पूर्णिमा वा दो अमावास्या हो तब तपगच्छ वाले उदय चतुर्दशी को मिथ्या कल्पना से आगम विरुद्ध दूसरी तेरस मान कर पाप कृत्यों से विराधते हैं और प्रथम पूर्णिमा को और प्रथम अमावास्या को अवश्य पर्व तिथि मानकर उस प्रथम पूर्णिमा वा अमावास्या में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं तथा दूसरी पूर्णिमा को और दूसरी अमावास्या को भी तपस्या पूजा व्रत नियमादि धर्म-कृत्य करके पर्वतिथि मानते हैं परंतु इसी प्रकार द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी तिथि की वृद्धि होनें पर उन दो पर्व तिथियों को नहीं मानते हैं किंतु उनके स्थान में दो अपर्व तिथि असत्य कल्पना से आगम आधार के विना हीं मान कर सूर्योदय युक्त प्रथम की पूर्ण द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी पर्वतिथियों को अधर्म कृत्यों से विराधते हैं अतएव श्राद्ध विधि आदि ग्रंथों के उक्त पाठानुसार आज्ञा भंग मिथ्यात्व आदि दोषों के भागी तपगच्छ वाले बनते है इस लिये उन लोगों का यह मंतव्य सिद्धांत संमत नहीं है क्योंकि उक्त पाठों में सूर्योदय युक्त पर्व तिथि को अवश्य माननें की आज्ञा लिखी है।

[प्रश्न] उक्त जैन पत्र के लेख में शांतिविजय जी लिखते हैं कि खरतरगच्छ वालों को यह पाठ बतलाना मुनासिब था कि दो पर्व तिथि में पहली को पर्व मानना और दूसरी को अपर्व मानना यह किस सूत्रके आधार से है।

[उत्तर] खरतरगच्छ वाले पहली दूसरी इन दोनों पर्व तिथियों को जैसी हो वैसी मानने के लिये बतलाते हैं परंतु तपगच्छ वालों की तरह मन.मानी रीति से उक्त आगम पाठ विरुद्ध उलट पलट तिथियां मनोकल्पित जैन पचांग पत्रमें छपवाकर दूसरी तिथिको पर्वमानना और पहली उदयतिथि को अपर्व मानना नहीं दिखाते हैं क्योंकि शास्त्रोक्त उदयतिथि अवश्य माननीय है उसको विराधने से पाप भागी अवश्य बनेंगे इसलिये संपूर्ण ६० घड़ी की स्वाभाविक जो प्रथम उदयतिथि होती है उसमें उस तिथि के धर्म कृत्य करना न्यायतः युक्त है अतएव संपूर्ण गुणोपेत प्रथम राजपुत्र की तरह उदयादि संपूर्ण गुणयुक्त प्रथम पर्वतिथि महामान्य है और दूसरी अल्प पर्वतिथि भी उदय युक्त होने से द्वितीय राजपुत्र की तरह किंचित् मान्य है,, तथापि भाद्र शुक्ल पंचमी की वृद्धि होने पर तपगच्छ वाले युगप्रधान श्रीकालकाचार्य महाराज की आज्ञानुसार चतुर्थी को सावत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य नहीं करते हैं किंतु त्रयोदशी से पर्युषण बैठाकर भाद्रशुक्ल प्रथम पचमी में सावत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके उस पहली तिथिको परम आग्रह से महापर्वतिथि मानना बताते हैं और भाद्रशुक्ल दूसरी पंचमी को अपर्व तिथि मानकर पापकृत्यों से विराधते हैं सो यह किस सूत्र के आधार से है महाशय शांतिविजयजी निर्णय करके बतावें और तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने श्राद्ध विधि में लिखा है, कि

अर्हतांजन्मादि पंचकल्याणकदिना अपिपर्वतिथित्वेन विज्ञेयाः इति ॥

अर्थ-श्रीअरिहंत महाराजों के जन्म आदि पंचकल्याणक सबधी जो दिन है उसको भी पर्व तिथि रूप जानना चाहिये इस कथन के अनुसार

भी तपगच्छ वालों को अनेक बार द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी च तुर्दशी आदि पहली तिथिको पर्वरूप अवश्य मानना ही पड़ेगा जैसे कि टिप्पने में चैत्र शुक्ल चतुर्दशी दो होने से प्रथम की उदय युक्त पूर्ण चतुर्दशी को मिथ्या कल्पना से सिद्धांत प्रतिकूल दूसरी तेरस मानकर उस तिथि में श्रीमहावीर स्वामी के जन्म कल्याणक संबंधिनी तपस्या आदि धर्म कृत्य तपगच्छ वाले करेंगे तो वस्तुतः पहली उदययुक्त पूर्ण चतुर्दशी को पर्वतिथि मानली और उदय तेरस को उक्त तपस्या न करके विराधी, यदि कहो कि हम अपने मनः कल्पित जैन पंचांग के अनुसार उदययुक्त पहली तेरस में उक्त कल्याणक पर्व तप करते हैं तौभी प्रथम तिथि को पर्वरूप मानली दूसरी को असत्य कल्पना से अपर्व रूप मानकर विराधी, इसी तरह मगसिर कृष्ण एकादशी और वैसाख शुक्ल एकादशी दो होने पर प्रथम एकादशी को असत्य कल्पना से आगम विरुद्ध दूसरी दशमी तिथि मानकर उस तिथि में श्रीवीर प्रभु के दिक्षा कल्याणक तथा कैवल्यज्ञान कल्याणक संबंधिनी तपस्या तपगच्छवाले करेंगे तो सत्यता से उदय युक्त पूर्ण प्रथम एकादशी को पर्वतिथि मानली और उदय दशमी को उक्त तपस्या न करके विराधी, अगर यह कहें कि हमलोग अपने मनःकल्पित असत्य जैन पंचांग के अनुसार पहली दशमी तिथि में उक्त कल्याणिक पर्व तपस्या करते हैं तौभी प्रथम तिथि को पर्वरूप मानली और दूसरी को असत्य कल्पना से अपर्व रूपमान कर विराधी सो यह उक्त मंतव्य सिद्धांत संमत है या नहीं श्रीयुत शांतिविजयजी उत्तर प्रकाशित करें।

[प्रश्न] शांतिविजयजी उसी जैन पत्रके लेख में लिखते हैं कि अब सुनिये–तपगच्छ वाले किस आधार से पहली पर्वतिथि को अपर्व तिथि मानकर दूसरी को पर्व तिथि मानते है।

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा इति उमास्वाति वाचकाः।

तपगच्छवाले महाराज श्रीउमास्वाती वाचक के वचन से इस बातको मंजूर करते हैं कि पर्वतिथि का अगर क्षय होजाय तो पहली अपर्वतिथि

को क्षय कर देना यह बात ऊपर दिये हुवे सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्तिके पाठसे मि- लती है और पर्व तिथि बढ़ जाय तो पहले की पर्व तिथि को अपर्वतिथि मानकर आगे की दूसरी तिथि को पर्वतिथि मानना,, शांतिविजयजी का यह कथन उचित है या नहीं ?

[उत्तर] प्रिय पाठकगण ! यह कथन उचित नहीं है इस लिये श्री- युत शांतिविजयजी से मित्रभाव पूर्वक हम यह पूछते हैं कि आपने सूर्य- प्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति के नाम से अहजइ, इत्यादि गाथा लिखकर जैसा उस गाथा के आशय से विरुद्ध अर्थ प्रकाशित किया है उसी तरह यहांपर भी अपूर्ण श्लोक तथा उसके सत्य अर्थ को त्यागकर बाल जीवों को भुलवाने के लिये महाराज श्रीउमास्वाति वाचकके नामसे क्षयेपूर्वा इत्यादि उपर्युक्त अर्द्ध श्लोक तथा उसका विपरीत अर्थ मायाचारी द्वारा लिखकर जो ब- ताया है उसको श्रीउमास्वाति महाराज ने अपने रचे हुवे किस ग्रंथ में लिखा है उस ग्रंथ का नाम तथा उस ग्रंथ को बतलाना आपको उचित है अन्यथा यह श्लोक उमास्वातिजी का [रचा] बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता है क्योंकि आपके तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज उक्त श्लोक को श्रीउमास्वाति महाराज के [निर्मित] बनाये हुवे ग्रंथों में कहीं न पाकर और उक्त महाराजही का रचा हुआ यह श्लोक है यह भी नि- श्चय न कर सके अतएव आपने श्राद्धविधिग्रंथ में लिखा है कि-

उमास्वातिवचः प्रघोपश्चैवंश्रूयते ॥

क्षये पूर्वातिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।

श्रीमहावीरनिर्वाणं भव्यै र्लोकानुगैरिह ॥ १ ॥

अर्थ—उमास्वातिजी का वचन अथवा [प्रघोष] यानेलोकों के मुखसे पुकार इस तरह सुनने में आता है कि श्रीमहावीर स्वामी का [निर्वाण] मोक्ष कल्याणक सम्बन्धिनी कार्तिकी अमावास्या तिथिका क्षय होनेपर लोक गति से वर्तने वाले भव्यजीवों को श्रीमहावीर निर्वाण कल्याणिक सबंधी आराध्या पूर्वतिथि जो चतुर्दशी उसमें करना उचित है और यदि उस मा-

र्तिकी अमावास्या तिथिकी वृद्धि हो तो उत्तर तिथि जो दूसरी अमावास्या उसमें उक्त कल्याणिक संबंधी तपस्या करनी चाहिये, पाठकगण! उक्त संपूर्ण श्लोक तथा उसका सत्य अर्थ यहां संगति से यथार्थ विदित होता है परंतु इस अर्थ को त्यागकर महाशय श्रीशांतिविजयजीने शास्त्रविरुद्ध अपने तिथि संबंधी मंतव्य को जिस किसी प्रकार से सत्य बतलाने के लिये अथवा स्वगच्छ तिथि मंतव्य असत्य न होने पावे इसी कारण उक्त श्लोकके उत्तरार्द्ध भागको छिपाकर क्षये पूर्वा तिथिः कार्या इत्यादि उक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध भागको लिखकर उस पाठसे भी विरुद्ध अपने मंतव्य के अनुकूल जो अर्थ लिख बताया है सो सर्वथा अनुचित है और कदाचित विचारा जाय तो तप गच्छ वाले इस पूर्वार्द्ध पाठ से भी प्रत्यक्ष प्रतिकूल प्रतीत होते हैं देखिये

क्षये पूर्वातिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥

अर्थ—पर्व तिथिका क्षय होने पर पहली तिथि को धर्मकृत्य में ग्रहण करना जैसे पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथिका क्षय होजाय तो [पूर्वातिथिः कार्या] याने पूर्व तिथि जो चतुर्दशी उसमें पाक्षिक संबंधी प्रतिक्रमणादि कृत्य और पूर्णिमा वा अमावास्या संबंधी तपस्या करना उचित है तथापि उक्त वाक्यविरुद्ध तपगच्छीय लोग पूर्णिमा वा अमावास्या की त्रुटी होनेपर त्रयोदशी अपर्व तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं और श्रीहीरविजयसूरिजी ने त्रुटी हुई पूर्णिमा की तपस्या तेरस, चौदस, एकम, इन तीन तिथियों में करने की आज्ञा उपर्युक्त पाठमें लिखी है तो अय पाठकगण! विचारिये कि तपगच्छ वाले सच्चे दिलसे यदि श्रीउमास्वातिजी के उक्त वाक्य को मंजूर करते हैं तो उस वाक्य से विरुद्ध मनमानी उक्त विपरीत रीतिसे क्यों चलते हैं और श्रीहीरविजयसूरिजी ने उक्त तपस्या तेरस और एकम इन तिथियों में करना विपरीत क्यों बताया अस्तु, और भी देखिये-क्षये पूर्वा इत्यादि उक्त वाक्य में उपर्युक्त आगम पाठानुकूल खंडान्वय से यह भी अर्थ विदित होता है कि—

क्षये पूर्वा तथोत्तरा तिथिः कार्या

अर्थ-पर्व तिथि का क्षय होजाय तो पूर्व की पर्व तिथि तथा उत्तर की पर्व तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना उचित है जैसे कि पर्व तिथि पूर्णिमा वा अमावास्या की हानि होने से पूर्वकी पर्व तिथि चतुर्दशी मे, और पर्व तिथि चतुर्दशी का क्षय होनेपर उत्तर की पर्व तिथि पूर्णिमा वा अमावास्या उसमें पाक्षिक पर्व सबंधी प्रतिक्रमणादि कृत्य करना उक्त सिद्धात पाठों से संमत है तो भी चतुर्दशी पर्व तिथि टूट जानेपर उदय त्रयोदशी अपर्व तिथि में पाक्षिक पर्व सबधी प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले करते हैं इस लिये आगम तथा आचरणा से और उपर्युक्त श्रीउमास्वातिजी के वाक्य से तपगच्छीय लोग विरुद्ध हैं अस्तु अब आगे देखिये उक्त अर्द्ध श्लोक का खडान्वय इस तरह होता है।

वृद्धौ पूर्वातिथिः तथोत्तरा तिथिः कार्या

अर्थ-पर्व तिथि की वृद्धि होनेपर पर्वरूप पूर्वतिथि तथा उत्तर तिथि धर्म कृत्यों मे ग्रहण करना चाहिये जैसे कि पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि की वृद्धि होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी पर्व तिथिमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके सूर्योदय युक्त ६० घडी की सपूर्ण पूर्व तिथि याने पहली पूर्णिमा वा अमावास्या में उस तिथि सबधी तप, पुजा, व्रत, नियम करना तथा सूर्योदय युक्त घडी आधघडी की जो उत्तर तिथि याने दूसरी अल्प भोगवाली पूर्णिमा वा अमावास्या है उसमें भी धर्म कृत्य करना उचित है इसी तरह द्वितीया, पचमी आदि की वृद्धि होनेपर भी समझो परंतु यह नहीं मालुम होता कि हमारे प्रियबधु तपगच्छ वाले पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि की वृद्धि होनेपर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी पर्व तिथि ने क्या बिगाड़ा किया कि उस चतुर्दशी पर्व तिथि को मिथ्या कल्पना से अपर्व तिथि त्रयोदशी बनाकर पाप कृत्यों से विराधते हैं और सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की पहली पूर्णिमा वा अमावास्या को पर्व तिथि मानकर उसमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं तथा दूसरी पूर्णिमा वा

अमावास्या में उस तिथि संबंधी तपस्या, पूजा, व्रत, नियमादि धर्म कृत्य करते हैं अर्थात् उपर्युक्त श्रीउमास्वातिजी के वाक्य से यदि तपगच्छ वाले पूर्व तिथि तथा उत्तर तिथि जो दोनों पूर्णिमा वा दोनों अमावास्या को पर्व तिथि मानते हैं तो द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी की वृद्धि होने से पहली और दूसरी दोनों तिथियों को पर्व तिथि न मानकर सूर्योदय युक्त ६०घड़ी की पहली पर्व तिथिको असत्य कल्पना से अपर्व तिथि मानकर विराधना और दूसरी अल्प पर्व तिथि को मानना यह मंतव्य प्रत्यक्ष विपरीतही सिद्ध होता है इसमें कौन मना कर सकता है।

[प्रश्न] जैन पत्रके उक्त लेख में शांतिविजयजी लिखते हैं कि अब खरतरगच्छ वाले ऐसा कोई सूत्रपाठ बतलावें कि पर्व तिथि बढ़ जाय तो पहली को मानना और आगे की न मानना ?

[उत्तर] महाशय शांतिविजयजी को विदित हो कि पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि वढ जायतो आप लोग ६० घड़ी की प्रथम पूर्णिमा वा पहली अमावास्या पर्व तिथि को मानते हैं या नहीं यदि मानते हैं तो किस सूत्र पाठ के आधार से मानते हैं और इसी तरह भाद्र शुक्ल पंचमी दो होने पर उदय चतुर्थीको मिथ्या कल्पना से तीज बना कर चतुर्थी के सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य पहली पंचमी पर्व तिथि में करते हैं और आगे की दूसरी पंचमी पर्व तिथि को आप लोग नहीं मानते हैं क्योंकि तपगच्छ के श्रावक उस दूसरी पंचमी पर्व तिथि को [नीलोत्तरी] हरा साग आदि सेवन करते हैं फिर पर्व तिथि वढ जाय तो पहली को मानना और आगे की दूसरी को न मानना इस विषय में सूत्र पाठ का प्रमाण पूछना यह आपकी विचार शून्यता है या नहीं अथवा आपलोगों की यह उक्त आचरणा किसी सूत्रपाठ से संमत है या नहीं।

यदि आप यह कहें कि भाद्र शुक्ल प्रथम पंचमी और प्रथम पूर्णिमा तथा प्रथम अमावास्या सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की संपूर्ण स्वाभाविक पर्व तिथि होती है इस लिये उन प्रथम पर्वतिथियों को हम विशेषता से मानते हैं तो हमभी कहते हैं कि इसी तरह दो द्वितीया, दो पंचमी, दो अष्टमी,

दो एकादशी, दो चतुर्दशी, दो पूर्णिमा, वा दो अमावास्या होनेपर प्रथमकी पर्व तिथि सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की संपूर्ण स्वाभाविक होती है इसी लिये द्वितीया आदि प्रथमकी पर्व तिथियों की विशेषता से धर्म कृत्यों में ग्रहण करके मानना यह मंतव्य सर्वथा शास्त्र पाठानुकूल है अथवा सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की सपूर्ण स्वाभाविक द्वितीया आदि प्रथम पर्वतिथियों को मिथ्या कल्पना द्वारा अपर्व तिथि मानकर पाप कृत्यों मे विराधना यह मंतव्य शास्त्र पाठों से प्रतिकूल है।

क्योंकि श्रीदशाश्रुतस्कंध भाष्यकार महाराज ने लिखा है कि

चाउम्मासियवरिसे, पक्खिय पंचट्ठमीसु नायव्वा
ताओ तिहीओ ज्जासिं, उदेइ सूरो न अन्नाओ। १।

अर्थ—चातुर्मासिक [वार्षिक] सांवत्सरिक पाक्षिक पंचमी, अष्टमी आदि के धर्म कृत्यों मे वही पर्व तिथिया मानने योग्य हैं कि जिसमें सूर्य उदय हुआ हो याने सूर्योदय युक्त उक्त पर्वतिथिया हो उन्ही को मानना उचित है दूसरी तिथियों को मानना उचित नहीं है।

पूआ पच्चक्खाण, पडिक्कमणं तहय नियमगहणं च।
जाए उदेइ सूरो, ताए तिहीए उ कायव्वं ॥ २ ॥

अर्थ—पूजा पच्चक्खाण प्रतिक्रमण तथा नियम ग्रहण करना इत्यादि धर्मकृत्य जिस पर्व तिथि में सूर्य उदय हुआ हो अर्थात् सूर्योदय मे जो पर्व तिथि हो उसी पर्व तिथि मे करना चाहिये।

उदयंमि जा तिही सा, पमाण मियरा उ कीरमाणाणं।
आणा भंगण वत्था, मिच्छत्त विराहणा पावं ॥ ३ ॥

अर्थ—सूर्योदय के समय में जो पर्व तिथि हो वही प्रमाण करने योग्य है [इयरा] दूसरी तिथि करने वाले आज्ञाभंग अनवस्था के तथा मिथ्यात्व के और पर्व तिथि की विराधने से पाप के भागी होते हैं। यहां पर श्रीतपगच्छ वालों को यह विचार करना चाहिये कि दूसरी अन्य

भोगवाली तिथि को मान कर प्रथमकी स्वाभाविक सूर्योदय युक्त संपूर्ण ६० घड़ी भोगने वाली पर्व तिथि को विराधना इसमें क्या लाभ है कुछ भी नही किंतु उक्त दोषों की प्राप्ति होने की अवश्य संभावना है इसलिये उक्त आगम पाठों से विरुद्ध केवल कपोल कल्पित असत्य जैन पंचांग बना कर सूर्योदय युक्त प्रथमकी संपूर्ण पर्व तिथिको पाप कृत्यों से विराधना यह मन्तव्य सर्वथा त्याग करने योग्य है क्योंकि पापभीरू शास्त्रकार महाराजों नें उपर्युक्त आगम पाठानुकूल सूर्योदय युक्त प्रथम की पर्वतिथियों को धर्मकृत्यों में ग्रहण करके आराधना ही बतलाया है देखिये श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी महाराज विरचित श्रीतत्वतरंगिणी नाम के ग्रंथ में तथा अन्य ग्रंथों में भी लिखा हुआ पाठ यथा—

तिहि वुढ्ढिए पुव्वा, गहिया पड़िपुन्न भोग संजुत्ता
इयरावि माणणिज्जा, परंथोवत्ति तत्तुल्ला ॥ १ ॥

अर्थ—तिथि की वृद्धि होने पर [पुव्वा] प्रथम की पर्व तिथि धर्म कृत्यों में ग्रहण करना याने मानना उचित है क्योंकि प्रथम की पर्वतिथि सूर्योदय से ६० घड़ी पर्यंत रहती है इसलिये परिपूर्ण भोग संयुक्त प्रथम की पर्व तिथि धर्म कृत्यों से अवश्य आराधने योग्य है तथापि उसको यदि कोई पाप कृत्यों से विराधे तो पापभागी हो और दूसरी तिथि भी मानना चाहिये परन्तु [थोवत्ति] थोड़ी होने से [स्तोक] याने किंचित् पूर्व तिथि के तुल्य मानी जाती है।

इसी तरह श्रीजिनपतिसूरिजी ने भी स्वविरचित समाचारी में प्रथम तिथि को मानना लिखा है तत्संबधी पाठ यथा—

तिहिवुढ्ढीए पच्चक्खाण कल्लाणय ण्हवणाइसु पढमा तिही घेतव्वा—इति

अर्थ—तिथि की वृद्धि होनेपर पच्चक्खाण कल्याणक पुजा आदि धर्म कृत्यों में प्रथम की तिथि ग्रहण करने योग्य है क्योंकि प्रथमकी तिथि सू-

योंदय से दिन रात्रि पर्यंत सपूर्ण भुगतने वाली होती है उसको विराधना उचित नहीं है।

इसी तरह श्रीजिनप्रभसूरिजी महाराज ने भी विधिप्रपा ग्रन्थ में लिखा है पाठ यथा—

सव्व तिही वुड्ढीए पुण पढमा चेव पमाणं संपुण्णत्ति काउं—इति ।

अर्थ—सब तिथियों की वृद्धि होने में अर्थात् कोई भी पर्व तिथि या अपर्व तिथि बढ़ जाय तो कल्याणिक तपस्या, पूजा, प्रतिक्रमण आदि धर्म कार्यों में प्रथम तिथि को निश्चय [प्रमाण] ग्रहण करना उचित है क्योंकि प्रथम की तिथि सूर्योदय से ६० घड़ी सपूर्ण होतीहै इस लिये औदयिकी प्रथम तिथि अवश्य माननीया है उसको विराधने से उक्त दोषों की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार तपगच्छ के महोपाध्याय श्रीकल्याणविजयजीगणि कृत प्रश्न और श्रीहीरविजयसूरिजीमहाराजके प्रसादीकृत उत्तर द्वारा श्रीहीर-प्रश्न ग्रंथ में भी सूर्योदय युक्त प्रथम की औदयिक पर्वतिथि मानना लिखा है तद् पाठ यथा-

[प्रश्न] पूर्णिमाऽमावास्योर्वृद्धौ पूर्वमौदयिकी तिथिराराध्यत्वेन व्यवह्रीयमाणाऽस्तीति केनचिदुक्तं श्रीतातपादाः पूर्वतनीमाऽऽराध्यत्वेन प्रसादयंति त-त्किमिति ॥

[उत्तर] पूर्णिमाऽमावास्ययोर्वृद्धौ औदयिक्येव तिथिराराध्यत्वेन विज्ञेया ।

अर्थ-उक्त उपाध्यायजी महाराज नें प्रश्न किया है कि पूर्णिमा और अमावास्या पर्वतिथि की वृद्धि होने पर [पूर्व मौदयिकी] प्रथमकी सूर्यो

दय युक्त जो औदयिकी तिथि आराध्यपने से व्यवहारमें ली जाती है ऐसा किसी ने कहा है और [श्रीतातपादाः] नाम आपभी [पूर्वतनी] प्रथम की तिथि को आराध्यपने से प्रसादित करते हैं सो क्या कारण है, तब उक्त सूरिजीने उत्तर दिया है कि पूर्णिमा और अमावास्या तिथिकी वृद्धि होनेपर प्रथमकी तिथिको प्रसादित करनेमें याने माननेमें कारण यह है कि औदयिकी तिथि निश्चय आराध्यपने से विशेष ज्ञान द्वारा मानना उचित है इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि प्रथम की औदयिकी तिथि सूर्योदय से प्रारंभ होकर दिन रात्रि पर्यंत संपूर्ण ६० घड़ी की होती है इस लिये विशेषता से अधिक मान्य है और दूसरी औदयिकी तिथि एक दो मिनट की या घड़ी आध घड़ी रहती है अतएव किंचित् मान्य है। इसी तरह उपाध्याय श्री समय सुन्दरजी महाराजनें भी समाचारी शतक में लिखा है पाठ यथा—

ननु तिथिवृद्धौ प्रथमातिथिर्गृह्यते तत्र किं बीजं उच्यते अत्रेदं रहस्यं उदयातिथित्वे उभयत्र वर्तमानत्वेन साम्येपि उदयाऽस्तमनयोर्द्वयोस्तत्र वर्तमानत्वात् संपूर्णतिथित्वाच्च प्रथमतिथेराऽऽधिक्येन मान्यत्वं प्रथमतिथिं संपूर्णभोगां विहाय अल्पभोगाया उत्तरतिथेरंगीकरणे कारणाऽभावः ॥इति॥

अर्थ—यदि कोई प्रश्न करे कि तिथिकी वृद्धि होने परप्रथम तिथि धर्म कृत्यों में ग्रहण की जाती है उसमें क्या कारण है उत्तर यहां पर[रहस्य] गूढ़ अभिप्राय यह है कि सूर्योदय के समय में दोनों तिथि वर्तमान होने से समान हैं तौभी प्रथम तिथि में सूर्यका उदय और अस्त यह दोनों वर्तमान होनेसे और ६० घड़ीकी संपूर्ण तिथि होनेसे स्वाभाविक जो प्रथम तिथिहै वही अधिकता से माननीया है क्योंकि सूर्योदय से दिन रात्रि पर्यंत संपूर्ण [भोग] रहने वाली प्रथम तिथिको पापकृत्योंसे विराधितकरके दोचार मिनट वा घड़ी आध घड़ीकी अल्प भोगवाली दूसरी

तिथिको अंगीकार करनेमें कुछ भी कारण नहीं मिलता है इस लिये श्री· युत शान्तिविजयजी को मैत्री भाव से कहा जाता है कि उपर्युक्त पाठो के अनुसार सूर्योदययुक्त प्रथमकी संपूर्ण तिथिको विशेषता से और दूसरी अल्प समय रहने वाली तिथिको सामान्यता से धर्म कृत्यों के द्वारा आरा- धित करना तपगच्छ वालों को उचित है परन्तु द्वितीया, पंचमी, आदि ६० घड़ी की संपूर्ण स्वाभाविक प्रथमकी पर्व तिथियों को अपर्व तिथि बना कर अधर्म कृत्यों से विराधना उचित नहीं है।

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र के लेखमें श्रीशान्तिविजयजी लिखते हैं कि "इन्साफसे भी तपगच्छ वालों की मानी हुई बात ठीक पाई जाती है कि तिथि घटे तो पिछली के साथ मिले और बढे तो अगली के साथ मिले जैसे तीन शख्स एक पीछे एक चल रहे हैं उसमें बिचला शख्स अगर थक जाय तो पिछले को मिलेगा अगर वही शख्स चलता हुआ ज्यादा चल जाय तो अगले को मिलेगा इसी तरह तिथि के बारे में समझिये— एक्कम, दूज, तीज, एक पीछे एक चल रही हैं उसमें दूज थक जाय या नी टूट जाय तो एकम को मिले और अगर दूज बढ़ जाय तो तीज को मिले समझ सको तो समझलो यह एक सीधी सड़क है।" उक्तमहाशय का यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] प्रिय पाठक वृन्द ! तपगच्छ वालों का यह एकांत मतव्य उपर्युक्त आगम प्रमाणों से विपरीत सिद्ध होता है देखिये, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, वा अमावास्या यह तिथियां एक पीछे एक चल रही हैं उसमें पूर्णिमा या अमावास्या थक जाय याने टूट जाय तो तपगच्छ वाले त्रयोदशी को पाक्षिक या चतुर्मासी प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो उपर्युक्त आगम पाठ तथा आचरणा से और शान्तिविजयजी के इस उपर्युक्त कथन से सर्वथा प्रतिकूल है क्योंकि पूर्णिमा या अमावास्या की त्रुटि होने पर चतुर्दशी को पाक्षिक या चतुर्मासी प्रतिक्रमणादिकृत्य करना सर्वथा उचित है इसी तरह चतुर्दशी की त्रुटि होने पर पूर्णिमा वा अमावास्या को पाक्षिक या चतुर्मासी प्रतिक्रमणादि कृत्य करना उक्त आगम पाठोंसे संमत है तथापि शान्तिविजयजी उसको त्रयोदशी में करना

मानते हैं तो आगम पाठ बतलावें अन्यथा सिद्धांत तथा आचरणा विरुद्ध उक्त पाक्षिक चातुर्मासिक संबंधी कृत्य त्रयोदशी में करना वा मानना युक्त नहीं है" इसी प्रकार त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, वा अमावास्या यह तिथियां क्रमसे एक पीछे एक चल रही हैं उनमें पूर्णिमा वा अमावास्या बढ़ जाय तो तपगच्छ वाले उदय चतुर्दशी को मिथ्या कल्पना से त्रयोदशी मानकर पाप कृत्यों से विराधते हैं और प्रथमकी उदय पूर्णिमा में वा प्रथमकी उदय अमावास्या तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो शांतिविजयजी के उक्त कथन से विपरीत है क्योंकि उक्त महाशय नें लिखा है कि तिथि घटे तो पिछली के साथ मिले और बढ़े तो अगली के साथ मिले यह कथन पूर्णिमा वा अमावास्या की त्रुटि वा वृद्धि होने पर उपर्युक्त तपगच्छ वालों की पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य संबंधी आचरणा से स्पष्ट विपरीत सिद्ध होताहै इस लिये महाशय शांतिविजयजी अपने कथनानुसार प्रथम अपने गच्छ में यह प्रबंध करें कि पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि घटने पर पिछली तिथि विद्यमान उदय चतुर्दशी में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तथा त्रुटी पूर्णिमा वा अमावास्या संबंधी तपस्या करे और पूर्णिमा वा अमावास्या की वृद्धि होने पर पहली पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि में पाक्षिक कृत्य न करके विद्यमान उदय चतुर्दशी में पाक्षिक कृत्य तथा दूसरी पूर्णिमा वा अमावास्या में उस तिथि संबंधी तपस्या आदि करे।

[प्रश्न] वर्तमान काल में तपगच्छ वाले जैनज्योतिष विरुद्ध असत्य जैनपंचांग बनाकर उसमें चौदश को कायम रखते हैं मगर तपगच्छ के श्रीविनयविजयजी विरचित लोकप्रकाश में चौदश का क्षय होना सुना है। परंतु इस प्रश्न का उत्तर श्रीयुत शांतिविजयजी उक्त जैनपत्र के लेख में लिखते हैं कि सुनी सुनाई बातपर अमल करना मुनासिब नहीं पाठ जाहिर कीजिये तपगच्छ वाले जो चौदश को कायम रखते हैं उसकी साबिती के लिये सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति का पाठ मौजूद है और वो पाठ इसी लेख मे दूसरे सवाल के जवाब में दे चुका हूं" शांतिविजयजी का यह कथन शास्त्रानुकूल है या प्रतिकूल ?

[उत्तर] पाठकगण ! उक्त मुनिराज का यह कथन शास्त्रकार महाराजों के मतव्य से प्रतिकूल है देखिये तपगच्छ के श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज नें।

तिथिश्च प्रातःप्रत्याख्यानवेलायां या स्यात् सा प्रमाणा सूर्योदयाऽनुसारेणैव लोकेऽपि दिवसादिव्यवहारात्

इस श्राद्धविधि के वाक्य द्वारा जैन तथा लौकिक सिद्धातों के अनुकूल प्रभात के प्रत्याख्यान [पच्चक्खान] की वेला में सूर्योदय के वक्त जो तिथि हो। जैसे कि प्रभातकाल में सुर्योदय के वक्त त्रयोदशी तिथि है और दो चार घड़ी के बाद चतुर्दशी तिथि हो तथा दूसरे दिन सुर्योदय के समय में यदि पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि आ जाय तो श्रीरत्नशेखरसूरिजी के उपर्युक्त वाक्यानुसार जैनटिप्पने में वा लौकिक टिप्पने में त्रयोदशी तथा पूर्णिमा वा अमावास्या यही तिथिया कायम रक्खी जाती हैं और चतुर्दशी नहीं कायम रक्खी जाती है क्योंकि सूर्योदय के समय चतुर्दशी तिथि न होने के कारण से उस चतुर्दशी का क्षय लिखा जाता है यही विषय छपे हुवे लोकप्रकाश के २८ वें सर्ग में पृष्ठ ११२१ से ११३० पर्यंत चतुर्दशी तथा अन्य तिथियों के क्षय होने सबधी जैनज्योतिष के अनुसार श्रीविनयविजयजी ने लिखा है वह पाठ जिन महाशयों को देखना हो उक्त ग्रथ को मंगाकर देखलेंवें और इसी बारे में सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रवृत्ति का पाठ हम आगे चलकर बतावेंगे'' परतु शातिविजयजी नें सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति के नाम से "अहृजइ" इत्यादि उपर्युक्त गाथा के प्रमाण द्वारा चतुर्दशी को मनःकल्पित आगमविरुद्ध वर्तमानकालके असत्य जैनपचाग मे कायम रखने के लिये जो परमाग्रह किया है सो सर्वथा निर्मूल है क्योंकि "अहृजइ" इत्यादि उक्त गाथा सूर्यप्रज्ञप्ति संबधी किसी पाहुड़[प्राभृत] में नहीं लिखी है यदि हो तो उक्त महाशय जी को उसप्राभृत तथा पत्राक को बताना मुनासिब है तथा इस गाथा का सत्य अर्थ प्रकाशित करना उचित है क्योंकि इस गाथा में यह गध दिखाई नहीं पड़ता है कि मन कल्पित असत्य जैनपचाग बनाकर अपनी मिथ्या कल्पना द्वारा तिथियों को उ-

लट, पलट, कर कायम रखना जैसे कि पूर्णिमा वा अमावास्या का क्षय हुआ तो तेरस का क्षय मानकर तेरस को चतुर्दशी बनाकर कायम रखना और चौदश को पूनम वा अमावास्या बनाकर कायम करना यदि पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि की वृद्धि हुई तो तेरस की वृद्धि मानकर चौदश को मिथ्या कल्पना से दूसरी तेरस बनाकर कायम रखना और प्रथम पूर्णिमा वा अमावास्या को चौदश बनाकर कायम रखना इसी प्रकार द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियों की वृद्धि वा क्षय हुआ तो लौकिक टिप्पने में सूर्योदय युक्त पर्व तिथियों को और अपर्व तिथियों को मिथ्या कल्पना से अदल बदल करके अन्य तिथियों को कायम रखना अर्थात् तपगच्छ वालों का यह उपर्युक्त कपोल कल्पित असत्य जैन पंचांग संबंधी मंतव्य, विचार द्वारा लौकिक टिप्पने से और जैन सिद्धांतों से प्रत्यक्ष विरुद्ध सिद्ध होता है देखिये लौकिक टिप्पने में जब वृद्धि द्वारा दो द्वितीया, दो पंचमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, दो चतुर्दशी, दो पूर्णिमा, दो अमावास्या, होती है तो तपगच्छ वाले अपने मनःकल्पित असत्य जैन पंचांग में वृद्धि द्वारा, दो एक्कम, दो चौथ, दो सप्तमी, दो दशमी, दो त्रयोदशी, कायम करते हैं सो लौकिक टिप्पने से प्रत्यक्ष विरुद्ध है और जैनागम से भी प्रतिकूल है क्योंकि जैन ज्योतिष शास्त्र में कहीं भी इसी तरह तिथियों की वृद्धि करना नहीं लिखा है किंतु एक वर्ष में केवल ६ तिथियों का क्षय होना लिखा है प्रमाण खरतरगच्छ नायक श्रीमान् अभयदेवसूरिजी महाराज विरचित श्रीसमवायांगसूत्र की टीका में पाठ यथा—

आषाढादय एकांतरिताः षण्मासा एकोनत्रिंशद्रात्रिंदिवसपरिमाणेन भवंति स्थूलन्यायेन कृष्णपक्षेप्रत्येकं रात्रिंदिवस्यैकस्य क्षयात् आहच

आसाढ़बहुलपक्खे । भद्दवए कत्तिएय पोसे य ।
फग्गुणवइसाहेसुय । बोधव्वा ओमरत्ताओत्ति ॥१॥

अर्थ—एक एक मास के अंतर वाले जो आषाढ़ आदि ६ मास वे

२६ रात्रि दिन के प्रमाण से होते हैं क्योंकि स्थूल न्याय से उन छ मासों के प्रत्येक कृष्ण पक्षमें एक रात्रिदिन का क्षय होजाता है यानें तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म विचार से देखा जायतो सूर्यसंबंधी अहोरात्रि के ६२ भाग करना उसमें से चंद्रसंबंधी तिथि ६१ भाग प्रमाण वाली होती है अर्थात् १ भाग नित्य क्षय हुई सो स्थूल न्याय से ६१ अहोरात्रि होने पर ६२ वीं तिथि क्षय मानी जाती है, यत॰ पूर्वाचार्य महाराजों ने कहा है कि आषाढ कृष्ण पक्षमें एक तिथि क्षय होती है इसी तरह भाद्रपद कृष्ण पक्षमें दूसरी, कार्त्तिक कृष्णपक्ष में तीसरी, पौष कृष्ण पक्ष में चौथी, फाल्गुन कृष्ण पक्षमें पांचवीं, वैसाख कृष्ण पक्ष में छट्ठीं [ओमरत्ताओ] क्षय तिथि जानना पाठक गण ! उपर्युक्त पाठानुसार एक वर्षमें कुल ६ तिथियों का क्षय होता है इसी लिये शास्त्रकार महाराजों ने चन्द्रवर्ष का प्रमाण एक अहोरात्रि संबंधी वासठीय १२ भाग अधिक ३५४ रात्रि दिन का बताया है और तेरह मास वाला अभिवर्द्धित वर्ष का प्रमाण एक अहो रात्रि संबंधी ४२ वासठीय भाग युक्त ३८३ रात्रि दिन का यथार्थ गणित द्वारा जैन सिद्धांतों में लिखा है " प्रमाण श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र टीका में पाठ यथा—

३०० तिन्नि अहोरत्त सया । ५४ चउपन्ना नियमसो हवइ चंदो । भागाय १२ बारसे वय । बाव ट्ठिकएण वेएण ॥ १ ॥

अर्थ-एक अहो रात्रि के ६२ भाग करना उसमें से १२ भाग युक्त ३५४ रात्रि दिन के प्रमाण वाला चन्द्र वर्ष होता है उसमें उपर्युक्त ६ क्षय तिथियों को मामिल करने से ३६० रात्रि दिन लौकिक व्यवहार तथा सावत्सरिक अब्भुट्ठियेम कहा जाता है।

३००तिन्नि अहोरत्त सया । ८३ तेसीई चेव होइ अभिवड्ढे । चोंयालीसं भागा । बावट्ठिकएण वेएण॥२॥

अर्थ—एक दिन रात्रिके ६२ भाग करना उनमें से४४ भाग युक्त ३८३

रात्रि दिन के गिनती वाला अभिवर्द्धित वर्ष कहाजाता है उसमें भी उपर्युक्त ६ क्षय तिथियों को सामिल करने से ३६० रात्रि दिन लौकिक व्यवहार तथा सांवत्सरिक खामणे में जो कहा जाता है सो सत्य है।

तथापि हमारे प्रिय धर्म बंधु तप गच्छीय लोग आगम विपरीत अपने गच्छ कदाग्रह से सांवत्सरिक क्षामनें में अभिवर्द्धित वर्षके ३६० रात्रि दिन बोलना बताते हैं सो उक्त पाठसे विरुद्ध है और उपर्युक्त पाठों के अनुसार एक वर्षमें ६ क्षय तिथियां तथा उक्त १२ भाग युक्त ३५४ शेष तिथियां इन दोनों को शामिल करने से चंद्र वर्ष में ३६० तिथियां होती हैं और इसी तरह उक्त ६ क्षय तिथि तथा ४४ भाग युक्त ३८३ शेष तिथियां इन दोनों को सामिल करने से अभिवर्द्धित वर्ष में ३९० तिथियां होती हैं इस कथन से यही स्पष्ट विदित होता है कि जैन ज्योतिष के हिसाब से तिथियों की हानि होती है परंतु वृद्धि द्वारा दो तिथियां कदापि नहीं होतीहैं तथापि वर्तमान कालमें तपगच्छ वाले अपनी मनमानी मिथ्या कल्पना से असत्य जैनपंचांग बना कर लौकिक टिप्पने के हिसाब से जब दो द्वितीया, दो पंचमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, दो चतुर्दशी, दो पूर्णिमा, दो अमावास्या होती हैं तब तप गच्छ वाले अपने मनः कल्पित असत्य जैन-पंचांग में, वृद्धिद्वारा दो एकम, दो चौथ, दो सप्तमी, दो दशमी, दो तेरस कायम करते हैं सो लौकिक टिप्पने से तथा उक्त जैन सिद्धांत पाठों से प्रत्यक्ष विरुद्ध है अस्तु अब देखिये-लौकिक टिप्पनेमें जब द्वितीया आदि पर्व तिथियों का क्षय होता है तब तपगच्छ वाले अपने मनः कल्पित असत्य जैन पंचांग में एकम आदि अपर्व तिथियों का क्षय करते हैं अर्थात् पर्वतिथियों का क्षय नहीं मानते हैं सो भी लौकिक टिप्पने से तो प्रत्यक्ष विरुद्ध हैं और जैन ज्योतिष के मंतव्यसे भी प्रत्यक्ष प्रतिकूल [विरुद्ध] है क्योंकि श्री ज्योतिष्करंडकपयन्ना, चंद्रप्रज्ञप्ति आदि जैनसिद्धांतो में पर्व तिथियों का क्षय माना गया है श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र की टीका में पाठ यथा—

युगादितश्चतुर्थे पर्वणि [पक्षे] गते प्रतिपद्यवमरात्रि भूतायां द्वितीया समाप्तिमुपयाति इति ॥

अर्थ—पांच वर्ष का एक युग होता है उसकी आदि से याने श्रीसूर्य-प्रज्ञप्ति आदि जैन ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार श्रावण कृष्ण पतिपदा से युगका आरम्भ होना लिखा है। यथा

श्रावणबहुलपक्षप्रतिपल्लक्षणात् युगादितः

अतएव युग के आदि याने श्रावण कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा [एकम] से चार पक्ष बीत जानेपर अवमरात्रिभूत जो आश्विन वदी एकम तिथि में द्वितीया पर्व तिथि समाप्ति को प्राप्त होती है याने एकम और दूज भेली समाप्त होती है इसलिये द्वितीया पर्वतिथि का क्षय होता है क्योंकि युगादि श्रावण वदी १ से आश्विन वदी १ पर्यंत ६१ अहोरात्रि [दिनरात्रि] होती है इस लिये उस ६१ वीं अहोरात्रि अर्थात् एकम तिथि तथा ६२ वीं द्वितीया पर्व तिथि,, अर्थात् ये दोनों तिथिया एकही दिन सामिल [भेली] समाप्त होती हैं इस लिये ६२ वीं आश्विन वदी द्वितीया पर्व तिथि [पतिता] पड़गई याने क्षय हुई टूट गई तिथि की हानि हुई इत्यादि शब्दों से लोक में व्यवहार होता है। यतः प्रमाण श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करडकपयन्ना आदि टीका सबंधी पाठ यथा।

एकैकस्मिन् दिवसे एकैको द्वाषष्ठिभागोऽवमरात्रस्य संबंधीप्राप्यते ततो द्वाषष्ठ्यादिवसै रेकमवमरात्रंभवति किमुक्तं भवति दिवसे दिवसे अवमरात्रसत्क एकैकद्वाषष्टिभागवृद्धया द्वाषष्टितमे दिवसे त्रिषष्टितमा तिथिः प्रवर्तते इति एवं च सति य एकषष्टितमोऽहोरात्रस्तस्मिन्नेकषष्टितमा द्वाषष्टितमा च तिथिर्निधनमुपगतेति द्वाषष्टितमा तिथिर्लोके पतितेति व्यवह्रियते तथाचाह

एकम्मि अहोरत्ते, दोवि तिही जत्थ निहणमेज्ञासु।
सोत्थ तिही परिहायइ,सुहमेण हविज्ञ सो चरिमो।१।

एकैकस्मिन्नहोरात्रे तिथिसत्को द्वाषष्टिभागो हानि-

मुपगच्छन्‌सन्नेकषष्ठितमे अहोरात्रे द्वे अपि एकषष्ठि तमा द्वाषष्ठितमरूपे तिथी निधनमायातःसा द्वाषष्ठि तमा तिथिरत्र एकषष्ठितमे अहोरात्रे परिहीयते एवंच-सति सूक्ष्मेण द्वाषष्ठितमरूपतया अतिश्लक्ष्णेन एकै केन भागेन परिहीयमानाया द्वाषष्ठितमायास्तिथेःस-त्क एकषष्ठितमो दिवसश्चरमपर्यवसानभूतस्तत्र सा सर्वात्मना निधनमुगतेति ।

अर्थ—जैन ज्योतिष संबंधी गणित के हिसाब से एक एक दिन में [अवमरात्र] क्षय तिथि संबंधी वासठवाँ भाग प्राप्त होता है याने दिन रात्रि का ६२ भाग करना उनमें से एक भाग याने वासठवाँ हिस्सा अवम रात्रि (क्षयतिथि) का भाग समझना चाहिये इसी हिसाब से प्रति दिन एक एक वासठवाँ भाग ६२ दिनों में एक अवमरात्रि अर्थात्‌ क्षय तिथि होती है और इसी प्रकार प्रति दिन [अवमरात्र] क्षय तिथि संबंधी एक एक वासठवाँ भाग की वृद्धि करने से वासठवें दिन ६३ वीं तिथि प्रवृत्त होती है ऐसा करने पर जो ६१ वीं अहोरात्रि [दिनरात्रि] उसमें ६१ वीं और वासठवीं दोनों तिथियां एकही दिन समाप्त होतीं हैं इस लिये लोक में ६२ वीं तिथि [पतिता] पड़गई वा, टूट गई, अथवा क्षय हुई, हानि हुई इत्यादि व्यवहार लोक में होता है और पूर्वाचार्य महाराजों ने भी अ-न्य ग्रन्थों में उक्त प्रकार से कहा है कि एक एक अहोरात्रि [दिनरात्रि] में तिथि संबंधी वासठवां एक भाग हानि [क्षय] को प्राप्त होता हुआ ६१ वीं अहोरात्रि में दोनों याने ६१ वीं तिथि तथा ६२ वीं तिथि इस ६१ वीं अहोरात्रि में भेली समाप्ति को प्राप्त होती है ऐसा होनेपर यह समझना चाहिये कि सूक्ष्मता से याने वासठवाँ हिस्सा अतिसूक्ष्म एक एक भाग करके प्रतिदिन हानि को प्राप्त होता हुआ ६२ वीं तिथि संबंधी ६१वाँ दिन अंतिम कहलाता है उस ६१ वें दिन वह ६२ वीं तिथि सर्वथा क्षय को प्राप्त होती हैं ।

अब उक्त रीति से ६१ वीं अहोरात्रि [दिनरात्रि] में ६२ वीं तिथि

कौनसी क्षय होती है इसी को दिखलाते हैं जैसे युगादि श्रावणवदी १ से आश्विन वदी १ पर्यंत ६१ अहोरात्रि [दिनरात्रि] होती है उस ६१ वीं अहोरात्रि में आश्विनवदी एकम तिथि तथा आश्विन वदी द्वितीया पर्व-तिथि अर्थात् यह दोनों तिथियाँ सामिल एकही दिन समाप्त होती हैं याने आश्विन वदी एकम तथा दूज भेली समाप्त होती है इस लिए ६२ वीं आश्विन वदी द्वितीया पर्वतिथि का क्षय उपर्युक्त आगम पाठों से हम बताचुके हैं अब उपर्युक्त ६२ तिथियों के गणित के हिसाब से द्वितीया पर्व तिथि में तृतीया अपर्व तिथि का क्षय ३७ पक्ष बीतने पर होता है प्रमाण श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रादि की टीकाओं में पाठ यथा।

युगादितः सप्तत्रिंशत्तमे पर्वणि [पक्षे] गते द्वितीयायामऽवमरात्रिभूतायां तृतीया समाप्नोति।

अर्थ-युगादि याने श्रावण वदी १ से ३७ पक्ष गये बाद अवमरात्रिभूत द्वितीया पर्वतिथि में तृतीया अपर्व तिथि समाप्त होती है। अर्थात् युगादि श्रावण वदी १ से दूसरे वर्ष में माघ सुदी दूज और तीज यह दोनों तिथिया सामिल (भेली) समाप्त होती हैं। अतएव तीज तिथि की हानि होती है क्योंकि उपर्युक्त पाठ में कहा है कि [एगंमि अहोरत्ते। दो वि तिहीं जत्थ निहया मेऊंसु भोत्थ तिहीं परिहायइ] अर्थ-एक अहो रात्रि [दिन रात्रि] में दोनों तिथियाँ जहा सामिल [भेली] समाप्त होती है वहा उपर्युक्त ६२ तिथियों के गणितानुसार यह ६२ वीं तिथि लोक में हानि को प्राप्त होती है यहाँ पर ३७ पक्ष बीतने पर द्वितीया तिथि में तृतीया तिथि सामिल [भेली] होने से तृतीया तिथि का जो क्षय होता है सो ६२ तिथियों के गणितानुसार ९ वीं तिथि का क्षय है याने इतने काल पर्यन्त ९ तिथियों का क्षय होता है। देखिये एक पक्ष में १५ तिथियां होती हैं तो इस हिसाब से ३७ पक्ष की ५५५ तिथियाँ हुई और द्वितीया तिथि में तृतीया तिथि समाप्त होती है इस लिये ३ तिथियाँ उक्त संख्याओं में दूसरी और मिलाने से ५५८ तिथियाँ हुई इसमें ६२ तिथियों का भाग देने से ९ लब्ध हुई इस कारण से ९

वीं क्षय तिथि द्वितीया में तृतीया होती है । इसी प्रकार आगे सभी क्षय तिथियों में उक्त गणित क्रम के अनुसार भावना तथा क्षय तिथियों की संख्या स्वयं विचार लेनी चाहिये ।

अब कितनें कितनें पक्ष बीतने पर तृतीया आदि तिथियों में चतुर्थी आदि तिथियाँ सामिल [भेली] समाप्त होने से क्षय को प्राप्त होती हैं सो बताते हैं । यतः श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंडपयन्ना आदि टीकाओं में पाठ है कि ।

तृतीयायां चतुर्थी समापयत्यऽष्टमे पर्वणि [पक्षे] गते चतुर्थ्यां पंचमी एकचत्वारिंशत्तमे पर्वणि गते पंचम्यां षष्ठी द्वादशे पर्वणि गते षष्ठ्यां सप्तमी पंचचत्वारिंशत्तमे पर्वणि गते सप्तम्यामऽष्टमी षोडशे पर्वणि गते अष्टम्यां नवमी एकोनपंचाशत्तमे पर्वणि गते नवम्यां दशमी विंशतितमे पर्वणि [पक्षे] गते दशम्यामेकादशी त्रिपंचाशत्तमे पर्वणिःगते एकादश्यां द्वादशी चतुर्विंशतितमे पर्वणि गते द्वादश्यां त्रयोदशी सप्तपंचाशत्तमे पर्वणि गते त्रयोदश्यां चतुर्दशी अष्टाविंशतितमे पर्वणि [पक्षे] गते चतुर्दश्यां पंचदशी एकषष्टितमे पर्वणि गते पंचदश्यां प्रतिपत् द्वात्रिंशत्तमे पर्वणि गते समापयति इत्येव मेता युगपूर्वार्द्धे एवं युगोत्तरार्द्धेऽपिद्रष्टव्याः तदेवमुक्ता अवमरात्राः ।

अर्थ-ऊपर में बता चुके हैं कि पांच वर्ष का एक युग होता है और युग की आदि जो श्रावण वदी १ उससे ४ पक्ष गये बाद प्रतिपदा

[पक्षम] तिथि में द्वितीया तिथि [अर्थात् आश्विन वदी पक्षम दूज] सामिल [भेली] समाप्त होती हैं इस लिए लोकमें द्वितीया [दूज] पर्व तिथि की हानि [क्षय] हुई ऐसा कहा जाता है सो उक्त ६२ तिथियों के गणितानुसार यह प्रथम क्षय तिथि है और युगादि याने श्रावण वदी १ से २७ पक्ष के अनंतर द्वितीया तिथि में तृतीया तिथि [अर्थात् दूसरे वर्ष की माघ सुदी दूज—तीज] भेली समाप्त होती है। अतएव लोक में तीज अपर्व तिथि का क्षय कहा जाता है सो ६२ तिथियों के गणित क्रम से यह नवमी क्षय तिथि है इसी उक्त प्रकार से यहांपर भी जानना चाहिये कि युगादि याने श्रावण वदी १ से ८ पक्ष व्यतीत होनेपर तृतीया तिथि में चतुर्थी तिथि [अर्थात् मगसिर वदी तीज-चौथ] भेली समाप्त होती है अतएव लोक में चौथ तिथि का क्षय कहा जाता है सो ६२ तिथियों के गणित हिसाब से यह दूसरी क्षय तिथि है तथा युगादि याने श्रावण वदी १ से ४१ पक्ष व्यतीत होनेपर चतुर्थी तिथि में पंचमी तिथि [अर्थात् दूसरे वर्ष में चैत्र सुदी चौथ-पंचमी] सामिल समाप्त होती हैं अतएव लोक में पंचमी पर्व तिथि का क्षय होता है सो ६२ तिथियों के उक्त गणित से यह दसवीं क्षय तिथि है और भी देखिये युगादि याने श्रावण वदी १ से १७ पक्ष के बाद पंचमी तिथि में षष्ठी तिथि [अर्थात् माघ वदी पंचमी तथा छठ तिथि] भेली समाप्त होती हैं अतएव लोकमें छठ तिथि का क्षय कहा जाता है सो ६२ तिथियों के उक्त हिसाब से यह तीसरी क्षय तिथि है। युगादि याने श्रावण वदी १ से ४५ पक्ष गये बाद षष्ठी तिथि में सप्तमी तिथि [अर्थात् दूसरे वर्ष में जेठ सुदी छठ और सप्तमी] भेली समाप्त होती हैं अतएव लोक में सप्तमी तिथि का क्षय कहा जाता है। सो ६२ तिथियों के उपर्युक्त हिसाब से ग्यारहवीं क्षय तिथि है युगादि श्रावण वदी १ से १६ पक्ष गये बाद सप्तमी तिथि में अष्टमी तिथि [अर्थात् चैत्र वदी सप्तमी और अष्टमी] सामिल समाप्त होती हैं इस लिये अष्टमी पर्व तिथि का लोक में क्षय अथवा त्रुटि कही जाती है सो ६२ तिथियों के उक्त हिसाब से यह चौथी क्षय तिथि है युगादि श्रावण वदी

१ से ४६ पक्ष बीतने पर अष्टमी तिथि में नवमी तिथि [अर्थात् तीसरे वर्ष में श्रावण सुदी अष्टमी और नवमी] भेली समाप्त होती हैं अतएव लोक में नवमी तिथि की हानि हुई ऐसा कहने में आता है सो ६२ तिथियों के गणित से यह बारहवीं क्षय तिथि है युगादि श्रावण वदी १ से २० पक्ष गये बाद नवमी तिथि में दशमी तिथि [अर्थात् ज्येष्ठ वदी नवमी और दशमी] सामिल समाप्त होती हैं अतएव लोक में दशमी तिथि की हानि कही जाती है सो ६२ तिथियों के उक्त गणित से यह पांचवीं क्षय तिथि है युगादि श्रावण वदी १ से ५३ पक्ष गये बाद दशमी तिथि में एकादशी तिथि [अर्थात् तीसरे वर्ष में आश्विन सुदी दशमी और एकादशी] भेली समाप्त होती हैं इस लिये एकादशी पर्व तिथि का क्षय होता है सो उक्त ६२ तिथियों के गणित से यह तेरहवीं क्षय तिथि है। युगादि श्रावण वदी १ से २४ पक्ष गये बाद एकादशी तिथि में द्वादशी तिथि [अर्थात् श्रावण वदी ग्यारस–बारस] भेली समाप्त होती हैं अतएव द्वादशी तिथि क्षय होती है सो ६२ तिथियों के उक्त गणित से यह छठवीं क्षय तिथि है। युगादि श्रावण वदी १ से ५७ पक्ष गये बाद द्वादशी तिथि में त्रयोदशी तिथि [अर्थात् तीसरे वर्षमें मगसिर सुदी बारस और तेरस] सामिल समाप्त होती हैं। अतएव त्रयोदशी तिथि टूटी है यह कहा जाता है सो उक्त ६२ तिथियों के गणित से यह चौदहवीं क्षय तिथि है। युगादि श्रावण वदी १ से २८ पक्ष गये बाद त्रयोदशी में चतुर्दशी तिथि [अर्थात् दूसरे वर्ष में आश्विन वदी तेरस चौदश] भेली समाप्त होती हैं इस लिये चतुर्दशी पर्व तिथि का क्षय होता है सो ६२ तिथियों के उपर्युक्त गणित से यह सातवीं क्षय तिथि है। युगादि श्रावण वदी १ से ६१ पक्ष गये बाद चतुर्दशी तिथि में पूर्णिमा तिथि [अर्थात् तीसरे वर्ष में माघ सुदी चौदश पूनम] भेली समाप्त होती हैं अतएव पूर्णिमा पर्व तिथि का क्षय होता है सो उपर्युक्त ६२ तिथियों के गणित से यह पन्द्रहवीं क्षय तिथि है। युगादि श्रावण वदी १ से ३२ पक्ष गये बाद अमावास्या तिथिमें एकम तिथि [अर्थात् दूसरे वर्षमें मगसिर वदी अमावास्या तथा मगसिर सुदी एकम] सामिल समाप्त होती हैं इस लिये लोक में एकम

तिथि क्षय हुई कही जाती है सो उपर्युक्त ६२ तिथियों के गणित से यह आठवीं क्षय तिथि है। इन उक्त प्रकारसे यह कुल उपर्युक्त १५ पर्व अपर्व तिथिया युगके पूर्वार्द्ध भाग मे क्षय होती हैं और इसी प्रकार युगके उत्तरार्द्ध भाग में भी १५ पर्व अपर्व तिथिया क्षय होती है।

प्रिय पाठकगण ! अब तो आप लोगों को भलीभाति से विदित होगया होगा कि लौकिक टिप्पने मे ज्योतिष सम्बन्धी गणित के अनुसार द्वितीया आदि पर्व तिथियों का क्षय मानने में आता है और जैन ज्योतिष के ग्रन्थों में भी उपर्युक्त पाठानुसार द्वितीया आदि पर्व तिथियों का क्षय माना है तथापि आगम विरुद्ध तपगच्छीय लोग पर्वतिथियों का क्षय न मानकर अपनी मनमानी कल्पना से आगम विरुद्ध असत्य जैन पचाग बनाकर लौकिक टिप्पने में यदि चौदश या पूनम वा अमावास्या आदि पर्व तिथियों का क्षय हुआ हो तो मिथ्या कल्पना से तेरस आदि अपर्व तिथियों का क्षय मानते हैं सो उनलोगों का यह मतव्य लौकिक टिप्पने से तथा उपर्युक्त जैन ज्योतिष सम्बन्धी क्षय तिथियों के मतव्यसे प्रत्यक्ष विरुद्ध है और यदि चौदश या पूनम वा अमावास्या का क्षय हुआ हो तो इन तिथियों के बदले असत्य कल्पना से आगम तथा लौकिक टिप्पने के विरुद्ध तेरस का क्षय मानकर उसी तेरस तिथि मे पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले करते हैं सोभी आगम तथा आचरणा से सम्मत नहीं है। क्योंकि पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य [पक्षान्ते भव पाक्षिकं] इस व्युत्पत्ति से पक्ष के अंत में होनें से पाक्षिक कहलाता है और [अतो परखस्स] इत्यादि पाक्षिक सूत्रादि के वचनों से भी पक्षका अन्त जो पूर्णिमा अमावास्या उसीमें पाक्षिक प्रतिक्रमणादि करना चाहिये परतु चौथ तिथि की पर्युषण आचरणे से चौमासी तथा पाक्षिक कृत्य चौदश मे किए जाते हैं इस लिए यदि चौदश का क्षय हुआ हो तो पूनम वा अमावास्या और पूनम वा अमावास्या का क्षय हो तो चौदश में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना आगम तथा आचरणा से सम्मत है परतु तेरस में नहीं अस्तु।

अब तिथियों की वृद्धि का विचार करते हैं तो लौकिक टिप्पने में तिथियों की वृद्धि मानने में आती है और जैन टिप्पने का इस काल में अभाव है इस लिए लौकिक टिप्पने में जिस प्रकार से पर्व और अपर्व तिथियों की वृद्धि बतलाई गई हो उसी प्रकार से उन तिथियों को मानना उचित है। परंतु हमारे प्रियबन्धु तपगच्छ वाले वैसा न मानकर लौकिक टिप्पने में जब द्वितीया आदि पर्व तिथियों की वृद्धि होती है तो सिद्धांत विरुद्ध अपने मनः कल्पित असत्य जैन पंचांग में दूसरी द्वितीया [दूज] आदि अधूरी पर्व तिथियों को मानना बताते हैं और प्रथम की द्वितीया आदि संपूर्ण पर्व तिथियाँ को पाप कृत्यों से विराधने के लिये दूसरी एकम आदि अपर्व तिथियां कायम करके मानते हैं सो उन लोगों का यह मंतव्य लौकिक टिप्पने से तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है और जैन ज्योतिष मंतव्य से भी सर्वथा प्रतिकूल है। क्योंकि जैन ज्योतिष ग्रंथ के प्रमाण से दूसरी दूज आदि पर्व तिथियों का तथा दूसरी एकम आदि अपर्व तिथियों का होना ही असम्भव है इस लिए मनः कल्पित असत्य जैन पंचांग बना कर अधूरी दूसरी दूज अथवा दूसरी पंचमी आदि को पर्वतिथि करके मानना और प्रथम की दूज आदि संपूर्ण पर्व तिथियों को दूसरी एकम आदि अपर्व तिथियाँ करके मानना भी निरर्थक है देखिये जैन ज्योतिष के मंतव्यसे पर्व तथा अपर्व तिथियों की वृद्धि का अभाव है क्योंकि सब तिथियाँ चंद्रमंडल के कला की हानि और वृद्धि के निमित्त से मानी गई हैं और दिन रात्रि सूर्य के गमन योग्य मंडल विभाग के निमित्त से मानी गई हैं प्रमाण। श्रीसूर्य प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंड पयन्ना आदि टीकाओं में पाठ यथा।

तिथिस्वरूपज्ञापनार्थं यन्निमित्ता अहोरात्रा यन्निमित्ताश्च तिथयस्तदेवाऽत्र प्ररूपयति। मूल——

सूरस्स गमणमंडलविभागनिप्पाइया अहोरत्ता चंदस्स हाणिवुड्ढिकएण निप्पज्जए उ तिही। टीका सूर्यस्याऽऽदित्यस्य गमनयोग्यानि यानि मंडलानि

तेषां प्रत्येकं यो विभागो विशिष्टसमभागतया—भागोऽर्द्धमित्यर्थः तेन निष्पादिता अहोरात्राः किमुक्तं भवति एकैकस्मिन् मंडले यावता कालेन मंडलार्द्धं गमनेन पूरयति तावत्कालप्रमाणेनाऽहोरात्राः चंद्रस्य चंद्रमंडलस्य पुनः हानिवृद्धिकृतेन कालपरिमाणेन निष्पद्यते तिथिः अत्रायं भावार्थः चंद्रमंडलस्य कृष्णपक्षे यावता कालेनैकैकः षोड़शभागो द्वाषष्ठिभागचतुष्टयप्रमाणो हानिमुपपद्यते यावता च कालेन शुक्लपक्षे एकैकः षोडसभागः प्रागुक्तप्रमाणः परिवर्द्धते तावत्कालप्रमाणप्रमितास्तिथयः ॥

अर्थ–तिथियों का स्वरूप जानने के लिये जिस निमित्त से दिन रात्रि और जिस निमित्त से तिथिया मानने में आती हैं उसी निमित्त को यहां पर सूत्रकार महाराज निरूपण करते हैं कि सूर्य के [गमन] चलने योग्य जितने मंडल हैं उन प्रत्येक मंडलों का [विभाग] अर्द्धभाग जितने काल की गति द्वारा सूर्य पूर्ण करता है उतनेही काल के प्रमाण से एक दिन रात्रि [निष्पाइया] निष्पन्न, याने होती है तात्पर्य यह है कि एक दिन रात्रि पूर्ण हो इस लिये सूर्य के [गति] गमन मंडल के विभाग निमित्त से [अहोराव्रि] दिन रात्रि कही जाती है और चन्द्रमंडल की हानि तथा वृद्धि से करने मे आया जो काल [परिमाण] प्रमाण उसी कालके प्रमाण से एक तिथि निष्पन्न होती है याने पूर्ण होती है इस कथन का तात्पर्य यह है कि चन्द्रमंडल का कृष्णपक्ष में जितने काल करके एक एक सोलमा भाग अथवा चंद्रमंडल के ६२ भाग करना उसमें चार भाग प्रमाण वाला चन्द्रमंडल का जो सोलहवा हिस्सा है उसको श्यामवरण वाला ध्रुवराहु का विमान निकट होने से हानि को प्राप्त होता है याने चन्द्रमंडल का सोल

हवां भाग ढँक जाता है उतने काल करके एक तिथि संपूर्ण होती है और जितने काल करके शुक्ल पक्ष में उपर्युक्त परिणाम वाला चंद्रमंडल का एक एक सोलहवाँ भाग [हिस्सा] चंद्रमा के निकट जो उक्त ध्रुवराहु का विमान वह दूर होने से बढ़ता है याने प्रगट होताहै उतने काल की प्रमाण वाली एक एक तिथियां होतीहै इस लिये चंद्रमंडल की हानि तथा वृद्धि के निमित्त से तिथियाँ कही जाती हैं और इसी कारण से वह तिथियां कृष्णपक्ष में १५ तथा शुक्ल पक्षमें भी १५ होती हैं।

प्रमाण—आचार्य श्रीमलयगिरिजी महाराज विरचित श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंडपयन्ना आदि की टीकाओं में यथा।

कियत्संख्याकास्तास्तिथय इति तत्संख्यानिरूपणार्थमुपपत्तिमाह जावइए परिहायइ भागे वढ्ढइ य आणुपुव्वीए तावइया होंति तिही तेसिं नामाणि वोच्छामि इह यावता कालेनैकैकश्चंद्रमंडलस्य षोड़सो भागो द्वाषष्ठिभागसत्कचतुर्भागात्मकः परिहीयते वर्द्धते वा तावत् कालप्रमाणा एका तिथिरिति प्रागुपपादितं ततो यावंतो भागाऽत्र चंद्रमसो राहुविमानेन कृष्णपक्षे हापयति यावंतश्च भागाऽत्र आनुपूर्व्या क्रमेण शुक्लपक्षे परिवर्द्धयति तावत्प्रमाणाः कृष्णपक्षे शुक्लपक्षे च तिथयो भवंति तत्र पंचदशभागाऽत्र कृष्णपक्षे हापयति पंचदशभागाऽत्र शुक्लपक्षे परिवर्द्धते ततः पंचदश कृष्णपक्षे तिथयः पंचदश शुल्कपक्षे इति।

अर्थ—कितनी संख्यावाली वह तिथियां कही जाती हैं इस विषय में तिथियों की संख्या निरूपण करने के लिये सूत्रकार महाराज कहते हैं कि जितने काल करके चंद्रमंडलका सोलहवा हिस्सा [भाग] याने चंद्र-मंडल के ६२ भाग करने उनमें से चार भाग प्रमाण वाला हिस्सा क्षीण होता है अथवा बढ़ता है उतने काल प्रमाणवाली एक तिथि होती है ऐसा प्रथम बता चुके हैं इसलिये चन्द्रमा के जितने भाग राहुविमान कर के कृष्ण पक्ष में क्षीण होते है और जितने भाग अनुक्रम से शुक्ल पक्षमें बढ़ते है उतनी प्रमाणवाली कृष्ण पक्ष में तथा शुक्ल पक्ष में तिथिया होती हैं इस विषय में चन्द्रमा के १५ भाग कृष्ण पक्ष में क्षीण होते हैं और १५ भाग शुक्ल पक्ष में बढ़ते है इसलिये १५ तिथिया कृष्ण पक्षमे और १५ तिथिया शुक्ल पक्ष में होती हैं।

इस कथन से भी स्पष्ट विदित होता है कि चंद्रमंडल के उक्त भागों की हानि तथा वृद्धि के निमित्त से एक एक पक्ष मे एकम दूज, तीज आदि पन्द्रह पन्द्रह तिथियां मानी गई हैं और 'उपर्युक्त पाठमे सूर्यगमन के योग्य जो मडलविभाग [अर्द्धभाग] उसके निमित्त से दिनरात्रि मानने मे आती है परंतु दिनरात्रि का कालमान की अपेक्षा से तिथि संबंधी काल-मान कमती है। क्योंकि श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रादि की टीकाओं में पाठ है कि।

अहोरात्रस्य ६२ द्वाषष्टिभागीकृतस्य सत्का ये ६१ एकषष्टिभागास्तावत्प्रमाणा तिथिः इति।

अर्थ—एक दिनरात्रि संबंधी काल के ६२ भाग करने उनमे से ६१ भाग प्रमाण वाली एक तिथि होती है इसलिये एक दिनरात्रि का काल-मान की अपेक्षा से एक तिथि के कालमान में [अहोरात्रि] दिनरात्रि का ६२ वां एक भाग कमती पड़ता है इसी कारण जैनज्योतिष के हिसाब से तिथियों की वृद्धि नहीं हो सकती है किंतु उपर्युक्त अहोरात्रि का ६२ वां एक भाग की तिथि में हमेशा हानि होती है अतएव ६१ दिनरात्रि होने पर ६१ भागों की कुल हानि हुई इसलिये ६२ वीं तिथि की हानि

मानी जाती है, सो ऊपर में बता चूके है। पाठक गण ! तिथियों की वृद्धि तो तब हो सकती है कि जो सूर्य के निमित्त से मानने में आई हुई दिन रात्रि उसका जो कालमान वह यदि ६२ भाग से कमती होता और चंद्रमा के निमित्त से मानने में आई हुई तिथि उसका कालमान ६१ भाग से अधिक होता तो तिथियों की वृद्धि हो सकती परंतु वैसा कालमान न होने से जैनपंचांग के अनुसार तिथियों की वृद्धि नही होती किंतु हानि होती है और भी देखिये श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथों में पाठ है कि।

कम्मो निरंसयाए मासो ववहारगो लोए।

अर्थ सब कृत्यों संबंधी कर्म मास [निरंश] भागरहित होने से लोक में उसका व्यवहार सुख से किया जाता है वह कर्म मास भाग रहित संपूर्ण ३० दिनरात्रि का होता है, प्रमाण श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति टीकादि ग्रंथों में यथा।

कर्ममासः परिपूर्णत्रिंशदहोरात्रप्रमाणः

अर्थ—कर्म मास परिपूर्ण ३० दिनरात्रि का प्रमाणवाला मानाजाता है और ६१ भाग कालमानवाली एक तिथि ऐसी ३० तिथियों का एक चंद्रमास वो ६२ भाग कालमानकी दिन रात्रि के हिसाबसे बासठीये ३२ भाग युक्त २९ दिनरात्रि का प्रमाणवाला (चंद्रमास) होता है श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि टीकाओं में पाठ यथा।

चंद्रमास एकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य।

अर्थ—अहोरात्रि (एक दिनरात्रि) संबंधी बासठीये ३२ भाग युक्त २९ दिन रात्रिका एक चंद्रमास होता है और उपर्युक्त वाक्यों से ३० दिन रात्रि का एक कर्म मास मानने में आता है इसी कारण से कर्ममास के प्रमाण की अपेक्षा से तिथि कृत चंद्रमास का उक्त प्रमाण में ३० भाग कमती पड़ते है उन्हीं ३० भागों को शास्त्रकार महाराजों ने [अवमरात्र]

याने क्षयतिथि संबंधी भाग—बतलायें हैं प्रमाण श्रीज्योतिष्करंडपयन्ने की टीका में पाठ यथा।

एकस्मिन् कर्ममासपरिपूर्णे सति त्रिंशत् द्वाषष्टि-भागा अवमरात्रस्य संबंधिनः प्राप्यंते

अर्थ—३० दिनरात्रि का प्रमाणवाला एककर्म मास के परिपूर्ण होने पर अहोरात्रि के याने एक दिनरात्रि संबंधी बासठीये ३० भाग [अवम-रात्र] क्षय तिथि संबंधी प्राप्त होते हैं वास्ते इस हिसाब से भी एक एक दिनरात्रि में बासठवाँ एक एक भाग हमेशां क्षय तिथि संबंधी प्राप्त होता है तो इस तरह ६१ दिनरात्रि होने पर ६१ भाग क्षय तिथि संबंधी प्राप्त होते हैं अतएव ६१ वीं दिनरात्रि में ६२ वीं तिथि क्षय होती है इसी लिये शास्त्रकार महाराजों ने उपर्युक्त पाठसे ६२ वीं तिथि की हानि बतलाई है तो अब कहिये जैनज्योतिष के हिसाब से तिथियों की वृद्धि किस तरह होसकती है अर्थात् नहीं हो तिथियों की वृद्धि तो तब होती कि १६ कलात्मक चद्रमंडल के कलाओं की हानि और वृद्धि के निमित्त से तिथि संबंधी कालमान ६२ भाग प्रमाण वाला होता और सूर्य के गमन योग्य मंडल विभाग के निमित्त से दिनरात्रि सम्बंधी कालमान ६१ भाग प्रमाण वाला होता तो दिनरात्रि के कालमान की अपेक्षा से तिथि का कालमान एक भाग अधिक होता तो ६२ दिनरात्रि होने पर ६३ वीं तिथि की वृद्धि हो सकती परन्तु तिथि और दिनरात्रि का वैसा कालमान शास्त्रकारों ने नहीं लिखा है अतएव तिथियों की वृद्धि जैन ज्योतिष के गणित से नहीं होती है तथापि तपगच्छ वाले जैनज्योतिष सिद्धान्त विरुद्ध असत्य जैनपचांग बनाकर लौकिक टिप्पने से सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की पाहली संपूर्ण (दूज) द्वितीया आदि पर्व तिथियों को दूसरी एकम आदि अपर्व तिथिया वृद्धि द्वारा मानकर विराधते हैं इस से दोष के भागी होते हैं क्योंकि जैनपंचांग के अनुसार दूसरी एकम दूसरी दूज इत्यादि नहीं होती हैं और भी देखिये कि उपर्युक्त पाठ के अनु-

सार युगके पूर्वार्द्ध भाग में १५ पर्व अपर्व तिथियां क्षय होतीहैं और युग के उत्तरार्द्धभाग में भी १५ पर्व अपर्व तिथियां क्षय होती हैं तो पांच वर्ष का एक युग में कुल ३० तिथियों की हानि होती है और एक युगमें प्रथम चंद्रसंवत्सर दूसरा भी चंद्रसंवत्सर तीसरा अभिवर्द्धित संवत्सर चौथाचंद्रसंवत्सर पाँचवाँ अभिवर्द्धितसंवत्सर इसी प्रकार से ५ वर्ष एक युग के अंतर्गत क्रमसे होते रहते हैं और प्रतिवर्ष में उपर्युक्त रीति से ६ तिथियां क्षय होती हैं इसीलिये शास्त्रकारों ने चंद्रसंवत्सर ३५४ दिनरात्रि तथा एक दिनरात्रि संबंधी बासठीये १२ भाग प्रमाण वाला बताया है और इसी प्रकार अभिवर्द्धित संवत्सर ३८३ दिनरात्रि तथा एक दिनरात्रि संबंधी बासठीये ४४ भाग युक्त प्रमाणवाला बतलाया है।

इस उपर्युक्त कथन से भी विदित होता है कि जैनज्योतिष के गणित से एक वर्ष में केवल ६ तिथियों की हानि होती है किंतु वृद्धि नहीं तो जैनपंचांग ऐसा मिथ्या नाम रखकर लौकिक टिप्पने में बताई हुई सूर्योदय युक्त मान्य तिथियों को अदल बदल कर १४ अपर्व तिथियां की हानि और ६ अपर्व तिथियों कि वृद्धि इत्यादि तपगच्छ वाले बतलाते हैं सो जैनज्योतिष के तथा लौकिक टिप्पने के मंतव्य से विरुद्ध है क्योंकि लौकिक तथा जैनज्योतिष के मंतव्य से पर्व और अपर्व तिथियों की हानि होती है परंतुअपनी विचित्र कल्पना द्वारा केवल अपर्व तिथियों की हानि बतलाना और पर्व तिथियों की हानि नहीं बतलाना यह जैनआगम तथा लौकिक टिप्पने से प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इसी प्रकार लौकिक टिप्पने के अनुसार जिन पर्व तिथियों की और अपर्व तिथियों की वृद्धि होती है उन्हीं तिथियों की वृद्धि बतलानी चाहिये किंतु ऐसा न करके केवल अपर्व तिथियों की वृद्धि बतलाना और पर्व तिथियों की वृद्धि नहीं बतलाना यह लौकिकटिप्पने से प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र के लेख में शांतिविजयजी लिखते हैं कि खरतरगच्छ वाले जब चौदश टूट जाती है तो एक तिथि को कम कर देते हैं यह बात सच है तो जैनागम का पाठ देवें।

[उत्तर] चौदश टूटनें पर जैसे तपगच्छ वाले जैन तथा लौकिक ज्योतिष के मंतव्य से विरुद्ध तेरस तिथि को तोड़ कर एक तिथि कम कर देते हैं वैसे खरतरगच्छ वाले ज्योतिष विरुद्ध नहीं करते हैं, क्योंकि उपर्युक्त श्रीजैनागम सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करंडपयन्ना आदि टीका सबंधी पाठों से चौदश टूट जाती है तो एक तिथि अवश्य कम हो जाती है इससे शांतिविजयजी को संशय रखना उचित नहीं है क्योंकि उपर्युक्त जैनागम पाठों में शास्त्रकार महाराजों ने युग के पूर्वार्द्ध भाग में ६ पर्व ९ अपर्व इन १५ तिथियों की हानि बताई है और युग के उत्तरार्द्ध भाग में भी ६ पर्व ९ अपर्व इन पन्द्रह तिथियों की हानि बताई है इस लिये चौदश या पूनम या अमावस्य आदि तिथियां टूटने से जैनशास्त्र तथा लौकिकटिप्पने के विरुद्ध मिथ्या जंतपत्राग बनाकर विपरीत रीति से तिथियों को कायम रखना तथा तेरस तिथि में पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना शास्त्र विरुद्ध है और चौदश या पूनम या अमावास्या आदि तिथियों की वृद्धि होने पर सूर्योदय युक्त संपूर्ण प्रथम की चौदश आदि तिथियों को ज्योतिष के मंतव्यसे विरुद्ध केवल अपनी मिथ्या कल्पना से दूसरी तेरस आदि तिथियाँ कायम करके उस को पाप कृत्यों से विराधना यह बर्ताव अवश्य आगम प्रतिकूल है अस्तु, देखना चाहिये कि तपगच्छ वाले उपर्युक्त पर्व अपर्व क्षय तिथियों के संबंध में जैनागम पाठों का प्रमाण मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों का क्षय मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो चतुर्दशी आदि पर्व तिथिया कम होती हैं या नहीं ? यदि चतुर्दशी आदि पर्व तिथिया क्षय होने के कारण कम होती हैं तब तो खरतर गच्छ वालों को व्यर्थ उपालंभ देना अनुचित है। अथवा तपगच्छ वाले चतुर्दशी आदि पर्व तिथिया का क्षय नहीं मानते हैं तो श्रीजैनागम का स्पष्ट पाठ बतलावें कि चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों का क्षय नहीं होता है इस लिये चतुर्दशी आदि पर्व तिथियां कम नहीं होती तभी तपगच्छ वालों का शास्त्र विरुद्ध मंतव्य पर्व तिथिया क्षय नहीं हो यह कथन सत्य

समझा जायगा अन्यथा नहीं क्योंकि हम ने उपर्युक्त श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति टीका आदि जैनसिद्धांत पाठों से चतुर्दशी आदि पर्व अपर्व तिथियों का क्षय होना और उन तिथियों का कम होना गणित के हिसाब से दिखा दिया है।

[प्रश्न] तपगच्छ वाले कहते हैं कि जैनज्योतिष में पर्व तिथियां का क्षय नहीं होता सो किस सूत्रके आधार से।

[उत्तर] पाठकगण! जैनज्योतिष में पर्व तिथियों का क्षय होता है इस विषय में पुष्ट प्रमाण श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंड पयन्ना आदि टीकाओं का पाठ हम ऊपर लिख आये हैं, आशा है कि आप लोग अपनी दीर्घ दृष्टि से समालोचना करेंगे तो उपर्युक्त विषय में पुनः संशय करने का अवसर नहीं प्राप्त होगा। परंतु कितनेक आगमानभिज्ञ लोग उक्त पाठों से विरुद्ध केवल साहस करके बोल उठते हैं तथा मिथ्या जैनपंचांग नाम का पत्र में छपा कर प्रसिद्ध करते हैं कि जैन ज्योतिष में पर्व तिथियों का क्षय नहीं होता इस कथन से वे लोग मिथ्या प्रलापी जैन आगम विरुद्ध प्ररूपणा करते हैं।

[प्रश्न] अजी इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर तो-श्रीयुत शांतिविजय जी उक्त जैनपत्र में इस प्रकार से लिखते हैं कि " कौन कहता है कि जैनज्योतिष में पर्व तिथि का क्षय न हो जैनज्योतिष में पर्व तिथि का क्षय और वृद्धि दोनों होती हैं मगर व्रत नियम की अपेक्षा तीर्थंकर गणधरों का हुकम है अपर्व तिथि को तोड़ कर पर्व तिथि को कायम रखना उसकी साबिती के लिये [अहृजइ] इत्यादि पाठ ऊपर आ चुका है उस से ज्यादा सबूत क्या चाहते हो फर्ज करो कि कोई श्रावक चौदश के रोज उपवास करता है और चौदश टूट गई तो क्या वह श्रावक उपवास न करे? एक महीने की बारह पर्व तिथियों में से एक तिथि घटाने से व्रत नियम में कमी होना यह दोष आता है देखना चाहिये खरतर गच्छ-वाले इसका क्या जवाब देते हैं।

[उत्तर] जैनज्योतिष में पर्व और अपर्व तिथियों का क्षय होना तो उपर्युक्त श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि टीकाओं के पाठसे स्पष्ट विदित होता है

किंतु पर्व वा अपर्व तिथियों की वृद्धि नहीं होती है तथापि महाशय शांतिविजयजी ने लिखा है कि " जैनज्योतिष में पर्व तिथियों का क्षय और वृद्धि दोनों होते हैं " अतएव उनसे यह पूछा जाता है कि जैन ज्योतिष के प्रमाण से पर्व और अपर्व तिथियों की वृद्धि होती है तो उन तिथियों के मध्य में श्रीजैनागम का पाठ बतलाइये और जैनज्योतिष संबंधी गणितानुसार सिद्ध करके दिखलाइये कि अमुक २ पर्व तथा अपर्व तिथियों की इतने, इतने दिनों के अनंतर वृद्धि होती है अन्यथा आपका कथन असत्य समझा जायगा, हां यदि द्वितीया आदि पर्वतिथियाँ टूट गई हों तो एकम आदि अपर्व तिथियों में शील व्रतादि नियम पालन करना तो ठीक है परन्तु लौकिक टिप्पने से तथा जैनज्योतिष के विरुद्ध कल्पित जैनपचांग बना कर उसमें एकम आदि अपर्व तिथियों का क्षय बतलाते हैं और द्वितीया आदि पर्व तिथियों का क्षय नहीं बतलाते हैं इससे दोष के भागी होते हैं क्योंकि लौकिक टिप्पने में तथा श्री तीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महाराजों ने उपर्युक्त पाठों में अपर्व तथा पर्व तिथियों का क्षय होना स्पष्ट बतलाया है और अहजइ इत्यादि उपर्युक्त गाथा पाठ में अपर्व तिथियों तोड़ कर पर्व तिथियों को कायम रखना इस अर्थ का गंध भी नहीं है तो उक्त गाथा में मिथ्या अर्थ का आरोप करके लौकिक तथा जैनज्योतिष के विरुद्ध आपने मनः कल्पित जैनपचांग बनाना अनुचित है क्योंकि चौदश या पूनम वा अमावास्या आदि पर्व तिथियों की लौकिक टिप्पने के अनुसार वृद्धि होने से चौदश आदि पर्व तिथियों को तोड़कर दूसरी तेरस आदि अपर्व तिथियों को अपनी मिथ्या कल्पना से कायम रखकर उन सूर्योदय युक्त चौदश आदि पर्वतिथियों को पाप इत्यों से विराधना यह श्रीतीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महाराजों की आज्ञा से और अहजइ इत्यादि उक्त गाथा के पाठ से भी सर्वथा विरुद्ध है कोई श्रावक एक महीने की बारह पर्व तिथियों में उपवास करता है और शीलव्रत नियमादि पालता है उसमें चौदश की तपस्या यथाधि उपवास करता हो शीलादि नियम पालता हो और चौदश

घट गई तो चौदश तिथि की तपस्या संबंधी उपवास और शीलव्रतादि नियम तेरस तिथि में करना परंतु अमावास्या या पूर्णिमा संबंधि पाक्षिक उपवास तथा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य पूर्णिमा वा अमावास्या पर्व तिथि में करना उचित है क्योंकि त्रयोदशी अपर्व तिथि में पाक्षिक या चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि करने से आगम और आचरणा के विरुद्ध होने से दोषापत्ति आती है।

पाठक गण ! विचार करने का विषय है कि तपगच्छ वाले चौदश घट ने पर त्रयोदशी को पाक्षिक तथा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो किस आगम पाठ के आधार से करते है इस विषय में महाशय शांतिविजयजी जैनागम संबंधी स्पष्ट पाठ बतलावें तथा अमावस या पुनम की वृद्धि होने से पाक्षिक या चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य पहिली पूर्णिमा वा पहिली अमावास्या में करना तपगच्छ वाले मानते हैं और सूर्योदय युक्त चौदश पर्व तिथि को पाप कृत्यों से विराधते हैं सो किस आगमके आधार से पाठ बतलावें।

[प्रश्न] जैनतत्त्वादर्श के दशम परिच्छेद पृष्ठ ४६७ में लिखा है कि " तिथि जो प्रभात समय प्रत्याख्यान की वेला में हो सो जैनमत में माननी " इत्यादि सो जब चौदश घटे तो तेरस में सूर्योदय होता है उस तेरस को चौदश मानना और जब दो पर्व तिथि होवे तो प्रथम की पर्वतिथि को न मानने से मिथ्यात्व का दोष लगे या नहीं।

[उत्तर] चौदश घटने पर बलात्कार से तेरस को घटाना यह तो ज्योतिष के विरुद्ध है और उस तेरस के रोज चातुर्मासिक पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना श्रीजैनागम में कहीं नहीं लिखा है अतः वैसा करना असंगत है और चौदश; पूनम वा अमावास्या, आदि पर्व तिथियों की वृद्धि होनेपर सूर्योदय युक्त संपूर्ण पहली चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों को ज्योतिष के विरुद्ध दूसरी तेरस अपर्व तिथि मानकर पाप कृत्यों के द्वारा विराधने से उपर्युक्त पाठों के अनुसार अवश्य आज्ञाभंग मिथ्यात्व आदि दोष लगने का संभव है इस लिये पर्व तिथियों की विराधना अनुचित है।

[प्रश्न] अजी इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर महाशय श्रीशांतिविजयजी उक्त जैनपत्र में इस तरह लिखते हैं कि "मिथ्यात्व का दोष इस लिये नहीं लगे कि पर्व तिथि टूट जाय तो अपर्वतिथि तोडकर पर्वतिथि कायम रखना ऐसा सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति का पाठ है जिससे बारह तिथि के रोज व्रत नियम करने वालो को कमी न पड़े" यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] चतुर्दशी या पूर्णिमा वा अमावास्या आदि पर्वतिथियां टूट जाय तो तेरस आदि अपर्व तिथियों को तोडना ज्योतिष के विरुद्ध है और उस उदय त्रयोदशी तिथि में चातुर्मासिक तथा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना आगम और आचरणा से प्रतिकूल है तथा चतुर्दशी या पूर्णिमा या अमावास्या आदि पर्व तिथियों की वृद्धि होने पर सूर्योदय युक्त चतुर्दशी आदि प्रथम की तिथियों को तोड कर दूसरी त्रयोदशी आदि अपर्व तिथियों को मिथ्या कल्पना से कायम रखना और उनको पाप कृत्यों से विराधना यह मतव्य श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति की **अह जइ कह वि न लब्भंति सूरुग्गमेणं जुत्ताओ** इत्यादि उपर्युक्त गाथा के अभिप्राय से सर्वथा विरुद्ध है इस लिये शास्त्र विरुद्ध इस मिथ्या मार्ग को सेवने से मिथ्यात्व का दोष अवश्य लगता है और इस तरह मन कल्पित उजड़ पुजड़ तिथियों को कायम करके सूर्योदय युक्त पर्व तिथियों को पाप कृत्यों से विराधकर व्रत नियम करने वालों को उपर्युक्त शास्त्रकारमहाराजों की आज्ञा उल्लंघन करने का दोष लगता है।

[प्रश्न] शांतिविजयजी उक्त जैनपत्र में लिखते हैं कि अब आप लोगों को [खरतर गच्छ वालो को] बतलाना चाहिये कि जब चौदश टूटती है तो तेरस के रोज चौदश मानते हो या पूनम के रोज ? अगर पूनम के रोज मानते हो तो एक पर्वतिथि कमी होगई व्रत नियम करने वालों के व्रत नियम में भी कमी हो जायगी इसका खुलासा आप लोगों के तरफ से आना चाहिये ?

[उत्तर] चौदश टूटने पर पूर्णिमा वा अमावास्या में पाक्षिक प्रति-

क्रमणादि कृत्य करना उपर्युक्त आगम पाठों से संमत है परंतु तेरस में पाक्षिक और चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना संमत नहीं है और कोई श्रावक एक महीने की बारह पर्व तिथियां में शीलव्रतादि नियम पालता हो तो चौदश टूटने से तेरस में अपना नियम पाले अथवा पूनम और अमावस में उक्त व्रत नियम न पालता हो तो चौदश टूटने पर पूनम वा अमावस पर्व तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य और उक्त व्रत नियमों का पालन करे इस रीति से व्रत नियम वालों को तिथियां पालने में कम नहीं होती हैं और पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य भी आगम संमत होते हैं देखिये उपर्युक्त पाठमें श्रीहीरविजयसूरिजी ने भी पूर्णिमा तिथि टूटने पर तेरस चौदश एक्रम में पूर्णिमा संबंधी तपस्या करने की आज्ञा लिखी है परंतु तेरस में पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की आज्ञा नहीं लिखी है तो चौदश पूनम वा अमावस टूटने से तपगच्छ वाले आगम तथा आचरणा से विरुद्ध तेरस तिथि में पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य क्यों करते हैं ?

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र में शांतिविजयजी लिखते हैं कि " अब दो पर्वतिथि हो जाय तो पहली को न मान कर अगली को पर्व तिथि मानना उमास्वाती महाराज के फरमान को मंजूर रख कर यह बात मानी गई है फिर मिथ्यात्व का दोष कैसे लगेगा इस मजमून को सोचिये " यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] पर्वतिथि की वृद्धि होने से दूसरी अल्प पर्वतिथि को मानना और सूर्योदय युक्त संपूर्ण जो प्रथम पर्व तिथि है उसको पाप कृत्यों से विराधना यह तपगच्छवालों का मंतव्य उपर्युक्त श्रीहरिभद्र सूरिजी आदि महाराजों के तिहिवुड्ढिये पुव्वागहिया इत्यादि वचनों से सर्वथा प्रतिकूल है और श्रीउमास्वाती महाराज के नाम से

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।

इस पूर्वार्द्ध श्लोक को बताकर दूसरी पर्वतिथि प.१ मानना जो बताते हैं उसका तात्पर्य तो

श्रीमहावीरनिर्वाणे भव्यैर्लोकानुगैरिह ॥ १ ॥

इस उत्तरार्द्ध श्लोक से स्पष्ट विदित होता है कि श्रीमहावीरप्रभु के निर्वाण कल्याणक सबंधी कार्त्तिक अमावास्या तिथि क्षय हो तो पूर्व तिथि चतुर्दशी और वृद्धि हो तो पूर्व तिथि पहिली अमावास्या तथा उत्तर तिथि दूसरी अमावास्या लोकानुवर्त्ति भव्यजीवों को करना याने निर्वाण कल्याणक संबंधी तपस्या आदि धर्म कृत्य करना चाहिये केवल इस कथन को ही उक्त श्लोक प्रतिपादन करता है तथापि तपगच्छ वाले उक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध वाक्य संबंधी आशय को त्यागकर केवल पूर्वार्द्ध वाक्य को पकड़कर कोई भी तिथि का क्षय हो तो पहिली तिथि और कोई भी तिथि की वृद्धि हो तो दूसरी तिथि मानते हैं और सूर्योदययुक्त संपूर्ण प्रथम की तिथि को पापकृत्यों से विराधते हैं सो यह मतव्य उपर्युक्त संपूर्ण श्लोक के आशयसे संमत नहीं है इससे उनलोगों को मिथ्यात्वका दोष क्यों नहीं लगेगा? क्योंकि उपर्युक्त शास्त्र पाठों में सूर्योदययुक्त पर्व तिथिया को मानना लिखा है उनको न माननेसे उक्त दोष लगने की अवश्य संभावना है अथवा दूसरा उत्तर यह है कि तपगच्छ वाले उक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध भाग से दूसरी अल्प पर्वतिथि को मानतेहैं और पहली संपूर्ण पर्वतिथि को नहीं मानतेहैं तो पूर्णिमा या अमावास्या पर्वतिथि की वृद्धि होनेसे पहिली पूर्णिमा में वा पहिली अमावास्या में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके उस पहिली पूर्णिमा पर्व तिथि को या पहिली अमावास्या पर्वतिथि को क्यों मानते हैं? और सूर्योदययुक्त चतुर्दशी पर्वतिथि ने तपगच्छवालों का क्या बिगाड़ किया सो पूर्णिमा वा अमावास्याकी वृद्धि होने से सूर्योदययुक्त उस चतुर्दशी पर्वतिथि को अपनी मिथ्या कल्पना से दूसरी तेरस मानकर पापकृत्यों से विराधते हैं इसमें क्या दोष नहीं है?

[प्रश्न] शांतिविजयजी उक्त जैनपत्र के लेख में लिखते हैं कि "आपलोग [खरतर गच्छ वाले] जब दो पर्वतिथिया होती हैं जैसे कि दो पंचमी हो तो पहली को मंजूर रखते हैं और दूसरी को मंजूर नहीं रखते

यानी पंचमी का एकही उपवास करते है दो नहीं करते इस बात की सा-
बिती के लिये आप लोगों के पास क्या पुरावा है पेश कीजिये ?

[उत्तर] खरतर गच्छ वाले पंचमी आदि पर्व तिथियों की वृद्धि हो-
नेपर उपर्युक्त श्रीहरिभद्रसूरिजी आदि महाराजोंके वचनानुसार प्रथमको
सूर्योदय युक्त संपूर्ण पंचमी पर्वतिथि को उपवास आदि धर्म कृत्यों से
आराधतेहैं किन्तु तपगच्छ वालों की तरह पाप कृत्यों से विराधते नहीं
और दूसरी अल्प पंचमी को भी हरेसागों का त्याग आदि धर्म कृत्योंके द्वारा
मानते हैं परन्तु तपगच्छ वाले तो अधूरी दूसरी पंचमी का एकही उपवास
करते हैं और पहिली संपूर्ण पंचमी के दिन उपवास आदि धर्मकृत्य न करके
हरितकाय का छेदन भेदन आदि पापों का अनुष्ठान करते हैं इसबात की
साबिती के लिये तपगच्छ वालों के पास जो पुष्टपुरावा हो उसको पेश
करना मुनासिबहै नहीं तो सूर्योदय युक्त संपूर्ण पर्वतिथियों को नहीं मान-
ने से तथा पाप कृत्यों से विराधने से उनलोगों को आज्ञाभंगआदि दोष
अवश्य ही लगेंगे प्रमाण ऊपर में श्राद्धविधि आदि ग्रन्थों का बताचुका हूँ

[प्रश्न] उक्त ...

शामको प्रतिक्रमण के समय में तथा रात्रि पर्यंत यानि ६० घड़ी की सपूर्ण प्रथम पर्व तिथि को न मानकर सिद्धांत विरुद्ध मिथ्या कदाग्रह द्वारा पाप कृत्यों से तपगच्छ वाले विराधतेहैं तो इस मनव्य को कौन बुद्धिमान् पक्षपात रहित न्याय युक्त एवं सिद्धांत वचनो को आराधाकारी ठीक मान सकता है? और तपगच्छ वाले सूर्योदय के समय में जो तिथि हो उसी को मानना बताते हैं तो जब पूर्णिमा वा अमावास्या पर्वतिथि क्षय होती है तब पहले दिन सूर्योदय के समय में चतुर्दशी पर्व तिथि अवश्य होती है उसको तपगच्छ वाले चतुर्दशी पर्वतिथि नहीं मानकर अपनी असत्य कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि करके क्यों मानते हैं ? और सूर्योदय में तेरस तिथि है उसको चतुर्दशी तिथि मानकर आगम तथा आचरणा के विरुद्ध उस तेरस तिथि में पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य क्यों करते हैं ? और भी देखिये जब लौकिक पंचाग में दो पंचमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, दो चतुर्दशी, होती हैं तो सूर्योदय युक्त सपूर्ण ६० घड़ी की प्रथम द्वितीया तथा सूर्योदय युक्त प्रथम पचमी को एवं सूर्योदय युक्त प्रथम अष्टमी को प्रथम एकादशी को प्रथम चतुर्दशी को पाप कृत्यों से क्यों विराधते हैं ? धर्म कृत्यों के द्वारा आराधना क्यों नहीं मानते हैं ? और भी देखिये पूर्णिमा वा अमावास्या इन पर्व तिथियों की वृद्धि होनेपर सूर्योदय युक्त सपूर्ण प्रथम पूर्णिमा को वा प्रथम अमावास्या को बलात्कार से चतुर्दशी पर्वतिथि मानकर उसमें चातुर्मासिक वा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले करते हैं और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी पर्व तिथि को अपनी मिथ्या कल्पना से दूसरी त्रयोदशी तिथि मानकर उस महा पर्वतिथि को पाप कृत्या से क्यो विराधते हैं? इसी तरह सूर्योदय युक्त अधिक मासकी ३० तिथियों को वा उस मासकी सूर्योदय युक्त १२ पर्वतिथियों को गिनती में भी नहीं मानते हैं तो तपगच्छीय लोगों का यह शास्त्रप्रतिकूल स्वेच्छिक आचरण के विषय में कहां तक लिखें ? हम विनमाव पूर्वक उन लोगों से यही कहते हैं कि आप लोग उपर्युक्त आगम पाठों से विरुद्ध अपने मतव्य का विचार न करके केवल ढूंढिये लोगो को उपालभ देते हैं यह किसके घरका न्याय है ? अथवा प्रात काल सूर्योदय के समय में प्र

यानी पंचमी का एकही उपवास करते हैं दो नहीं करते इस बात की सा-
विती के लिये आप लोगों के पास क्या पुरावा है पेश कीजिये ?

[उत्तर] खरतर गच्छ वाले पंचमी आदि पर्व तिथियों की वृद्धि हो-
नेपर उपर्युक्त श्रीहरिभद्रसूरिजी आदि महाराजोंके वचनानुसार प्रथमकी
सूर्योदय युक्त संपूर्ण पंचमी पर्वतिथि को उपवास आदि धर्म कृत्यों से
आराधतेहैं किन्तु तपगच्छ वालों की तरह पाप कृत्यों से विराधते नहीं
और दूसरी अल्प पंचमी को भी हरेसागों का त्याग आदि धर्म कृत्योंके द्वारा
मानते हैं परन्तु तपगच्छ वाले तो अधूरी दूसरी पंचमी का एकही उपवास
करते हैं और पहिली संपूर्ण पंचमी के दिन उपवास आदि धर्मकृत्य न करके
हरितकाय का छेदन भेदन आदि पापों का अनुष्ठान करते हैं इसबात की
साबिती के लिये तपगच्छ वालों के पास जो पुष्टपुरावा हो उसको पेश
करना मुनाशिबहै नहीं तो सूर्योदय युक्त संपूर्ण पर्वतिथियों को नहीं मान-
ने से तथा पाप कृत्यों से विराधने से उनलोगों को आज्ञाभंगआदि दोष
अवश्य ही लगेंगे प्रमाण ऊपर में श्राद्धविधि आदि ग्रन्थों का बताचुका हूँ

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र में शांतिविजयजी लिखते हैं कि " जैनतत्वा-
दर्श में महाराज श्रीआत्मारामजी, आनंदविजयजी साहेब ने जो लिखा
है, सवेरे प्रत्याख्यान के वख्त जो तिथि हो वो मानना यह बात इस इ-
रादे से लिखी है कि मूर्त्ति निषेधक कितनेक पुरुष शामको प्रतिक्रमण के
वख्त जो तिथि होती हैं उसको पर्वतिथि मान लेते हैं उसको न मानकर
सूर्योदय के वख्त जो हो वो मानना जब दो पर्व तिथि होती है तो दूसरे
दिनके सूर्योदय में भी वो तिथि रहती है इस लिये प्रत्याख्यान के वख्त
वो आई जायगी " शांतिविजयजी का यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि मूर्त्ती निषेधक पुरुषों को तो
आगम संमत सूर्योदय युक्त जो पर्व तिथियां हों वो मानना बतलाते हैं
और आप जानते नहीं हैं देखिये जब दो पर्व तिथियां होती है तो दूसरे दिन
के सूर्योदय में वह दूसरी तिथि किंचित् समय रहती है उसी को ही मानने
के लिये अत्यंत आग्रह करना और पहले दिन सूर्योदय युक्त दिनभर और

शामको प्रतिक्रमण के समय मे तथा रात्रि पर्यन्त याने ६० घड़ी की सपूर्ण प्रथम पर्व तिथि को न मानकर सिद्धात विरुद्ध मिथ्या कदाग्रह द्वारा पाप कृत्यों से तपगच्छ वाले विराधते हैं तो इन मनव्य को कौन बुद्धिमान् पक्षपात रहित न्याय युक्त एव सिद्धात वचनो को अवाधाकारी ठीक मान सकता है? और तपगच्छ वाले सूर्योदय के समय मे जो तिथि हो उसी को मानना बताते हैं तो जब पूर्णिमा वा अमावास्या पर्वतिथि क्षय होती है तब पहले दिन सूर्योदय के समय मे चतुर्दशी पर्व तिथि अवश्य होती है उसको तपगच्छ वाले चतुर्दशी पर्वतिथि नहीं मानकर अपनी असत्य कल्पना से पूर्णिमा वा अमावास्या तिथि करके क्यों मानते हैं ? और सूर्योदय मे तेरस तिथि है उसको चतुर्दशी तिथि मानकर आगम तथा आचरणा के विरुद्ध उस तेरस तिथि मे पाक्षिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य क्यों करते हैं ? और भी देखिये जब लौकिक पचाग में दो पचमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, दो चतुर्दशी, होती हैं तो सूर्योदय युक्त सपूर्ण ६० घड़ी की प्रथम द्वितीया तथा सूर्योदय युक्त प्रथम पचमी को एव सूर्योदय युक्त प्रथम अष्टमी को प्रथम एकादशी को प्रथम चतुर्दशी को पाप कृत्यो से क्यों विराधते हैं ? धर्म कृत्यो के द्वारा आराधना क्यों नहीं मानते हैं ? और भी देखिये पूर्णिमा वा अमावास्या इन पर्व तिथियों की वृद्धि होनेपर सूर्योदय युक्त सपूर्ण प्रथम पूर्णिमा को वा प्रथम अमावास्या को बलात्कार से चतुर्दशी पर्वतिथि मानकर उनमें चातुर्मासिक वा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले करते हैं और सूर्योदय युक्त चतुर्दशी पर्व तिथि को अपनी मिथ्या कल्पना से दूसरी त्रयोदशी तिथि मानकर उस महा पर्वतिथि को पाप कृत्यो से क्यो विराधते हैं? इसी तरह सूर्योदय युक्त अधिक मासकी ३० तिथियों को वा उस मासकी सूर्योदय युक्त १२ पर्वतिथियों को गिनती में भी नहीं मानते हैं तो तपगच्छीय लोगों का यह शास्त्रप्रतिकूल स्वेच्छिक आचरण के विषय में कहा तक लिखें ? हम मित्रभाव पूर्वक उन लोगो से यही कहते हैं कि आप लोग उपर्युक्त आगम पाठो से विरुद्ध अपने मतका का विचार न करके केवल ढूढिये लोगो को उपालभ देते हैं यह किसके घरका न्याय है ? अथवा प्रात काल सूर्योदय के समय मे प्र

व्याख्यान के वखत जो तिथि हो वो मानना इस प्रकार शास्त्र संमत श्री आत्मारामजी का कथन उपर्युक्त विपरीत आचरण के द्वारा तपगच्छ वाले अमान्य क्यों करते हैं ?

[प्रश्न] सूर्योदय युक्त संपूर्ण पहिली पर्वतिथि को पाप कृत्यों से विराधने के लिये शांतिविजयजी ने श्रीउमास्वातीजी महाराज के नाम से

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा

इस पूर्वार्द्ध श्लोक का अधूरापाठ जैनपत्र के उक्त लेख में लिखा है परंतु जैनतत्वादर्श संबंधी बारवां परिच्छेद के पृष्ठ ४५१ में उपर्युक्त श्रीउमास्वातीजी महाराज को श्रीस्थूलभद्रजी के प्रशिष्यों में लिखे है और उस समय जैनपंचांग विद्यमान था उसमें तिथियों की वृद्धि द्वारा दुसरी एकम दुसरी दुज इत्यादि तिथियां नहीं होती थी इसी से साबित होता है कि यह श्लोक का प्रमाण कल्पित है याने उक्त श्लोक पाठ श्री-उमास्वातीजी का रचा हुआ नहीं है किंतु किसी अन्य का बनाया हुआ मालूम होता है सो यह बात ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] आपका यह उक्त कथन ठीक मिलता है क्योंकि श्राद्धविधि ग्रंथ में तपगच्छ नायक श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने अपनी रचना द्वारा श्रीउ-मास्वातीजी के नाम से लिखा है कि उमास्वातिवचः प्रघोषश्चैवं श्रूयते क्षये पूर्वा इत्यादि उक्त श्लोक इससे तो यही सिद्ध होता है कि श्रीरत्न-शेखरसूरिजी ने श्रीउमास्वातीजी के रचित ग्रंथों में उक्त श्लोक को नहीं देखा और न अमुक ग्रंथ में श्रीउमास्वातीजी ने लिखा सुना इसी लिये श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने श्रीउमास्वातीजी महाराज रचित ग्रंथ का नाम न लि-खकर अपनी रचना द्वारा उनके नाम से [वचः प्रघोष] लोकोक्ति इस प्रकार सुनने में आती है कि क्षये पूर्वा इत्यादि उक्त श्लोक लिख दिख-लाया है इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रघोष श्रीउमास्वातिजी के नाम से रचना द्वारा कल्पना करके मान लिया है वास्तव में श्रीउमास्वाती जी के रचित ग्रंथों में लिखा हुआ नहीं है। और भी देखिये कि शांतिवि-जयजी आदि कितनेक तपगच्छीय लोग सूर्योदय युक्त संपूर्ण पहिली पर्व तिथि को पाप कृत्यों से विराधना इस मंतव्य को स्थापन करने के लिये

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा

केवल इतनाही श्लोक के पूर्वार्द्ध भाग को बताकर द्वितीया पंचमी अष्टमी आदि सूर्योदय युक्त सपूर्ण पहिली पर्व तिथियों को पाप कृत्यों से विराधना धर्म कृत्यों से मानना नहीं इस आशय से मुग्ध जीवों को भरमाते हैं परंतु इस श्लोक का

श्रीमहावीरनिर्वाणे भव्यैर्लोकानुगैरिह ॥ १ ॥

इस उत्तरार्द्ध भाग को अवलोकन करने से संपूर्ण श्लोक यही अर्थ विदित करता है कि श्रीमहावीर निर्वाण कल्याणक संबंधी कार्तिक अमावास्या तिथि क्षय हो तो लोकानुवर्त्ति भव्यजीवों को पूर्व तिथि चतुर्दशी को तपस्यादि करना और वृद्धि हो तो पूर्व तिथि पहिली अमावास्या को तथा उत्तर तिथि दूसरी अमावास्या को करना परंतु तपगच्छ वाले सूर्योदय युक्त चतुर्दशी आदि पहिली संपूर्ण पर्व तिथि को पाप कृत्यों से विराधने के दुराग्रह में पड़े हुए उक्त श्लोक संबंधी उत्तरार्द्ध भाग को नहीं बतलाकर अपना असत्य मतव्य से पापकृत्य और पर्वतिथियों की विराधना करवाते हैं और कितनेक तपगच्छ वाले उक्त श्लोक के शुद्ध उत्तरार्द्ध भाग में अर्थ का गोलमाल करने के लिये व्याकरण से अशुद्ध याने विभक्ति तथा शब्दों को बदलकर उपर्युक्त शुद्ध उत्तरार्द्ध श्लोक पाठ के स्थान में

श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं कार्यं लोकानुगैरिह

इस अशुद्ध उत्तरार्द्ध पाठको बतलाते हैं वास्ते उन लोगों की महाअज्ञानता मालुम होती है क्योंकि प्रथम तो इस उत्तरार्द्ध श्लोक पाठ का अर्थ उपर्युक्त पूर्वार्द्ध श्लोक पाठ के साथ संगत नहीं है देखिये उक्त पूर्वार्द्ध श्लोक पाठका अर्थ यह होता है कि क्षय हो तो पूर्व तिथि करना और वृद्धि हो तो पूर्व तिथि तथा उत्तर तिथि करना और इस उत्तरार्द्ध श्लोक पाठ का अर्थ यह होता है कि श्रीवीरज्ञान तथा निर्वाण यह दोनों कल्याणक लोकानुवर्त्तियों को यहां करना चाहिये।

पाठकगण ! आपही लोग परामर्श कीजिये कि संपूर्ण श्लोक का याने उक्त श्लोक का पूर्वार्द्ध भाग और उत्तरार्द्ध भाग को मिलाने से संपूर्ण श्लोक का अर्थ पूर्वार्द्ध भाग से उत्तरार्द्ध भाग के साथ परस्पर संबंध रहित प्रतीत होता है या नहीं ? यदि संबंध रहित प्रतीत होता है तो पूर्वापर भाव विरुद्ध उक्त श्लोक के कर्त्ता वाचकवर श्रीउमास्वातीजी नहीं हैं क्योंकि उक्त महाराज की रचना सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्षमार्गाणि इत्यादि तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों में संबंध युक्त और व्याकरण से शुद्ध अपूर्व रचना देखने में आती है अस्तु और भी देखिये उक्त पाठ में श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं कार्यं इसका अर्थ यह है कि श्रीवीर प्रभु का ज्ञान कल्याणक और [निर्वाण] मोक्ष कल्याणक यह दोनों एक वचन से करना बताया है सो व्याकरण के नियम से अशुद्ध है क्योंकि ज्ञान और निर्वाण इन दो पदार्थों का निरूपण जब किया गया तो ज्ञाननिर्वाणे कार्ये इस तरह द्विवचन विभक्ति लाना आवश्यक है परंतु श्रीमहावीर निर्वाण कल्याणक कार्तिक चौदश के बाद अमावास्या की रात्रि को हुआ है इस लिये कार्तिक अमावास्या का क्षय हो तो पूर्व तिथि चतुर्दशी और वृद्धि हो तो पूर्व तिथि पहिली अमावास्या को तथा उत्तर तिथि दूसरी अमावास्या को निर्वाण कल्याणक संबंधी जप, तप आदि धर्म कृत्य करना सो खरतरगच्छ वाले चौदश को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य और पहिली अमावास्या को कल्याणक तपस्यादि करते हैं तथा तपगच्छ वाले चौदश को पाप कृत्यों से विराधकर पहिली अमावास्या को पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य और दूसरी अमावास्या को कल्याणक तपस्यादि करते हैं परंतु उस रोज श्रीवीरज्ञान कल्याणक संबंधी तपस्या आदि नहीं की जाती है इस लिये उक्त पाठ में ज्ञान शब्द अप्रसंग के कारण निरर्थक पड़ता है अथवा तीर्थंकर श्रीमहावीर प्रभु का निर्वाण कार्त्तिक अमावास्या को हुआ है इस लिये उस रोज जैसे अन्य लोग भी दीवाली करते है वैसा निर्वाण कल्याणक लोकानुवर्त्ती भव्यजीव करते हैं परंतु ज्ञान कल्याणक अन्य लोग नहीं करते हैं और न लोकानुवर्त्ती किया जाता है तो ज्ञान कल्याणक लोकानुवर्त्ती करने के लिये जो उक्त पाठ में लिखा है सो प्रत्यक्ष भूल है अतएव

उक्त पाठ मे ज्ञान शब्द बिना प्रसग का होने से व्यर्थ पड़ता है वास्ते श्रीवीरज्ञाननिर्वाणो इस वाक्य के स्थान मे श्रीमहावीरनिर्वाणे इस तरह सप्तमी विभक्ति का एक वचन युक्त वाक्य होना चाहिये और श्रीमहावीर निर्वाण कल्याणक मे जब उक्त रीति से तिथिः कार्या याने तिथि करने योग्य है तो भव्यैः इस कर्त्तापद की उत्तरार्द्ध श्लोक पाठ मे आवश्यकता है और कार्यं वा कार्ये इस कर्मपद की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध पाठ में तिथिः कार्या यह प्रथमात विभक्ति वाला कर्म पद मौजूद है अथवा उक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध पाठ में लोकानुगैः यह तृतीयांत विभक्ति युक्त कर्त्तापद का विशेषण पद विद्यमान है और पूर्वार्द्ध पाठ में तिथिः कार्या यह प्रथमांत विभक्ति युक्त कर्म पदभी मौजूद है तो व्याकरण के नियम से तृतीयान विभक्ति युक्त भव्यैः यह कर्त्तापद उक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध पाठमे अवश्य होना चाहिये कार्यं अथवा कार्ये इस पदकी आवश्यकता नहीं है इस तरह पूर्वार्द्ध श्लोक के साथ संबंधयुक्त उत्तरार्द्ध श्लोक का पाठ—

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा
श्रीमहावीरनिर्वाणे भव्यैः लोकानुगैरिह १

ऐसा होना चाहिये परतु उपर्युक्त अशुद्धियों से यही ज्ञात होता है कि इस प्रकार पूर्वापरभाव वैषम्य और अशुद्ध श्लोक के रचयिता पूर्वधर युगप्रधान विद्वद्वर्य वाचकवर श्रीउमास्वातिजी महाराज नहीं हैं किंतु यह श्लोक किसी अल्पबोध व्यक्ति का रचा हुआ सिद्ध होता है और भी देखिये श्रीउमास्वातिजी महाराज श्रीस्थूलभद्रजी महाराज के प्रशिष्यों मे हुए है उस समय में जैनपचाग मौजूद था उस पचांग में जैन ज्योतिष संबंधी गणित के अनुसार—

द्वापष्टितमा तिथिर्लोके पतितेति व्यवहृयते

६२ वीं तिथि लोक में पतित कहलाती है याने क्षय होती है तो प्रकयास्या विधि क्षय होने पर उस तिथि के कृत्य चतुर्दशी मे हो सकते

हैं किंतु तिथियों की वृद्धि जैन ज्योतिष के हिसाब से नहीं होती है तो श्रीउमास्वातिजी महाराज श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैनज्योतिष आगम से असंमत वृद्धौ कार्या तथोत्तरा इस वाक्य को लिखकर श्रीमहावीर निर्वाण में कार्त्तिकी अमावास्या तिथि की वृद्धि होने पर दूसरी अमावास्या तिथिको मानना और संपूर्ण ६०घड़ीकी पहिली अमावास्या को नहीं मानना ऐसा नहीं बता सकते हैं क्योंकि श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैन ज्योतिष में-

अहोरात्रस्य ६२ द्वाषष्ठिभागिकृतस्य सत्का ये ६१ एकषष्ठिभागास्तावत् प्रमाणा तिथिः इत्यादि

उपर्युक्त पाठके अनुसार दिन रात्रिके ६२ बासठीये ६१ भाग प्रमाण वाली तिथि प्रमाण माननी लिखी है अतएव इस कथन से यही निश्चय होता है कि उपर्युक्त अशुद्ध श्लोक श्रीउमास्वातिजी महाराज का विरचित नहीं है किन्तु तपगच्छ के श्रीरत्नशेखरसूरिजी का ही रचा हुआ है और [प्रघोष] लोकोक्ति के द्वारा श्रीउमास्वातीजी के नाम से कल्पना करके मानलिया है और द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी इन संपूर्ण पहिली तिथियों को पापकृत्योंसे तपगच्छ वाले विराधते है।

[प्रश्न] अजी! आपका यह कथन यथार्थ है परंतु उक्त जैन पत्रमें उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर श्रीयुत शांतिविजयजी लिखते हैं कि "आप के फरमाने से वाचक उमास्वातिजी का फ़रमान कल्पित नहीं होसकता जैन ज्योतिष में भी तिथि की घटती बढ़ती होती है यह आपने किस आधार से लिख दिया कि जैनपंचांग में तिथि बढ़ती नहीं तिथि का घटना बढ़ना ग्रहों की स्थिति के आधार से होता है श्रीमान् उमास्वातिजी वाचक का फरमाना जैनागम के प्रमाण से संमत है किसी हालत में कल्पित नहीं होसकता क्योंकि कल्पित कहने के लिये कोई पुख्ता सबूत होना चाहिये" शांतिविजयजी का यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] प्रिय पाठक वृंद! यह कथन ठीक नहीं है देखिये उपर्युक्त श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि पाठों के अनुसार कृष्ण पक्ष में चंद्रमा की १५ कलाओं की हानि और शुक्ल पक्षमें १५ कलाओं की वृद्धि के निमित्त से एक

एक पक्षमें १४-१५ तिथियां मानीगई हैं उसमें भी ४ पक्ष गये बाद पांचवें पक्ष में ६२ वीं तिथिकी हानि लिखी है एव एक युग के ५ वर्षों में ३० तिथिया की हानि लिखी है वृद्धि एक भी तिथि की नहीं लिखी है, हां कर्म मास वा चद्र मास की अपेक्षा से सूर्यमास के साथ विचार करने पर अधिक दिनरात्रि और अधिक मास प्राप्त होते हे क्योंके श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति टीकादि में लिखा है कि ३० दिनरात्रि का एक कर्म [व्यवहार] मास होता हे और ३०॥ साढे तीस दिन रात्रि का एक सूर्य मास होता है तो दो सूर्यमास समाप्त होने पर दो कर्म मासो की अपेक्षासे सूर्य मास संबधी एक दिनरात्रि अधिक होती है इसी तरह एक सूर्य वर्ष में ६ दिन रात्रि और पाच वर्ष में ३० दिन रात्रि अधिक होती हैं और अहो रात्रि के बासठीये ३२ भाग युक्त २६ दिन रात्रि याने २६॥ साढे ओगनतीस दिन रात्रि का एक चद्रमास होताहै और सूर्य मास ३०॥ साढे तीस दिनरात्रि का होता है तो एक सूर्य मास समाप्त होने पर चद्र मास की अपेक्षा से सूर्य मास सबंधी एक दिन रात्रि अधिक होती है इसी तरह ३० सूर्य मास बीतने पर युग के मध्य भाग में एकतीसवा दूसरापोष एक अधिक मास होता है इसी तरह फिर दूसरे ३० सूर्य मास बीतने पर युग के अत भाग में बासठवा दूसरा आषाढ यह दूसरा अधिक मास होता है इस लिये उपर्युक्त अधिक दिन रात्रियों को वा अधिक मास को गिनती में मानकर श्रीतीर्थंकर गणधर आचार्य आदि महाराजों ने श्रीज्योतिष्करंडपयन्ने में कहा है कि-

अठारससठि सया, तिहीण नियमया जुगंमि नायव्वा।
तथ्थे च अहो रत्ता, तीसा अठ्ठारस सयाओ ॥५५॥

इस गाथा पाठसे एक युग मे सूर्य निमित्त से १८३० दिन रात्रि और एक युग सबंधी ३० क्षय तिथियो की गिनती मे मानकर चंद्र निमित्त से १८६० तिथियों बनलाई हैं परतु तपगच्छ वाले अधिक मास को वा अधिक दिन रात्रि को या अधिक मास की तिथियों को गिनती में नहीं मानते हैं इस लिये उन लोगों को श्रीतीर्थंकर गणधर प्रणीत आगम से

प्रतिकूल वा विरुद्ध कहते हैं अस्तु जैन ज्योतिष संबंधी श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथों में तिथियां की हानि होना उपर्युक्त पाठों के अनुसार लिखा है किंतु तिथियां की वृद्धि दूसरी पक्कम दूसरी दूज इत्यादि होने के लिये कहीं भी नहीं लिखा तथापि श्रीयुत शांतिविजयजी बड़े जोर शोर के साथ उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में लिखते हैं कि " जैन ज्योतिष में भी ति- थिकी वृद्धि होती है यह आप ने किस आधार से लिख दिया कि जैन पंचांग में तिथि वढ़ती नहीं " इत्यादि तो उक्त महाशय श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंडपयन्ना आदि जैन ज्योतिष संबंधी आगम ग्रंथों का पाठ वतला के सिद्ध करें कि जैन ज्योतिष में चंद्र मंडल की हानि और वृद्धि के निमित्त से मानी गई तिथि संबंधी अमुक भाग दिन रात्रि के कालमान की अपेक्षासे हमेशाँ वढ़ता है इस लिये इतने इतने दिन रात्रि गये वाद इस गणितसे अमुक अमुक अपर्व तिथियां की वृद्धि होने से दो अपर्व तिथियाँ दूसरी पक्कम इत्यादि और दो पर्व तिथियाँ दूसरी दूज इत्यादि होती हैं परंतु सूर्योदय युक्त पहली संपूर्ण तिथिको न मानना किंतु पाप कृत्यों से विराधना और दूसरी अल्पतिथि को मानना तो शांति विजयजी का लेख जैन ज्योतिष में भी तिथि की वृद्धि होती है यह कथन सत्य समझा जायगा अन्यथा नहीं क्योंकि उक्त श्लोक के अनुसार श्रीमहावीर निर्वाण कल्याणक सम्बन्धी कार्तिकी अमावास्या अथवा किसी अन्यमासों की भी अमावास्या या पूर्णिमा पर्व तिथि की वृद्धि हो तौभी उक्त श्लोक के तथा तपगच्छवालों के मंतव्य से विरुद्ध पहली अमावास्या वा पहली पूर्णिमा तिथि में पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके उस पहली संपूर्ण पर्वतिथि को तपगच्छ वाले क्यों मानते हैं ? और पासमें रही हुई सूर्योदययुक्त चतुर्दशी पर्वतिथि को आगम विरुद्ध मिथ्या कल्पना से दूसरी तेरस मान कर तपगच्छवाले पाप कृत्यों से क्यों विराधते हैं ? और लौकिक टिप्पने में भाद्र शुक्ल पंचमी की वृद्धि हो तो पहली पंचमी पर्वतिथि में तपगच्छ वाले सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करके अपने मंतव्यसे विरुद्ध उस पहली पंचमी संपूर्ण पर्वतिथि को तपगच्छवाले क्यों मानते हैं ? वा इस तरह लौकिक टिप्पने

में द्वितीया आदि अन्य तिथियों की वृद्धि होने से पहली ६० घड़ी की संपूर्ण पर्व तिथि को न मान कर पापकृत्यों से क्यों विराधते हैं ? और तपगच्छवाले कार्तिक या अन्य मासकी अमावास्या या पूर्णिमा का क्षय होने पर उक्त श्लोक के अनुसार पूर्वतिथि चतुर्दशी में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य क्यों नहीं करते हैं ? अगर आप कहें कि उस चतुर्दशी तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य नहीं करना किन्तु कल्याणिक जप तप करना और तेरस तिथि में पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना तो हम कहते हैं कि तपगच्छवालों का यह मतव्य उपर्युक्त श्रीउमास्वातिजी के नामसे जो कल्पित श्लोक है उससे भी प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि उक्त श्लोकसे यह आशय नहीं निकलता है कि अमावास्या या पूर्णिमा का क्षय हो तो त्रयोदशी तिथि में पाक्षिक या चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना इसी तरह भाद्र सुदी ५ का क्षय हो तो सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले तीज तिथि मे करते हैं सो आचरणा और उक्त श्लोक के मतव्य से सर्वथा विरुद्ध है, इस लिए तपगच्छवालों का तिथि सबंधी उक्त मन्तव्य शास्त्र सम्मत नहीं है किन्तु उपर्युक्त अनेक शास्त्रपाठों से विरुद्ध है।

(प्रश्न) उक्त जैनपत्र मे शांतिविजयजी लिखते हैं कि "तपगच्छवालों की तर्फ से इस लेख में सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रवृत्ति का अहजइ इत्यादि पाठ दिया गया है अब खरतर गच्छ वालों को जो सबूत देना हो देवे मगर शर्त यह है कि खरतर गच्छ की उत्पत्ति के पेस्तर का आगम प्रमाण देना अपने गच्छ के आचार्यों के बनाये हुए ग्रन्थों का पाठ दे दिया और कह दिया कि देखो यह पाठ है तो वो बात मंजूर न होगी" उक्त महाशय का यह कथन ठीक है या नहीं ?

[उत्तर] पाठकगण ! यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि शांतिविजयजीने श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रवृत्ति के नाम से

अह जइ कहवि न लब्भंति तत्ताओ सुरुग्गमेण जुत्ताओ
ता अवरविद्ध अवरावि हुज्ज न हू पुव्वतिही विद्धा ।।१।।

यह गाथा जो लिखी है सो किसी अन्य ग्रथकी है क्योंकि यह गाथा

श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति में लिखी हुई नहीं है और श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति ज्योतिष्करंडपयन्ना आदि टीकाओं में ६२ वीं तिथि की हानि बतलाई है किंतु तिथियों की वृद्धि दूसरी पक्कम दूसरी दूज इत्यादि तिथियां नहीं मानी है क्योंकि उक्त ग्रंथों में लिखा है कि—

अहोरात्रस्य६२द्वाषष्टिभागिकृतस्य सत्का ये६१एक-षष्ठिभागास्तावत् प्रमाणा तिथिः

इस पाठ के अनुसार दिनरात्रि के ६२ बासठीये ६१ भागप्रमाणवाली संपूर्ण तिथि मानी गई है इसी लिए सिद्ध होता है कि **अहजइ** इत्यादि गाथा का अर्थ यही है कि अथ यदि सूर्योदय युक्त संपूर्ण तिथियां किसी प्रकार से भी न मिलें तो सूर्योदय युक्त वह अल्प तिथियां जो कि अवरविद्ध दूसरी तिथि से विद्धाणी हुई याने उत्तर तिथि के साथ मिली हुई **अवरावि हुज्ज** अपरा अर्थात् पर नहीं किंतु पूर्व तिथि भी मानने योग्य होसकती है जैसे कि सूर्योदय युक्त ६० घड़ी की संपूर्ण चौदश न मिले तो सूर्योदयसे २ घड़ी की अल्प चतुर्दशी है बाद पूनम वा अमावस है तो उत्तर तिथि पूनम या अमावस से विद्धाणी हुई पूर्वातिथि सूर्योदय युक्त अल्प चतुर्दशी मानी जायगी याने उसमें पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य अवश्य किये जाँयगे और **न हू पुव्व तिही विद्धा** पूर्व तिथि से विद्धाणी हुई उत्तर तिथि नहीं मानी जायगी जैसे कि सूर्योदय से २ घड़ी तेरस है उसके अनंतर चौदश है तो सूर्योदय युक्त पूर्व तिथि तेरस से विद्धाणी हुई सूर्योदय रहित उत्तर तिथि चौदश नहीं मानी जायगी किन्तु उसको तेरस मानेंगे अतएव उसमें पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना आगम तथा आचरणा और उक्त गाथार्थ से विरुद्ध है। तपगच्छवाले उक्त गाथा का पाठ बता कर तेरस में पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं सो उक्त गाथा के अभिप्राय से प्रतिकूल है।

देखिये यदि तपगच्छ वालों के कथनानुसार उक्त गाथा का अर्थ किया जाय तो द्वितीया आदि तिथियों की वृद्धि होने पर सूर्योदय

युक्त ६० घड़ी की पहली पर्व तिथि उक्त गाथा के अभिप्रायसे अवश्य माननीया है परन्तु तपगच्छवाले मानते नहीं हैं किन्तु पापकृत्यों से विराधते हैं और पूर्णिमा या अमावास्या की वृद्धि हो तो तपगच्छवाले पहली अमावास्या वा पहली पूर्णिमा तिथि को मानकर उसमें पाक्षिक या चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करते हैं तथा पास मे रही हुई सूर्योदय युक्त चतुर्दशी महापर्व तिथि को अपनी मिथ्या कल्पनासे दूसरी तेरस मानकर पाप कृत्यों से विराधते हैं सो उपर्युक्त गाथा के अभिप्राय से सर्वथा विरुद्ध है।

इस तरह खरतर गच्छवालों की तरफ से इस पुस्तक के प्रथम भाग में अनेक आगम पाठों का प्रमाण देकर श्रीपर्युषण संबंधी निर्णय तथा दूसरे भाग में भी सिद्धांत समत अनेक पाठों को दिखला कर तिथि संबंधी अच्छीतरह निर्णय किया है उसको तपगच्छवाले तथा हर्षमुनिजी आदि मुनिराज पक्षपात रहित अवलोकन करके स्वीकार करें यदि मेरा कथन जैनागम के पाठों के मंतव्यों से प्रतिकूल हो तो तपगच्छवालों की तरफ से श्रीयुत् शांतिविजयजी वा हर्षमुनिजी आदि प्रत्युत्तर प्रकाश करें किन्तु स्मरण रहे कि तपगच्छकी उत्पत्ति के पहिले वा पीछे का आगम विरुद्ध पाठ प्रमाण नहीं किया जायगा जैसे कि अपने आचार्यों के वा उपाध्यायों के बनाये हुवे अर्थों का पाठ प्रथमो भाद्रपदोऽपि अप्रमाणः इत्यादि अर्थात् प्रथम भाद्रपद मास भी अप्रमाण है इत्यादि मतव्य आगम विरुद्ध होने से नहीं माना जायगा क्योंकि श्रीदशवैकालिकसूत्र की निर्युक्ति तथा बृहत् टीका में लिखा है कि अतिरित्ता अहिंग मासा टीका उचितकालात् समधिका अधिकमासकाः मतीताः इसपाठसे प्रथम भाद्रपद मास उचित काल में है इस लिये प्रमाण माना जायगा उस मास में श्रीपर्युषण-पर्व ५० दिने करने आगम समत है और इसी पूर्वोक्त पाठ से सिद्ध होता है कि दूसरा भाद्रपद मास १२ महीने का जो उचित काल है उससे अधिक है अतएव दूसरा भाद्रपद अवश्य अधिक मास माना जायगा उस अधिक मास में ८० दिने आगम प्रतिकूल पर्युषण करना नहीं कल्पता है क्योंकि ७० दिन शेष रहने संबंधी समवायाग पाठ अभिवर्द्धित वर्ष के आश्विन नहीं है किंतु मासवृद्धि के अभाव से चंद्रवर्ष के आश्विन है

और उस समवायांग पाठ में ७० दिन से अधिक दिन रहने के लिये निषेध नहीं है इसीलिये श्रीकालकाचार्य महाराज ने ७१ दिन शेष रहते ४६ दिने चंद्रवर्ष में भाद्र शुक्ल चतुर्थी को पर्युषण किया था और श्रीपर्युषण कल्पसूत्र में लिखा है कि नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणा- वित्तए अर्थात् आषाढ़ चतुर्मासी से ५० वें दिनकी रात्रि को श्रीपर्युषण पर्व किये विना उल्लंघन करने की आज्ञा नहीं है इसी लिये ५० दिने दूसरे श्रावण में श्रीपर्युषण पर्व करना उपर्युक्त आगम पाठों से संमत है ८०दिने भाद्रपद में तथा दूसरे भाद्रपद अधिक मास में ८० दिने करना सिद्धांत विरुद्ध है क्योंकि आगम ग्रंथों में श्रीपर्युषणपर्व दिन प्रतिबद्ध माना गया हैं किंतु मास प्रतिबद्ध नही इसीलिये शास्त्रोक्त ५० दिनकी गिनती से लौकिक टिप्पने के अनुसार चाहे प्रथम भाद्र हो चाहे दूसरा श्रावण मास हो आषाढ़ चतुर्मासी से ५० दिन जहां पूरे हों उसी दिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादिकृत्य विशिष्ट गृहिज्ञात श्रीपर्युषणपर्व करने श्री कल्पसूत्र के उद्धारकर्त्ता श्रीमद् देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी आदि वृद्ध पूर्वा- चार्यों ने संगत कहे हैं क्योंकि पूर्वकाल में भी जैनटिप्पने के अनुसार आषाढ़ चतुर्मासी के वाहर केवल पौष और आषाढ़ यही दो मास बढ़ते थे इसीलिये उस अभिवर्द्धित वर्ष संबंधी श्रावण मास में २० दिने गृहिज्ञात याने सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य विशिष्ट श्रीपर्यु- षणपर्व होता था और उसके अनंतर १०० दिन शेष रहते थे परंतु वर्तमान काल में जैन टिप्पने का अभाव होने से और लौकिक टिप्पने से आषाढ़ चतुर्मासी के भीतर श्रावण या भाद्रपद वा आश्विन मास अधिक होते हैं इसी लिये५०दिने दूसरे श्रावण में वा प्रथम भाद्रपद मास में५०दिन होने पर पर्युषण पर्व पूर्वोक्त आगम पाठों के अनुसार किया जाता हैं और पर्युषण करने के अनंतर १०० दिन शेष भी रहते हैं इससे किंचित् दोष नहीं है परंतु धन्यवाद है तपगच्छ के शांतिविजयजी आदि महाशयों को कि जइ फुल्ला कणीयारया इत्यादि गाथा श्रीआवश्यक निर्युक्ति में राजपुत्री की कथाके प्रसंग में अन्योक्ति द्वारा श्रीनिर्युक्तिकार महाराजने लिखी है उसको बताकर दूसरे भाद्रपद अधिक मासको गिनती में न लेने के लिये

लेख द्वारा प्रयत्न नहीं करते हैं किंतु दूसरे श्रावण अधिक मास को गिनती में न लेने के लिये लेख लिखकर परिश्रम उठाते हैं वास्तव में विचार किया जाय तो उस गाथा में अधिक मास को गिनती में न लेना इस अर्थका किंचित् गंध भी नहीं है क्योंकि श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रादि ग्रंथोंमें अधिक मास को गिनती में मानकर तीर्थंकर श्रीवीरपरमात्मा ने कहा है कि,

गोयमा ! अभिवड्ढियसंवच्छरस्स छवीसाइं पव्वाइं

हे गौतम ! अभिवर्द्धितसंवत्सर के २६ छवीस पक्ष सब तीर्थंकरों ने कहे हैं और मैं भी कहता हूँ टीका पाठ में श्रीमलयगिरिजी महाराज ने लिखा है कि **अभिवर्द्धित संवत्सरस्य षड्विंशति पर्वाणि (पक्षाणि) तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात्** अर्थात् अभिवर्द्धित संवत्सर के २६ पक्ष होते हैं कारण कि १३ मासों का अभिवर्द्धित वर्ष होता है तपगच्छ वाले जब तीर्थंकर गणधर टीकाकार आदि महाराजों के यथार्थ वचनों को भी नहीं मानकर अधिक मास को गिनती में नहीं मानते हैं तो आगम सम्मत खरतरगच्छ के आचार्यों के बनाये ग्रंथ संबन्धी पाठों को न माने तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है अस्तु महाशय शांतिविजयजी याद रक्खें कि उपर्युक्त **जइ फुल्ला** इत्यादि गाथा पाठ की तरह अन्य विषय का पाठ अन्य विषय में नहीं माना जायगा ? जैसे कि **क्षये पूर्वा** इत्यादि श्रीउमास्वातिजी के नाम से कल्पित अशुद्ध श्लोक श्रीमहावीर निर्वाण संबंधी कार्त्तिक अमावास्या तिथि का क्षय हो तो पूर्वकी तिथि चतुर्दशी और वृद्धि हो तो पूर्व तिथि पहिली अमावास्या तथा उत्तरकी तिथि दूसरी अमावास्या करनी इस विषय का है, परन्तु आप लोग उसको अन्य तिथियों के विषय में भी बता कर पहिली दूज तिथि को पहिली पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी तिथि को पाप कृत्यों से विराधने के लिये नहीं मानना बतलाते हैं सो इस प्रकार यदि मतव्य विरुद्ध पाठों को लिख कर कहियेगा कि प्रमाण के लिये देखो यह पाठ है तो ऐसी बात मंजूर नहीं की जायगी कारण कि अमावास्या या पूर्णिमा या भाद्र शुक्ल पंचमी का क्षय हो तो पूर्व तिथि चतुर्दशी में पा-

क्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य और चौथमें सांवत्सरिक कृत्य करना तपगच्छ वाले उक्त श्लोक के अनुसार मंजूर न करके तेरस और तीज तिथि में करतेहैं और अमावास्या या पूर्णिमा वा भाद्र शुक्ल पंचमी की वृद्धि हो तो पहिली पंचमीमें सांवत्सरिक कृत्य और पहिली अमावास्या वा पहिली पूर्णिमा में चातुर्मासिक वा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य तपगच्छ वाले करते हैं और चतुर्दशी पर्व तिथि को पाप कृत्यों से विराधते हैं सो उक्त श्लोक के अभिप्रायसे संमत नहीं है इस लिये तपगच्छ वालों से यह पूछा जाता है कि आप लोग अमावास्या या पूर्णिमा में चातुर्मासिक वा पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करतेहैं सो किस आगम पाठ के आधारसे? और भाद्रशुक्ल पहिली पंचमीतिथिको मानकर सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करतेहैं सो किस पाठके आधारसे? आगम पाठ बतलाइये और पहली अमावास्या ६० घड़ीकी संपूर्ण पर्व तिथिको वा पहली पूर्णिमा जो कि ६० घड़ीकी संपूर्ण पर्व तिथि है उस को तथा भाद्र शुक्ल पहली पंचमी ६० घड़ीकी संपूर्ण पर्व तिथि को जीस सिद्धांत पाठों के अनुसार आप मानते है उन पाठों को लिखकर प्रकाशित कीजिये? और तपगच्छ वाले ८०दिने वा दूसरे भाद्रपद अधिक मास में ८० दिने पर्युषण पर्व किस पंचांगी आगम पाठों के अनुकूल करते हैं? और उस दूसरे भाद्रपद अधिक मासको जिस आगम पाठ के आधारसे गिनती में मानते हैं उन सबी मूल पाठों को तथा निर्युक्ति चूर्णि आदि पाठों को श्रीयुत शांतिविजयजी आदि महाशय प्रकाश करें? अन्यथा तेरस में पाक्षिक वा चातुर्मासिक प्रतिक्रमणादि कृत्य करना तथा तीज तिथि में सांवत्सरिक कृत्य करना इसी तरह८०दिने वा दूसरे भाद्रपद अधिक मास में ८० दिने पर्युषण पर्व करना तथा पहिली ६० घड़ी की संपूर्ण पर्व तिथि को पाप कृत्यों से विराधना तथा अधिक मासको गिनती में न मानना इत्यादि आगम विरुद्ध मिथ्या प्रलाप त्याग देना उचित हैं।

इति श्रीप्रश्नोत्तरमंजरीग्रंथस्य द्वितीयभागः

॥ संपूर्णः ॥

❊ नमो श्रीजैनागमाय ❊

अथ
श्रीप्रश्नोत्तर मंजरी ग्रंथस्य
तृतीय भागः ।

लेखक

शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमज्जिनयशः सूरिजी महाराज की आज्ञा के अनुसार पन्यास श्रीकेशरमुनिजी गणि ।

प्रकाशक

बुद्धिसागरमुनि

मुर्शिदाबाद निवासी

रायबहादुर मायसिंह मेघराज दुनगड़ के तरफ से द्रव्य की सहायता से ।

बाबू चन्द्रमोहनदयाल मेनेजर के प्रबन्ध से एंग्लो अरबिक प्रेस, गौनरूजा, लखनऊ में मुद्रित ।

* अर्हम् *

श्रीजिनदत्तसूरिभ्योश्रीजिनकुशलसूरिभ्यो नमः ।

अथ श्रीप्रश्नोत्तर मंजरी ग्रंथस्य

तृतीयभागः प्रारभ्यते ।



[प्रश्न] तारीख २७ वीं जुलाई सन् १९१३ के जैनपत्र मे शान्तिविजयजी ने लिखा है कि "खरतरगच्छवाले श्रीजिनदत्तसूरिजी का और श्रीजिनकुशलसूरिजी का कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण मे करते हैं मगर जो इनसे बड़े गोतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, स्थूलभद्रस्वामी, वज्र स्वामी, सिद्धसेनदिवाकर, देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, और हरिभद्रसूरिजी वगेर' अनेक पूर्वाचार्य हुए उनका कायोत्सर्ग क्यों नहीं करते, क्या खरतरगच्छवालों को अपने गच्छ के पूर्वाचार्यो का कुछ पक्ष है? अगर कहा जाय श्रीजिनदत्तसूरिजी ने कइयों को जैनधर्मी बनाये हैं तो जवाब मे मालूम हो क्या श्रीरत्नप्रभसूरिजी ने कइयों को जैनधर्मी नहीं बनाये? जिनकी बदोलत ओश वंश कायम हुआ। उनका कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण मे क्यो नहीं करते? इसका कोई जवाब देवे। दूसरे गच्छ के कई जैनाचार्यों ने कइयो को जैनी बनाये है, खास तपगच्छ के आचार्य श्रीहीरविजयसूरिजी ने बादशाह अकबर को धर्म सुनाकर कई जैन श्वेताम्बर तीर्थों के फुरमान पत्र बनवाये जो अब तक बदोलत उनके जैनश्वेताम्बर तीर्थों की हिफाजत हो रही है। ख्याल कीजिये त.गच्छवालों ने उनका पक्ष करके प्रतिक्रमण मे कायोत्सर्ग करना शुरू नहीं किया और खरतरगच्छवालों ने अपने गच्छ के आचार्यो का कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण मे शुरू किया, इसकी क्या वजह है? जैन श्वेताम्बर आम्नाय में इस वक्त कई गच्छ मोजूद है। दूसरों ने अपने गच्छ के आचार्य का कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण मे शुरू नहीं किया" शान्तिविजयजी का यह उपर्युक्त कथन द्वेषभाव का है या नहीं?

[उत्तर] श्रीगौतमगणधर आदि अनेक आचार्यों का अथवा जिन आचार्यों से श्रीजिनधर्म की प्राप्ति हुई हो उन आचार्यों का स्मरण, स्तवन, वंदन, प्रसंशा एवं कायोत्सर्ग के द्वारा आराधन वा ध्यान करना यदि कोई पक्षपाती अनुचित समझता हो तो वह अवश्य द्वेषी कहा जायगा, क्योंकि श्रीवीसस्थानकपदों की आराधना में आचार्य पद की कायोत्सर्गादि द्वारा आराधना करनी बताई है और गणधर श्रीगौतम स्वामी तथा तीर्थंकर श्रीवीरप्रभु ने भी श्रीअरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, इन नव पदों की आराधना के लिये श्रेणिक राजा प्रमुख के आगे उपदेश दिया है और नवपदों की आराधना से श्री श्रीपाल राजा ९ वें भव में सिद्ध होगा और अपनी शक्ति वा इच्छा के अनुसार एक एक पद की आराधना से भी कई जीव मुक्तिआदिफलको प्राप्तहुए हैं। देखिये श्रीपालचरित्रादिग्रंथों में पाठ है कि

देवराजेन प्रथमं पदं ध्यातं तेन तस्य मुक्तिर्जाता सिद्धपदाराधनेन पुंडरीकपांडवानां च मुक्तिरभूत् आचार्यपदाराधनेन प्रदेशिनृपस्य मोक्षफलमासीत्-

अर्थ—देवराज ने प्रथम पद याने श्रीअरिहंत पद की आराधना से मुक्ति पाई, सिद्धपद की आराधना से पुंडरीक गणधर, तथा पांडवों की मुक्ति हुई और आचार्य श्रीकेशीगणधर महाराज से प्रदेशिराजा को जैनधर्म की प्राप्ति हुइ, इसलिये आचार्य पद की आराधना करने से उक्त राजा को मोक्ष फल प्राप्त हुआ, इत्यादि। अब आपही विचार कीजिये कि आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने १००००० एक लाख २५००० पचीस हजार और आचार्य श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने ५०००० पचास हजार ब्राह्मण क्षत्रिय वगैरः को श्रीजिनधर्म का उपदेश देकर जैनधर्मी बनाये हैं जिनकी संतानपरंपरा अबतक विद्यमान है, इसलिये परमोपकारी उक्त आचार्यों का कायोत्सर्ग के द्वारा आराधन इस भाव से किया जाता है कि ऐसे महाप्रभाविक आचार्य महाराज प्रत्येक भव में श्रीजिनधर्म की प्राप्ति करानेवाले हों और इस भव तथा परभव के संकट मिटानेवाले हों, इत्यादि भावना करके उन्हीं के नाम से लोगस्स या नवकार का कायोत्सर्ग करना किसी प्रकार अहितकारी नहीं है किंतु इस लोक और परलोक में पूर्ण हितकारी है। इसीलिये खरतरगच्छवाले तथा तपगच्छवाले एवं अन्य

गच्छवाले भी उपर्युक्त आचार्यों की मूर्त्ति या चरण या मंदिर की स्थापना करके अनेक स्थानों में पूजा, भावना, वंदना, जप, तप कायोत्सर्ग ध्यान आदि से उनकी आराधना करते हैं अतएव उन लोगों को फल सिद्धि तथा प्रत्यक्ष चमत्कार का अनुभव भी होता है। यदि कोई द्वेषभाव से न माने तो वह दुर्लभ बोधी कर्मउपार्जन करनेवाला हो, इसमें कोई संशय नहीं। देखिये प्रदेशिराजा ने आचार्य श्रीकेशीगणधर महाराज से बोध पाया इसलिये आचार्य पद की आराधना की और इनसे बड़े श्री अरिहंत तथा सिद्धपद की आराधना नहीं की, इससे क्या पक्षपात सिद्ध हुआ ? कदापि नहीं। किंतु समयानुसार यथाशक्ति श्रीअरिहंत या सिद्ध या अपने उपकारी आचार्य आदि का कायोत्सर्ग के द्वारा आराधन करना परम कल्याणकारी है। अतएव आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिजी से बोध पाये हुए उकेशगच्छ के श्रावक श्रीरत्नप्रभसूरिजी का और तपगच्छवाले जिन आचार्यों से बोध पाये हों उनका तथा अन्य गच्छवाले जिन जिन आचार्यों से बोध पाये हो उन उन आचार्यों का प्रतिक्रमण क्रिया होने के अनंतर कायोत्सर्ग के द्वारा आराधन करें तो इसमें खरतरगच्छवालों को किसी प्रकार से ईर्षाभाव नहीं है और न होगा। क्योंकि जो देव, गुरु और धर्म के आराधन मे मिथ्या कुतर्क करता है वह देव, गुरु, धर्म का द्वेषी समझा जाता है। अस्तु, हम शांतिविजयजीसे मित्रभावपूर्वक यह पूछते हैं कि तपगच्छवालोंने भी प्रतिक्रमणमें सज्झाय जोरसे भकारा बोलना और दुक्खक्खओ कम्मक्खओ का कायोत्सर्ग करना क्यों शुरु किया ? अगर यह कहिये कि कर्म निर्झरा के लिये तो खरतरगच्छवाले भी कर्म निर्झरा के लिये अपने उपकारी आचार्यों का कायोत्सर्ग करते हैं और भी देखिये गौतम स्वामी आदि आचार्यों के नाम से किसी ने संवत् नहीं चलाया, और गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, स्थूलभद्रस्वामी, वज्रस्वामी, सिद्धसेनदिवाकर, देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी, हरिभद्रसूरिजी, हीरविजयसूरिजी आदि अनेक आचार्य हुए उनके नाम से ज्ञानभंडार तथा विद्याशाला, लाइब्रेरी, सभा आदि का स्थापन आप लोगो ने नहीं करके, अपने गच्छ के आचार्य के नाम से आत्मसंवत् एवं आत्मानंदसभा, आत्मज्ञानभंडार, आत्मारामजी की मूर्त्ति या चरण, स्तवन, पूजा, गहुँली, जयन्ति, रात्रि जागरण इत्यादि क्यो प्रचलित किये हैं ? यदि यह कहिये कि अपने गच्छ के आत्मारामजी आचार्य का स्मरण के लिये शुरू किया है तो खरतरगच्छवाले भी प्रतिक्रमण क्रिया होने के अनंतर अपने उप-

कारी आचार्यों के नाम से लोगस्स या नवकार स्मरणरूप कायोत्सर्ग के द्वारा आराधन वा स्मरण करते हैं, इसमें द्वेष करना अथवा लोगों को बहकाना अनुचित है।

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र के लेख में शांतिविजयजी ने लिखा है कि "श्रीमान् अभयदेवसूरिजी ने पंचाशकसूत्र की टीका बनाई है उसमें पाँच पाँच कल्याणिक सब तीर्थंकरों के गिनाये हैं, वहाँ तीर्थंकर महावीरस्वामी के ६ कल्याणक नहीं गिनाये। अगर वे खरतरगच्छ में थे तो उन्होंने ६ कल्याणक क्यों नहीं गिनाये? यह कथन ठीक है या नहीं?

[उत्तर] शांतिविजयजी ने श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज विरचित पंचाशक प्रकरण की टीका के प्रमाण द्वारा श्रीवीरप्रभु के ५ और ६ कल्याणकों के विषय में जो द्वेषभाव प्रकाश किया है सो सर्वथा अनुचित है क्योंकि पंचाशक में श्रीवीरप्रभु के पाँच कल्याणक जो लिखे हैं सो तो पाँच भरत और पाँच एरवृत्त इन दश क्षेत्रों में अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल की २० चौवीसी के ४८० तीर्थंकरों के पाँच पाँच कल्याणक बताने के लिये लिखे हैं और उक्त ४८० तीर्थंकरों का गर्भापहार नहीं हुआ उसी अपेक्षा से श्रीवीरप्रभु का गर्भापहार पंचाशक में न ीं लिखा, परंतु इस अधिकार को एकांतता से स्वीकार करके तपगच्छवाले श्रीवीरगर्भापहार को नीचगोत्रविपाकरूप अतिनिंदनीयरूप तथा अकल्याणकरूप बताते हैं सो सर्वथा निर्मूल है। महाशय शांतिविजयजी याद रक्खें कि श्रीइंद्र महाराज की आज्ञा से हरिणगमेषीदेव ने श्रीवीरप्रभु को देवानंदा ब्राह्मणी के कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशला रानी की कुक्षि में स्थापन किये उसको नीचगोत्रविपाकरूप, अतिनिंदनीयरूप तथा अकल्याणकरूप कहना यह सिद्धांतविरुद्ध महामिथ्या प्रलाप आप लोगों को छोड़ कर आगमानुयायी कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता है। देखिये, तीन ज्ञानयुक्त श्रमण भगवंत श्रीमहावीर प्रभु का जीव देवलोक से च्यव कर नीचगोत्र कर्म के उदय से देवानंदा ब्राह्मणी के कुक्षि में चतुर्दश स्वप्न सूचित आश्चर्यरूप उत्पन्न हुआ। उस आश्चर्य को तो तपगच्छवाले कल्याणकरूप मानलेते हैं और उच्चगोत्रकर्म के उदय से चतुर्दश स्वप्न सूचित त्रिशला रानी की कुक्षि में तीन ज्ञानयुक्त श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु को इंद्र महाराज की आज्ञा से हरिणगमेषीदेव ने गर्भापहार के द्वारा स्थापन किये उसको तपगच्छवाले नीचगोत्रविपाकरूप, अत्यंतनिंदनीयरूप, अकल्याणक

रूप मानते हैं, सो ठीक नहीं है। क्योंकि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को देवानंदा की कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशला रानी की कुक्षि में स्थापन करना उसको श्रीइन्द्रमहाराज ने अपना भी कल्याण के लिये माना है तो तपगच्छवालों का क्या अकल्याण हुआ कि जिस दुःख से कल्याणक नहीं कल्याणक नहीं इस प्रकार पुकार करते हुए कल्याणकारी श्रीवीरगर्भापहार की उक्त निंदा या खंडन करते हैं? देखिये, युगप्रधान चतुर्दशपूर्वधर श्रुतकेवली श्रीमान् भद्रबाहुस्वामी ने श्रीकल्पसूत्र मूल पाठ में लिखा है कि—

तं सेयं खलु ममवि समणं भगवं महावीरं चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठमाहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविंत्तए—

तथा श्रीकल्पसूत्र के सभी टीकाकारों ने अपनी अपनी टीकाओं में लिखा है कि—

ततः श्रेयः खलु ममापि किं तदित्याह श्रमणं भगवंतं महावीरं चरमतीर्थकरं पूर्वतीर्थकरैर्निर्दिष्टं ब्राह्मणकुंडग्रामात् नगरात् ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य भार्यायाः देवानंदायाः ब्राह्मण्याः जालंधरसगोत्रायाः कुक्षेर्मध्यात् क्षत्रियकुंडग्रामे नगरे ज्ञातानां श्रीऋषभदेवस्वामिवंश्यानां क्षत्रियविशेषाणांमध्ये सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य काश्यपगोत्रस्य भार्यायाः त्रिशलायाः क्षत्रि-

यारया: वासिष्टसगोत्राया: कुक्षौ गर्भतया मोचयितुं-

अर्थ—विस्तीर्ण अवधिज्ञान धारण करनेवाले श्रीइन्द्र महाराज ने देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभुको आश्चर्यरूप उत्पन्न हुए देख कर यावत् अपने मन में विचार किया कि—**तं सेयं खलु ममवि तत: श्रेय: खलु ममाऽपि** उससे कल्याण निश्चय मेरा भी है क्या कल्याणक है सो बताते हैं कि पूर्वतीर्थंकरों ने बताया है कि श्रमण भगवान् महावीर चरम (छेले) तीर्थंकर को ब्राह्मण कुंडग्राम नगर से ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या (स्त्री) जालंधर गोत्रवाली देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि के मध्य से क्षत्रिय कुंडग्राम नगर में श्रीऋषभदेव स्वामी के वंशवाले क्षत्रिय विशेष के मध्य में काश्यप गोत्रवाले सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वाशिष्ठ गोत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भपने से जो स्थापन करना वह **सेयं-श्रेय:** कल्याणकरूप है।

यहाँ पर श्रीयुत् शांतिविजयजी आदि बुद्धिमान् पुरुषों को पक्षपात रहित विचार करना उचित है कि जब सूत्रकार तथा टीकाकार महाराजों ने लिखा है कि श्रीइन्द्रमहाराज ने श्रीवीरप्रभु को त्रिशला रानी की कुक्षि में स्थापन करने के लिये देवानंदा की कुक्षि से श्रीवीरगर्भापहार को **सेयं-श्रेय:** इस वचन द्वारा अपना भी कल्याणरूप माना है तो श्रीवीरगर्भापहार को सूत्रविरुद्ध अत्यंतनिंदनीयरूप नीचगोत्रविपाकरूप अकल्याणकरूप मानना यह पूर्ण विचारशून्यता है वा नहीं? यदि तपगच्छवाले यह कहें कि श्रीवीरप्रभु का जीव देवलोक से देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में आश्चर्यरूप उत्पन्न हुआ उसको तो हमलोग कल्याणक और आश्चर्य इन दोनों रूप से मानते हैं परंतु माता त्रिशला रानी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु को गर्भापहार द्वारा जो स्थापन किया है उसको हम लोग नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप आश्चर्यरूप और अकल्याणकरूप मानेंगे किंतु कल्याणकरूप नहीं मानेंगे तो हम कहते हैं कि सूत्रकार श्रीभद्रबाहुस्वामी ने तथा टीकाकारों ने उपर्युक्त पाठों में लिखा है कि श्रीइन्द्रमहाराज ने **तं सेयं खलु ममवि—तत: श्रेय: खलु ममाऽपि** इन वाक्यों से श्रीवीरगर्भापहार को अपना भी कल्याण रूप माना है तो क्या आप लोग श्रीपर्युषणा कल्पसूत्र के व्याख्यान में उक्त सूत्रपाठ तथा टीकापाठ से विरुद्ध **असेयं—अश्रेय:** अर्थात् श्रीवीर

गर्भापहारको अकल्याण रूप बतलाइयेगा ? यदि यह कहिये कि सूत्रकार तथा टीकाकार और इन्द्र महाराज की तरह श्रीवीरगर्भापहार को कल्याण रूप ही बतावेंगे अकल्याण रूप नहीं तो हम लोग भी कहते हैं कि उपर्युक्त श्रीसूत्रकार तथा टीकाकार महाराजों के वचनों से स्पष्ट विदित होता है कि श्रीइन्द्र महाराज ने अपना भी कल्याण रूप श्रीवीरगर्भापहार को माना है तो श्रीवीरगर्भापहार कल्याणक रूप क्यों नहीं माना जायगा ? अवश्यमेव कल्याणक रूपही माना जायगा। आप लोग अपने धर्मसागर आदि उपाध्याय महाराजो के वचनों से श्रीवीरगर्भापहारको अकल्याणकरूप तथा अतिनिंदनीयरूप बतलाते हैं इसलिये उपर्युक्त सूत्रपाठ तथा टीकापाठ से विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणा करने से दोष के भागी आपही लोग बनेंगे क्योंकि श्रीमद्भद्रबाहुस्वामी तथा श्रीइन्द्रमहाराज के उक्त वचन विरुद्ध आप के श्रीधर्मसागर जय विजय, विनयविजय आदि ने अपनी अपनी रची हुई कल्पसूत्र की टीकाओं में यह उत्सूत्रप्ररूपणा लिखी है, तत्संबन्धी पाठ यथा—

नीचैर्गोत्रविपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्वकथनं अनुचितं।

इत्यादि उक्त उपाध्यायो ने प्रभु की निंदा के लिये अपने मतव्यानुसार कपोलकल्पित इनवाक्योसे त्रिशलामाताकी कुक्षिमें आनेरूप श्रीवीर गर्भापहारको नीचगोत्रविपाकरूप तथा अतिनिंदनीयरूप, अकल्याणकरूप कथन किया है, अस्तु, हम पूंछते हैं कि इसी तरह आश्चर्यरूप १९ वे तीर्थंकर स्त्रीरूप याने मल्लीकुमरी हुई उसको भी कल्याणक कहना तपगच्छवाले क्या अनुचित समझते हैं ? यदि तपगच्छवाले कहें कि १९ वें तीर्थंकर स्त्रीरूप मल्लीकुमरी हुई यह भी नीचकर्म विपाकरूप तथा अत्यतनिंदनीयरूप और आश्चर्यरूप हैं तथापि उसको कल्याणक रूप मानना उचित है तो हम भी कहते हैं कि देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से २४ व तीर्थंकर श्रीवीरप्रभु माता त्रिशलाराणी के गर्भ में आए, यह उपर्युक्त कल्पसूत्र मूलपाठ तथा टीकापाठ के **तं सेयं खलु—ततः श्रेयः खलु** इत्यादि वाक्यो से कल्याणक रूप तथा उच्चगोत्रकर्मविपाकोदयरूप और प्रशंसनीय रूप मानना उचित है, तपगच्छवालों को याद रखना चाहिये कि श्रीआचारांग तथा ठाणांग आदि आगम ग्रंथों में लिखा है कि—

हत्थुत्तराहिं चूए चइत्ता गब्भं वक्कंते हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए ।

इत्यादि पाठद्वारा श्रीवीरप्रभु [हस्तोत्तरा] उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में देवलोक से चवके देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में आश्चर्य रूप गर्भपने से उत्पन्न हुए उसके अनंतर श्रीइंद्रमहाराज ने अवधि-ज्ञान से देखकर हरिणगमेषीदेव के द्वारा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से माता श्रीत्रिशलारानी की कुक्षि में गर्भपने से श्रीवीरतीर्थंकर को स्थापन कराये और अपना भी कल्याण माना है, इत्यादि ६ वस्तुओं को जो लिखा है सो कल्याणक रूप ही है तपगच्छवालों के कहने से अकल्याणक रूप नहीं हो सकती। कदाचित् तपगच्छवाले यह कहें कि जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में लिखा है कि—

उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते उत्तरा-साढाहिं जाए उत्तरासाढाहिं रायाभिसेअं पत्ते ।

इत्यादि पाठ से श्रीऋषभदेवस्वामी उत्तराषाढा नक्षत्र में देवलोक से चवके मरुदेवी माता की कुक्षि में गर्भपने से उत्पन्न हुए और उत्तराषाढा नक्षत्र में जन्म हुआ और उत्तराषाढा नक्षत्र में श्रीऋषभ-देव स्वामी का राज्याभिषेक हुआ, उस राज्याभिषेक को ६ छठाँ कल्याणक मानना चाहिये । तो उत्तर में विदित हो कि यह दृष्टांत बताना अघटित है क्योंकि श्रीमहावीर तीर्थंकर गर्भापहार द्वारा देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से माता त्रिशला रानी के गर्भ में आये, उसी तरह श्रीऋषभदेव तीर्थंकर ब्राह्मणी आदि अन्य माता के गर्भ से गर्भापहार द्वारा श्रीमरुदेवी माता के गर्भ में आये हों तो श्रीऋषभदेव स्वामी के भी ६ कल्याणक मानने के लिये खरतरगच्छवाले तैयार हैं किंतु शास्त्रों में वैसा पाठ हो तो तपगच्छवाले बतलावें ? अन्यथा श्रीवीर तीर्थंकर के ६ कल्याणकों की तरह श्रीऋषभदेव स्वामी के भी ६ कल्याणक दृष्टांत दार्ष्टांतिक भाव की तुल्यता से मानना वा बताना नहीं घटता है और श्रीवीरतीर्थंकर गर्भापहार के द्वारा श्रीत्रिशला माता के कुक्षि में आये हैं वह कल्याणक रूप मानना, सब तीर्थंकर अपनी अपनी माता के कुक्षि में आये हैं वह कल्याणक रूप माने गये हैं । उस दृष्टांत द्वारा

बतता है उसको न मानकर नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानना तपगच्छवाले बताते हैं यह सर्वथा सिद्धांत-विरुद्ध उत्सूत्रप्ररूपणा है। और भी देखिये जैसे-तीर्थंकर श्रीऋषभदेव-स्वामी का राज्याभिषेक हुआ है इसी तरह कई तीर्थंकरों के चक्रवर्त्तित्व आदि राज्याभिषेक हुए हैं उनको कल्याणक मानना किसी आचार्यों ने लिखा हो तो पाठ बतलाइये ? हम मानने को तैयार हैं। किंतु श्री कल्पसूत्रमूल तथा टीका में लिखा है कि—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभेणं अरहा कोसलिए चउ उत्तरासाढे अभीइ पंचमे हुत्था— तस्मिन् काले तस्मिन् समये ऋषभः अर्हन् कीदृशः कोशलायां अयोध्यायां जातः कौशलिकः तस्य-चत्वारि कल्याणकानि उत्तराषाढायां पुनः अभि-जिन्नक्षत्रे पंचमं कल्याणकं अभवत्।

इस पाठ से श्रीऋषभदेवस्वामी के उत्तराषाढा नक्षत्र में चार कल्याणक च्यवन १ जन्म २ दीक्षा ३ केवलज्ञान ४ और अभिजिनक्षत्र में ५ मोक्ष यह पांच कल्याणक हुए लिखे हैं किंतु श्रीऋषभदेवस्वामि का राज्याभिषेक और अन्य तीर्थंकरों के राज्याभिषेकों को दे छठा कल्याणक मानना कोई आचार्य किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा है अस्तु तपगच्छ के धर्मसागरजी आदि उक्त उपाध्यायों का यह मंतव्य है कि पंचाशक में श्रीवीरप्रभु के पांच कल्याणक लिखे हैं इसलिये श्रीवीरतीर्थंकर आश्चर्यरूप देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भपने से आये उसको कल्याणक रूप मानना उचित है परंतु गर्भापहार द्वारा देवानंदा माता की कुक्षि से माता त्रिशलारानी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु गर्भपने से आये उसको कल्याणकरूप मानना अनुचित है किंतु आश्चर्यरूप, अतिनिंदनीयरूप, नीचगोत्रविपाकरूप, अकल्याणकरूप मानना चाहिये। प्रिय पाठक गण ! तपगच्छवालों का यह उक्त मतव्य निर्मूल और एकांत दुराग्रह से उत्सूत्रप्ररूपणारूप है, क्योंकि श्रीहरिभद्रसूरिजी ने पंचाशक मूल पाठ में तथा श्रीअभयदेवसूरिजी ने पंचाशक टीकापाठ में उपर्युक्त तप-गच्छवालों के मतव्यानुसार उत्सूत्रप्ररूपणा नहीं लिखी है किंतु पांच

भरत पांच ऐरवृत्त क्षेत्र के अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल संबंधी २० चौवीसी के ४८० तीर्थंकर महाराजों के पांच पांच कल्याणक बताने की अपेक्षा से श्रीवीरप्रभु के पांच कल्याणक बतायें हैं और उपर्युक्त ४८० तीर्थंकर महाराजों के गर्भापहार नहीं हुए हैं इसी अपेक्षा से श्रीवीर गर्भापहार को भी नहीं लिखा है और श्रीकल्पसूत्र में लिखा है कि—

समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावीयाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए चेव एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पन्नवेइ एवं परुवेइ ।

इत्यादि कल्पसूत्र के अंतिम वाक्य से श्रीकल्पसूत्र को अर्थतः (भाषक) प्ररूपक सर्वज्ञ श्रीवीरतीर्थंकर ने सूत्रतः रचयिता श्रीगणधर महाराजों ने नवमा पूर्व से उद्धारकर्त्ता श्रुतकेवली श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी ने लेखतः पुस्तक पर उद्धारकर्त्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने तथा अनेक टीका, अवचूरि टिप्पनिकाकार महाराजों ने यही प्ररूपणा की है कि **तं सेयं खलु ममवि—ततः श्रेयः खलु ममापि** इत्यादि उपर्युक्त कल्पसूत्र के पाठानुसार देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से माता त्रिशलारानी की कुक्षि में स्थापन करने के लिये श्रीवीर गर्भापहार को श्रीइंद्रमहाराज ने निश्चय अपना भी कल्याणरूप ही माना है तो **गब्भाओ गब्भं साहरिए** कल्पसूत्र के इस वाक्य से देवानंदा के गर्भ से माता त्रिशलारानी के गर्भ में श्रीवीरतीर्थंकर आये उसको नीचगोत्रविपाकरूप, अत्यंतनिंदनीयरूप, अकल्याणकरूप मानने को कौन बुद्धिमान् उत्सूत्रप्ररूपणा करेगा ? देखिये श्रीनवांगटीकाकार खरतरगच्छनायक श्रीमान् अभयदेवसूरिजी महाराज के प्रधानशिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज ने कल्पसूत्रादि आगमपाठों के अनुसार देवलोक से च्यव कर देवानंदामाता के कुक्षि में श्रीवीरप्रभु आश्चर्य रूप उत्पन्न हुए। यह जैसा कल्याणक रूप है वैसाही देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशलामाता की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु का आना कल्याणक रूप मानना बताया है किंतु तपगच्छ के

धर्मसागर वगैर की तरह उत्सूत्रप्ररूपणा करके नीचगोत्रविपाकरूप अत्यतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानना नहीं बताया है, इसीलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज के नाम से श्रीगणधरसार्द्धशतक के बृहत् टीकाकार महाराज ने **विधिः आगमोक्तः षष्ठकल्याणकरूपश्च** इत्यादि पाठ से विधि जो आगमोक्त याने देवानंदा की कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशलामाता की कुक्षि में श्रीवीरतीर्थंकर का आना वह छठां कल्याणक रूप है इत्यादि ठीक लिखा है क्योंकि तपगच्छनायक श्रीकुलमंडनसूरिजी महाराज स्वविरचित श्रीकल्पसूत्र अवचूरि में लिखते हैं कि तीर्थंकर श्रीऋषभदेवस्वामी तथा अन्य तीर्थंकरो ने तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामी के च्यवनादि ६ कल्याणकों का हेतु रूप जो काल समय प्रतिपादन किया है सो बताते हैं—

यौ कालसमयौ भगवता ऋषभदेवस्वामिना अन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्धमानस्य षण्णां च्यवनादीनां कल्याणकानां हेतुत्वेन कथितौ तावेति श्रमः पंचहत्थुत्तरे होत्थेति हस्तादुत्तरस्यां दिशि वर्त्तमानत्वात् हस्तोत्तरा हस्त उत्तरो यासां वा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं पंचसु १ च्यवन २ गर्भापहार ३ जन्म ४ दीक्षा ५ ज्ञान कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य सः तथा ६ निर्वाणस्य स्वातौ जातत्वादिति ।

भावार्थ—इस पाठ में तपगच्छ के श्रीकुलमंडनसूरिजी ने श्रीवीर गर्भापहार को कल्याणकरूप ही मानकर श्रीवीर परमात्मा के ६ छ कल्याणक बताये हैं पुन तपगच्छ के श्रीकुलमंडनसूरिजी कृत कल्पसूत्र की टिप्पनिका में श्रीवीरतीर्थंकर के ६ कल्याणक लिखे हैं। पाठ यथा—

पंच हस्तोत्तरा आसीत् हस्त उत्तरोऽग्रेसरो यासां ता उत्तराफाल्गुन्यः वहुवचनं वहुकल्याणकापेक्षं तस्यां हि विभोश्च्यवनं१ गर्भाद्गर्भे संक्रांतिः २ जन्म ३ व्रतं ४ केवलं ५ चाभवत् ६ निर्वृत्तिस्तु स्वातौ इति ।

देखिये श्रीकुलमंडनसूरिजी महाराज ने श्रीऋषभादि तीर्थंकरों के कथनानुसार तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी के ६ कल्याणक कल्पसूत्र मूल पाठ में थे वही कल्पसूत्र अवचूरि और टिप्पनिका के उपर्युक्त दोनों पाठों में लिखे हैं तथापि तपगच्छीय श्रीआत्मारामजी के शिष्य कांति-विजयजी तथा अमरविजयजीने जैनसिद्धांतसमाचारी नामक पुस्तक में लिखाहै कि "श्रीजिनवल्लभसूरिजी ने यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया है और तपगच्छीय एक श्रीकुलमंडनसूरिजी विरचित कल्पसूत्र अवचूरि तथा टिप्पनिका संबंधी जो उदाहरण दिया है सो तो तुमारे बड़ों काही अनुकरण किया है।" यह कथन दुराग्रहसे महामिथ्या प्रलापरूप है क्योंकि श्रीजिनवल्लभसूरिजी ने तथा श्रीकुलमंडन सूरिजी ने **गब्भाओ गब्भं साहरिए** इस कल्पसूत्र वाक्य के अनुसार देवानंदा के गर्भ से त्रिशलारानी के गर्भ में श्रीवीरप्रभु का आना कल्याणक रूप जो कथन किया है सो उचित है कारण कि **तं सेयं खलु ममवि—ततः श्रेयः खलु ममापि** अर्थात् उस से कल्याण निश्चय मेरा भी है इत्यादि अवधिज्ञानयुक्त श्रीइंद्र महाराज के अभिप्राय के अनुकूल त्रिशला माता की कुक्षि में श्रीवीरतीर्थंकर का आना कल्याणक रूप प्रतिपादन किया है। और तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी ने तथा अन्य २२ तीर्थंकरों ने तथा कल्पसूत्र के अर्थतः प्ररूपक श्रीवीरतीर्थंकर ने सूत्रकार श्रीगणधर महाराज ने कल्पसूत्र उद्धार कर्त्ता श्रीभद्रबाहुस्वामी ने तथा लेखक श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी आदि ज्ञानी महात्माओं ने त्रिशला माता की कुक्षि में श्रीवीरतीर्थंकर का आना कल्याणक रूप माना है। उनके वचनों का अनुकरण किया है अर्थात् श्रीजिनवल्लभसूरिजी ने यह छठां कल्याणक नवीन नहीं कथन किया है किंतु उपर्युक्त पाठों के अनुसार तीर्थंकर श्रीऋषभदेव

आदि उक्त महाराजो ने यह छठा कल्याणक कथन किया है उसको कल्पकिरणावली आदि टीकाओं में तपगच्छ के धर्मसागर वैगर ने **नीचैर्गोत्रविपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्वकथनं अनुचितं** इस प्रकार निर्मूल अपने कपोलकल्पित वाक्यो से गर्भापहार के द्वारा त्रिशला माता की कुक्षि मे श्रीवीरप्रभु का आना नीचगोत्रविपाकरूप तथा अतिनिंदनीयरूप और अकल्याणकरूप जो कथन किया है सो उपर्युक्त कल्पसूत्र के पाठ से विरुद्ध है। यह नवीन उत्सूत्रप्ररूपणा विशेषरूप मे तपगच्छ के उपाध्याय श्रीधर्मसागरजी ने की है और पश्चात् कल्पसूत्रदीपिकाकार श्रीजयविजयजी ने तथा कल्पसूत्रसुबोधिकाटीकाकार श्रीविनयविजयजी आदि महानुभावो ने भी उक्त सागरजी का अनुकरण किया है अतएव वर्तमान काल के तपगच्छीय लोग उन्हीं लोगों का अनुकरण करते हैं, वास्तव मे पक्षपातरहित विचार किया जाय तो देवलोक से देवानंदा माता की कुक्षि में गर्भपने से श्रीवीरप्रभु का आना जैसे आश्चर्यरूप कल्याणकरूप है उसी तरह देवानंदा ब्राह्मणी के कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशला माता की कुक्षि मे श्रीवीरतीर्थंकर का आना उच्चगोत्रकर्मविपाकोदयरूप प्रशंसनीयरूप कल्याणकरूप है। प्रिय पाठक गण! देखिये कि यदि तपगच्छवालो के कथनानुसार गर्भापहार के द्वारा त्रिशला माता के गर्भ में श्रीवीरप्रभु का आना नीचगोत्रविपाकरूप अतिनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप होता तो अवधिज्ञानवान् श्रीइन्द्र महाराज श्रीवीरगर्भापहार कराते ही नहीं और त्रिशला माता की कुक्षि मे स्थापन करने रूप श्रीवीरगर्भापहार को **तं सेयं खलु ममवि—ततः श्रेयः खलु ममापि** इत्यादि वचनो से श्रीइन्द्र महाराज निश्चयपूर्वक अपने कल्याणरूप नहीं मानते और त्रिशला माता की कुक्षि मे स्थापन करने रूप श्रीवीर गर्भापहार को **हिआणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा** इत्यादि वाक्यो से हरिणगमेषीदेव अपने हितरूप तथा [अनुकंपा] भक्तिरूप कदापि नहीं मानते परन्तु श्रीइन्द्रमहाराज ने तथा हरिणगमेषी देवने श्रीवीरगर्भापहार को निश्चय अपने कल्याणरूप और हितरूप तथा भक्तिरूप माना है अतएव इमसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रीवीरगर्भापहार कल्याणकरूप है। देखिये श्रीविनयेंदुसूरिजीमहाराज विरचित श्रीपर्युषणा कल्पाध्ययन निरुक्त मे लिखा है कि—

तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थंकरैः श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञातः कथितश्च यस्मिन् समये तीर्थंकरच्यवनं, स एव समय उच्यते समयः कालनिर्धारणार्थो यतः कालो वर्णोऽपि तथा हस्त उत्तरो यासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यो बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं तस्यां विभोश्च्यवनं १ गर्भाद्गर्भे संक्रांतिः २ जन्म ३ व्रतं ४ केवलं ५ चाभवत् निर्वृत्तिः स्वातौ ६ इति

भावार्थ—इस पाठ में पूर्वतीर्थंकरों के कथनानुसार श्रीविनयेंदुसूरि जी महाराज ने गर्भापहार के द्वारा देवानंदा के कुक्षि से त्रिशला माता की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु का आना कल्याणकरूप माना है। तथा श्रीपृथ्वीचंद्रसूरिजी विरचित श्रीपर्युषणा कल्पटिप्पनी का पाठ। यथा—

हस्त उत्तरो यासां ता बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षमित्यत्र पंचसु पंच ५ स्वातौ ६ षष्ठमेव ध्वन्यते, इति—

अर्थ—इस पाठ में श्रीकल्पसूत्र मूलपाठ के अनुसार श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिजी महाराज ने भी श्रीवीरप्रभु के ५ पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्र में और स्वाती नक्षत्र में ६ छठा मोक्ष कल्याणक बताया है और श्रीआगमिकगच्छनायक श्रीमत् जयतिलकसूरिजी महाराज रचित मुद्रित सुलसाचरित्र में सर्ग ६ श्लोक ४९ का पाठ। यथा—

सिद्धार्थराजांगजदेवराज! कल्याणकैः षड्भिरिति स्तुतस्त्वां। तथा विधेह्यन्तरवैरिषट्कं यथा जयाम्याशु तव प्रसादात्। ४९।

भावार्थ—श्रावक अंबडपरिव्राजक ने समवसरण में श्रीवीरप्रभु के सन्मुख ६ कल्याणकों से स्तुति की है अतएव प्रभु की कृपा से ६

अतरग वैरियों को जीतने की प्रार्थना की है। यह उपर्युक्तसूरिजी महाराज ने भी श्रीमहावीरप्रभु के आगमसमत ६ कल्याणकों का प्रतिपादन किया है। पाठकगण ! उपर्युक्त प्रमाणों से त्रिशलामाता की कुक्षि में आने रूप श्रीवीरगर्भापहार को कल्याणकरूप ही मानना सिद्ध होता है, इसलिये श्रीयुत् शांतिविजयजी ने हम मित्रभाव पूर्वक यह कहते हैं कि आप लोग देवानदा ब्राह्मणी की कुक्षि से त्रिशला रानी की कुक्षि में आने रूप श्रीवीरगर्भापहार को अत्यत निंदनीयरूप अकल्याणकरूप जो ठहराते हैं सो यह द्वेष से प्रभु की निंदा करने में आप लोगों का नितात दुराग्रह है क्योंकि उपर्युक्त अनेक शास्त्रपाठों में श्रीवीरगर्भापहार को तीर्थकर, गणधर, इन्द्र, आचार्य आदि अनेक महाराजों ने जब कल्याणरूप माना है तो उसको आप लोग किस कारण से और किस आगम के आधार से अकल्याणकरूप, अत्यतनिंद्यरूप, नीचगोत्रविपाकरूप मानते हैं ? हाँ यदि इस विषय में कोई आगमसबधी पुष्ट प्रमाण आप लोगों को मिला हो तो उसको कृपया बतलाइये अन्यथा पचाशक में श्रीवीरगर्भापहार को अत्यतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप नहीं लिखा है तथापि आपके धर्मसागर जयविजय विनयविजय आदि ने त्रिशला माता की कुक्षि में आने रूप श्रीवीरगर्भापहार को अकल्याणकरूप, नीचगोत्र विपाकरूप एव अतिनिंदनीयरूप बतलाया है यह उन लोगों का मतव्य आगमविरुद्ध सर्वथा निर्मूल है इसीलिये निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर आपको प्रकाश करना उचित है।

१ [प्रश्न] पचाशक प्रकरण टीका के प्रमाणानुसार श्रीवीरप्रभु के आप एकात से पाँच कल्याणक मानते हैं तो उक्त पचाशक प्रकरण ग्रथ के पाठानुसार तपगच्छ के श्रावकों को सामायिक लेने में प्रथम करेमिभते का उच्चारण करके पीछे इर्यावही करना इसको आप एकात से मानियेगा या नहीं ?

२ [प्रश्न] पचाशक मूलपाठ तथा टीकापाठ में आप श्रीवीरप्रभु के पाच कल्याणक मानते हैं तो उसी पचाशक प्रकरण के मूलपाठ तथा टीकापाठ में आभवमखंडा पर्यत जयवियराय बोलना बतलाया है तो आप उस मर्यादा को त्याग कर अधिक करना क्यों मानते हैं ?

३ [प्रश्न] पंचाशकपाठ के अनुसार श्रीवीरतीर्थंकर के पाँच कल्याणक आप मानते हैं तो पंचाशकटीका में **पौषधः पर्वदिनाऽनुष्ठानम्** इस वाक्य से पोषध व्रत पर्वदिन का अनुष्ठान लिखा है और आप पोषधव्रत को अपर्व दिनों का भी अनुष्ठान बतलाते हैं सो पंचाशकटीका के उक्त वाक्य से संमत है या नहीं ?

४ [प्रश्न] पंचाशक मूल तथा टीका में यह नहीं लिखा है कि देवानंदा की कुक्षि से गर्भापहार द्वारा त्रिशलारानी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु को स्थापन किया सो अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणक रूप है तथापि आपके धर्मसागर जी इत्यादि ने अपनी रची हुई कल्पसूत्र की टीकाओं में अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप यह नवीन उत्सूत्रप्ररूपणा की है और आप लोग भी उसी को एकांत आग्रह से मानते हैं और वसी ही प्ररूपणा करते हैं सो पंचाशक आदि ग्रंथों से विरुद्ध है या नहीं ?

५ [प्रश्न] कल्पसूत्र में श्रीनेमनाथ स्वामी के १८ गणधर लिखे हैं परन्तु श्रीहरिभद्रसूरिजी ने किसी अपेक्षा से आवश्यक टीका में ११ गणधर लिखे हैं उसी प्रकार पंचाशक में भी श्रीवीरप्रभु के ५ कल्याणक ४८० तीर्थंकरों के पाँच पाँच कल्याणकों को बतलाने की अपेक्षा से लिखे हैं जैसे आवती चौवीसी में श्रीपद्मनाभ तीर्थंकर के गर्भ जन्म आदि पाँच कल्याणक श्रीवीरप्रभु के दृष्टांत द्वारा बताने पर देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भापहार के द्वारा त्रिशलारानी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु का आना अथवा नीचगोत्रकर्मविपाकरूप नरक से श्रीपद्मनाभतीर्थंकर महाराज का आनो माता की कुक्षि में आना अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानना विरुद्ध है किंतु उक्त तीर्थंकर का माता की कुक्षि में आना अथवा गर्भापहार के द्वारा श्रीवीरप्रभु का त्रिशला माता की कुक्षि में आना इसको प्रशंसनीयरूप एवं कल्याणकरूप ही मानना उचित है तो आप लोग अकल्याणक रूप अत्यंतनिंदनीयरूप किस कारण से मानते हैं ?

६ [प्रश्न] श्रीवीरप्रभु का च्यवन और देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भापहारद्वारा त्रिशला माता की कुक्षि में धरना इत्यादि **सेयं-श्रेयः** कल्याणकरूप ६ वस्तुओं को इंद्रमहाराज ने माना है और तपगच्छवाले भी मानना स्वीकार करते हैं तो फिर देवानंदा ब्राह्मणी

की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु उत्पन्न हुए उसको तो कल्याणकरूप आश्चर्यरूप मानना और त्रिशलामाता की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु गर्भापहार द्वारा आये उसको नीचगोत्रविपाकरूप अतिनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप बतलाना यह किस आगम के आधार से, सो पाठ दिखलाइये ? अन्यथा आपके गच्छ के धर्मसागरजी वगैर. का उक्त वचन आगम संमत न होने से प्रमाण नहीं किये जांयगे ?

७ [प्रश्न] यह एक नियम है कि श्रीतीर्थंकर महाराज अपनी माता की कुक्षि में उत्पन्न होते हैं उसी को कल्याणकरूप माना जाता है तो ८३ में दिन की रात्रि को देवानंदा की कुक्षि से त्रिशलामाता की कुक्षि में श्रीवीरतीर्थंकर आकर ६ महीना और १४॥ दिन रात्रि पर्यंत अंगोपांग से उत्पन्न हुए उसको आप लोग किन शास्त्रों के पाठ प्रमाणों से अतिनिंदनीयरूप और अकल्याणकरूप बतलाते हैं ?

८ [प्रश्न] श्रीतीर्थंकर महाराज जिस समय में अपनी माता की कुक्षि में गर्भपने से आते हैं और उस समय में माता १४ स्वप्नों को देखती है उसी को कल्याणकरूप मानते हैं यह एक सर्वसंमत पक्का नियम है तो श्रीवीरतीर्थंकर देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से श्रीत्रिशला-माता की कुक्षि में जिस समय गर्भपने से आये उस समय माता ने १४ स्वप्नों को देखा उसको कल्याणकरूप न मानकर अत्यतनिंदनीय-रूप तथा अकल्याणकरूप आप लोग किस सिद्धान्तपाठों से मानते हैं ?

९ [प्रश्न] जिस समय में श्रीतीर्थंकर महाराज अपनी माता की कुक्षि में आते हैं उस अवसर में माता १४ स्वप्नों को देखकर अपने पति से निवेदन करती है, राजा सुनकर स्वप्नलक्षणपाठकों को बुलाके उनसे स्वप्नोंका फल पूछता है उसको कल्याणकरूप माना जाता है, इस प्रकार श्रीवीरप्रभु जिस समय त्रिशलारानी के गर्भ में आये उस समय माता ने १४ स्वप्नों को देखा और उसके अनंतर श्रीसिद्धार्थ राजा से निवेदन किया, राजा ने सुनकर प्रातःकाल में महोत्सव के साथ स्वप्न लक्षण पाठकों से फल पूछा तो पंडितों ने स्वप्नों का फल बताया कि इससे कल्याणकारी तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होंगे, ऐसा उत्तमोत्तम उन स्वप्नों का फल सुनकर आनंदित हुए उसको आपलोगोंने एकांत पाँच ही कल्याणक के आग्रह से अतिनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप किस प्रमाण से मान लिया है ?

१० [प्रश्न] श्रीऋषभादि तीर्थंकर महाराज अपनी अपनी माता की कुक्षि में आये उसको शास्त्रकारों ने कल्याणकरूप माना है उसी प्रकार श्रीवीर तीर्थंकर त्रिशलामाता की कुक्षि में आये उसको श्रीतीर्थंकरों ने तथा इंद्रमहाराज ने और श्रीभद्रबाहुस्वामी आदि अनेक आचार्यों ने कल्याणकरूप ही माना है तथापि आपके धर्मसागरजी आदि उपाध्यायों ने उसको अकल्याणकरूप सिद्ध करने के लिये जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के पाठ से श्रीऋषभदेवस्वामी के राज्याभिषेक को कल्याणक मानना बताया है तो इससे भी अधिक कई तीर्थंकर महाराजों के चक्रवर्त्तित्व आदि राज्याभिषेक हुए हैं उनको भी आप कल्याणक मानोगे या नहीं ? अगर यह कहोगे कि तीर्थंकरों के राज्याभिषेकों को कल्याणक नहीं मानेंगे क्योंकि श्रीभद्रबाहुस्वामी तथा टीकाकार महाराजों ने कल्पसूत्र में **चउ उत्तरासाढे अभीइ पंचमे हुत्था— चत्वारि कल्याणकानि उत्तराषाढायां पुनः अभिजिन्नक्षत्रे पंचमं कल्याणकं अभवत्** इन वाक्यों से श्रीऋषभदेवस्वामी के पाँच कल्याणक बताये हैं और पंचाशक में ४८० तीर्थंकरों के पांच पांच कल्याणक बताने की अपेक्षा से श्रीवीरप्रभु के पाँच कल्याणक लिखे हैं सो मानेंगे तो हम भी कहते हैं कि श्रीभद्रबाहुस्वामी ने श्रीकल्पसूत्र मूलपाठ में देवलोक से देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु आये, माता ने १४ स्वप्न देखे और श्रीइंद्रमहाराज ने **तं सेयं खलु ममवि तत: श्रेय: खलु ममापि** इन वाक्यों के द्वारा श्रीवीर गर्भापहार को निश्चय अपना भी कल्याणरूप माना है तो कल्याणकरूप श्रीवीरगर्भापहार को आप के धर्मसागरजी वगैरह ने उक्त सूत्रपाठ मंतव्यविरुद्ध नवीन उत्सूत्रप्ररूपणा करके श्रीत्रिशला माता की कुक्षि में स्थापन करने रूप श्रीवीरगर्भापहार को अकल्याणकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप क्यों माना ? और आप वैसा क्यों मानते हैं ? अगर इस विषय से संमत मूल आगमपाठ हो तो बतलाइये ? अन्यथा श्रीतीर्थंकर महाराजों का अपनी माता की कुक्षि में आना अनादि काल की रीति के द्वारा कल्याणकरूप प्रसंशनीयरूप ही माना जायगा, कौन भाग्यशाली इस उचित मंतव्य में मना कर सकता है ?

११ [प्रश्न] और भी देखिये कि पंचाशक में **आषाढ सुद्ध छट्ठी चेत्ते तह सुद्धतेरसी** इत्यादि वाक्यों से आषाढ सुदी

६ की मध्य रात्रि के समय में देवलोक से देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि मे श्रीवीरतीर्थंकर आकर आश्चर्यरूप गर्भपने से उत्पन्न हुए उसको कल्याणकरूप लिखा है और चैत्र सुदी तेरस को त्रिशला माता की कुक्षि से श्रीवीरप्रभु का जन्म हुआ उसको भी कल्याणकरूप बताया है परन्तु श्रीकल्पसूत्र के **आसोअ वहुलस्स तेरसी** इस वाक्यानुसार आश्विन कृष्ण १३ की मध्य रात्रि के समय देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से त्रिशला माता की **कुच्छिसि गब्भताए साहरिए** कुक्षि मे श्रीवीरप्रभु को गर्भपने से कल्याणकरूप स्थापन किये गये इस अधिकार को पञ्चाशक में नहीं लिखा इसका कारण यह है कि पचाशक मे श्रीवीरप्रभु के **गब्भाइ दिणा** इत्यादि वाक्य से गर्भ, जन्म आदि ५ कल्याणक दिनो को बताकर लिखा है कि **सेसाणवि एवं विय णिय णिय तित्थेसु विरोया** अर्थात् इस वाक्य से ऋषभादि ४८० तीर्थंकरों के भी गर्भ जन्मादि पॉच पॉच कल्याणक दिनो को इसी प्रकार याने श्रीवीर गर्भ जन्मादि ५ दिनो की तरह सब तीर्थंकरों के निज निज तीर्थों मे जान लेना उचित है इस कथन से श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज ने श्रीऋषभादि सर्व तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म आदि पॉच पॉच कल्याणक दिन बताने की अपेक्षा से और दूसरे तीर्थंकरों के गर्भापहार नहीं हुए है इस अपेक्षा से श्रीवीरप्रभु के गर्भ, जन्म, आदि पॉच कल्याणक दिनो को दृष्टांत द्वारा लिखे हैं और गर्भापहार दिन नहीं लिखा, इससे गर्भापहार के द्वारा श्रीवीरतीर्थंकर त्रिशलामाता की कुक्षि मे आये सो अप्रामाणिक वा अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप है ऐसा किसी शास्त्र से सिद्ध नहीं हो सकता है ? तो एकांत आग्रह से आपके उक्त उपाध्यायों ने वैसा किस पचांगी प्रमाणों से मान लिया है, सो पाठ दिखलाइये ?

१० [प्रश्न] आप लोग अन्य तीर्थंकरों के चक्रवर्तित्व आदि राज्याभिषेकों को त्यागकर केवल ऋषभदेव तीर्थंकर के राज्याभिषेक को कल्याणक मानना बताते हैं परंतु शास्त्रकारों ने श्रीतीर्थंकर महाराज अपनी माता की कुक्षि मे गर्भपने से आते हैं उसी को कल्याणकरूप माना है इसी लिये श्रीवीरतीर्थंकर त्रिशला माता की कुक्षि मे गर्भपने से आये उसको कल्याणकरूप मानते हैं, इस नियमानुसार शास्त्रकार महाराजो ने तीर्थंकरों के राज्याभिषेकों को कल्याणक मानना लिखा

हो तो शास्त्रपाठ वतलाइये ? हम मानने को तैयार हैं । अन्यथा किस तरह मानेंगे ?

१३ [प्रश्न] श्रीवीरतीर्थंकर आश्चर्यरूप देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भपने से आये उसी को कल्याणकरूप मानना और श्रीत्रिशलारानी की कुक्षि में गर्भपने से आये उसको अकल्याणकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप वतलाना वा मानना यह आप लोगों का प्रत्यक्ष अन्याय है या नहीं ?

१४ [प्रश्न] १९ वें तीर्थंकर प्रभावती माता की कुक्षि से आश्चर्य रूप स्त्रीरूप मल्ली कुमरी हुई उसको कल्याणकरूप मानते हैं और २४ वें तीर्थंकर आश्चर्यरूप गर्भापहार के द्वारा त्रिशला माता की कुक्षि में गर्भपने से आये उसको प्रसंशनीयरूप कल्याणकरूप नहीं मान कर अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानना आपके उक्त उपाध्यायों ने लिखा है सो उपर्युक्त कल्पसूत्र के रचयिता श्रीश्रुतकेवली चतुर्दश पूर्वधर श्रीभद्रवाहुस्वामी के वचन से अथवा अवधिज्ञानी श्रीइन्द्रमहाराज के वचन से विरुद्ध है या नहीं ?

१५ [प्रश्न] यदि तपगच्छवाले कहें कि खरतरगच्छ के श्रीजिनवल्लभसूरिजीने गर्भापहार द्वारा श्रीवीरतीर्थंकर त्रिशलामाता की कुक्षि में आये उसको कल्याणकरूप कथन किया है तो खरतरगच्छवाले अनेक आचार्यों के रचित ग्रंथों के प्रमाणों से बतारहे हैं कि जैसा देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भपने से भगवान् का आना हुआ यह आश्चर्यरूप कल्याणकरूप है वैसाही माता त्रिशलारानी की कुक्षि में गर्भपने से श्रीवीरतीर्थंकर का आना हुआ वह भी आश्चर्यरूप कल्याणकरूप है इत्यादि उचित कथन द्वारा श्रीनवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी के प्रधान शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज ने विषमवादी अज्ञानी चैत्यवासी आचार्यों को जो कहा है वह आगमसंमत है अतएव उक्त महाराज के नाम से गणधर सार्द्धशतक वृहट्टीकाकार महाराज ने भी **विधिः आगमोक्तः षष्ठकल्याणकरूपश्च** इत्यादि पाठ से विधि जो आगम में कही हुई देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भापहार द्वारा त्रिशलामाता की कुक्षि में गर्भपने से श्रीवीरतीर्थंकर का आना हुआ वह छठवाँ कल्याणकरूप है इत्यादि उचित लिखा है क्योंकि उपर्युक्त कल्पसूत्रादि अनेक पाठों के अनुसार

श्रीऋषभादि तीर्थंकरों ने तथा श्रीइन्द्रमहाराज ने और श्रीभद्रबाहुस्वामी आदि अनेक आचार्यों ने गर्भापहारद्वारा त्रिशलामाता की कुक्षि में श्रीवीरतीर्थंकर का आना श्रेयरूप कल्याणकरूप ही कथन किया है उसको विषमवादी वा निंदातत्पर तपगच्छ के धर्मसागर आदि उपाध्यायो ने कल्पकिरणावली आदि टीकाओ मे सिद्धातविरुद्ध नीचगोत्रविपाकरूप अत्यतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानने की जो नवीन प्ररूपणा की है वह अनुचित है, इसलिये उक्त उपाध्यायो की उक्त नवीन प्ररूपणा मूलकल्पसूत्रादि किसी आगम से संमत हो तो वह पाठ आप वतलाइये?

१६ [प्रश्न] नरक से निकल कर श्रीतीर्थंकर महाराज अपनी माता की कुक्षि में आते हैं उसी को भी कल्याणकरूप माना जाता है तो हरिणगमेषीदेव के द्वारा देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भापहार द्वारा निकलकर श्रीवीरतीर्थंकर त्रिशलामाताकी कुक्षि में आए इसमें क्या अयुक्त हुआ कि उसको अत्यतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप आपके उक्त उपाध्यायो ने मान लिया ? और आप भी वैसा ही मानते हैं ?

१७ [प्रश्न] यदि तपगच्छवाले कहें कि देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से श्रीवीरगर्भापहार आश्चर्यरूप है इसलिये उसको नीचगोत्रविपाकरूप अत्यतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप हमारे उक्त उपाध्याय महाराजो ने मान कर कल्याणकरूप नहीं माना है और हम भी उनके मन्तव्य के अनुसार वैसा ही मानते हैं तो हम मैत्रीभावना करके तपगच्छवालों से यह पूछते हैं कि नरक से निकलकर श्रीतीर्थंकर महाराज अपनी माता की कुक्षि में आते है उसको तपगच्छवाले आश्चर्यरूप गर्भापहार की तरह नीचगोत्रविपाकरूप मानते हैं या उच्चगोत्र विपाकोदयरूप ?

और देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में श्रीवीरप्रभु उत्पन्न हुए वह भी आश्चर्यरूप है उसको आश्चर्यरूप गर्भापहार की तरह तपगच्छवालों ने अकल्याणकरूप नहीं मानकर कल्याणकरूप किस तरह मान लिया ?

और श्रीवीरतीर्थंकर को कैवल्य ज्ञान होने पर प्रथम देशना निष्फल गई वह भी आश्चर्यरूप है तो उस देशना को भी आश्चर्यरूप गर्भापहार की तरह तपगच्छवाले क्या अत्यतनिंदनीयरूप मानते हैं ?

तथा मूलविमान मे बैठकर सूर्य चन्द्र यह दोनों इन्द्र श्रीवीरप्रभु को वंदना करने को आये यह भी आश्चर्यरूप है उसको भी आश्चर्यरूप गर्भापहार की तरह तपगच्छवाले क्या अत्यतनिंदनीयरूप मानते हैं ?

और एक समय में श्रीऋषभदेव आदि १०८ उत्कृष्ट अवगाहनावाले सिद्ध हुये हैं वह भी आश्चर्यरूप माना है और इसी प्रकार कुंभराजा की पुत्री माता प्रभावतीरानी की कुक्षि से मल्लीकुमरी तीर्थंकरी हुई यह भी महाआश्चर्यरूप है परंतु इन आश्चर्यों को तपगच्छ के उक्त उपाध्याय महाराजों ने आश्चर्यरूप गर्भापहार की तरह अत्यंत निंदनीयरूप अकल्याणकरूप न मानकर जैसा कल्याणकरूप ही माना है वैसा ही आश्चर्यरूप गर्भापहार द्वारा माता श्रीत्रिशलारानी की कुक्षि में श्रीवीर प्रभु का आना कल्याणकरूप मनना न्यायतः युक्तियुक्त है तथापि तपगच्छ के उक्त उपाध्यायों ने अपने मन से ही नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप मानना बतलाया है वह प्रत्यक्ष आगमविरुद्ध तथा युक्तिरहित है या नहीं ?

१८ [प्रश्न] यदि तपगच्छवाले कहें कि सब तीर्थंकरों के पाँच पाँच कल्याणक जैसे मानते हैं वैसे श्रीवीरतीर्थंकर के भी पाँच कल्याणक मानते हैं इसलिये गर्भापहार के द्वारा त्रिशलामाता की कुक्षि में जो श्रीवीरप्रभु आये उसको कल्याणकरूप हम लोग किस तरह मानेंगे तो हम यह कहते हैं कि सब तीर्थंकर अपनी अपनी माता की कुक्षि में आये हैं उसको जैसा कल्याणकरूप मानते हैं उसी तरह श्रीवीरतीर्थंकर त्रिशलामाता की कुक्षि में गर्भपने से आये हैं उसको कल्याणकरूप मानना न्यायतः संगत है तथापि आपके उक्त उपाध्यायों ने दुराग्रह से नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप किस तरह मानना बताया है ? इस विषय में आपको सिद्धान्तों के प्रमाण बतलाने उचित है ?

श्रीसमवायांगसूत्र में तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज कृत उसकी टीका में लिखा है कि—मूलपाठ यथा—

समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामन्नपरियागं पाउणित्ता इत्यादि । टीकापाठ यथा—

किल भगवान् पोटिलाभिधानो राजपुत्रो बभूव तत्र च वर्षत्वकोटिप्रव्रज्यां पालितवान् इत्येको भवः

१ततो देवोऽभूदिति द्वितीय भवः२ततो नंदाभिधानो राजसूनुः छत्रानगर्यां जज्ञे इति तृतीयभवः ३ तत्र भवे वर्षलक्षं सर्वदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा दशमे देवलोके पुष्पोत्तरप्रवरपुंडरीकाऽभिधाने देवोऽभूदिति चतुर्थभवः४ततो ब्राह्मणकुंडग्रामे ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य भार्याया देवानंदाऽभिधानायाः कुक्षावुत्पन्न इति पंचमभवः ५ तत्र त्र्यशीतितमे दिवसे क्षत्रियकुंडग्रामनगरे सिद्धार्थमहाराजस्य त्रिशलाभिधानभार्यायाः कुक्षाविन्द्रवचनानुकारिणा हरिणेगमेषिणा नाम्ना देवेन संहृतः तीर्थंकरतया जज्ञे इति षष्ठभवः ६ उक्तभवग्रहणं विना नान्यत् षष्ठं भवग्रहणं श्रूयते भगवतः इति देवभवग्रहणतया व्याख्यातं इति ।

अर्थ—देखिये इन उक्त दोनों पाठों में श्रीगणधर महाराज ने तथा खरतरगच्छनायक नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज ने लिखा है कि श्रमणभगवान महावीरप्रभु तीर्थंकर भवग्रहण करने के पहले छट्टेभव में पोट्टिल नाम के राजपुत्र थे अथवा पोट्टिलभव से पाँचवें भव में देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में उत्पन्न हुए और छट्टेभव में तीर्थंकरभवसे त्रिशलारानीकी कुक्षि में आये तीर्थंकर हुए याने पोट्टिलभव १ देवभव २ नंदनामकभव ३ देवभव ४ देवानंदा ब्राह्मणी के कुक्षि में उत्पत्तिरूपभव ५ त्रिशलारानी के कुक्षि में आये श्रीवीरतीर्थंकर हुए यह छट्टाभव है, इन उक्त भव का ग्रहण किये विना अन्य छट्टाभव भगवान् ने ग्रहण किया सुनने में नहीं आता है, इसलिये छट्टा तीर्थंकर भवग्रहणता में त्रिशलामाता की कुक्षि में भगवान् आये सो कल्याणकरूप ही है, तुम लोग शास्त्रकारों की अपेक्षा को न समझ कर फजूल आग्रह से उसको नीचगोत्रविपाकरूप अकल्याणकरूप पारमार्थिकनिंदनीयरूप कहते हो सो द्वेष से सूत्रविरुद्ध महामिथ्या नवीन-

प्ररूपणा करते हो, क्योंकि इस प्रकार श्रीपरमात्मा के अवतार की निंदा मिथ्यात्वि लोग भी नहीं करते हैं। इत्यलंविस्तरेण किंवहुना ?

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र में शांतिविजयजी लिखते हैं कि नवअंग शास्त्रों की टीका में किसी जगह श्रीमान् अभयदेवसूरिजी ने अपना गच्छ खरतर है ऐसा नहीं लिखा है इसका क्या सबव है ?

[उत्तर] श्रीयुत् शांतिविजयजी से हम भी प्रीतिभावपूर्वक यह पूछते हैं कि आचारांग तथा सूयगड़ांग सूत्र की टीका श्रीशिलांगाचार्य महाराज ने की है और आवश्यक सूत्र तथा दशवैकालिक सूत्र की टीका श्रीहरिभद्रसूरिजी ने की है और पन्नवणा तथा सूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रादि की टीका श्रीमलयगिरिजी महाराज ने बनाई है एवं योगशास्त्रादि के कर्त्ता श्रीहेमचंद्रसूरिजी हुए हैं इसी प्रकार सूत्र, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका, आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों की रचना करनेवाले जो जो प्राचीनकाल में गणधर आदि पूर्वाचार्य महाराज हुए हैं उन लोगों ने अपने रचे हुए सूत्र निर्युक्ति चूर्णि भाष्य टीका आदि सिद्धांतों में (त्तिवेमि) अर्थात् इस प्रकार में बतलाता हूँ इतना मात्र ही मूलसूत्र अध्ययन के अंत में लिखा है तथा निर्युक्ति के अंत में भद्रबाहु निशीथचूर्णि आदि के अंत में जिनदास महत्तराचार्य भाष्य के अंत में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण और योगशास्त्र वृत्ति के अंत में आचार्य हेमचंद्र आचारांग सूयगडांगसूत्र टीकाओं में **कृता चेयं शिलाचार्येण** इत्यादि वाक्यों से शिलाचार्य श्रीआवश्यक टीका आदि ग्रंथों में हरिभद्रसूरि पन्नवणा सूर्यप्रज्ञप्ति आदि टीकाओं में आचार्य मलयगिरि विरचिता इस प्रकार निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकाकार महाराजों ने अपना नाम मात्रही लिखा है परंतु अपना गच्छ कुल शाखा गुरु शिष्य परंपरा नहीं लिखी है तो आपही बतलाइये कि इसका क्या सबव है ? यदि यह कहा जाय कि पूर्वकाल में अपने रचे हुए ग्रंथों में अपना गच्छ आदि लिखने की पद्धति कम थी इसलिये पूर्वकाल के रचे हुवे उक्त ग्रंथों में उक्त आचार्यों ने अपना गच्छ आदि नहीं लिखा तथापि उक्त निर्युक्ति चूर्णि भाष्य टीकाकार महाराजों का गच्छ कुल शाखा और गुरु शिष्य परंपरा अन्य शास्त्रों के आधार से जानी जाती है तो उसी प्रकार जानना चाहिये कि आप के गुरु महाराज श्रीआत्मारामजी का बनायाहुआ जैनकल्पवृक्ष है उसमें श्रीखरतरगच्छकी पट्टावली लिखीहै उसमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीके बड़ेशिष्य श्रीजिनचंद्रसूरिजी और लघुशिष्य नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभ-

सूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि श्रीमत्खरतरगच्छा-धिराज महामान्य श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज की गुरुशिष्य-परंपरा पूर्वापर उक्त नामों को लिख कर जो बतलाई है उसी से स्पष्ट विदित होता है कि नवागटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छवालो की गुरुशिष्य-परपरा में हुए हैं और आपके गुरू श्रीआत्मारामजी ने उस जैनकल्पवृक्ष में खरतरगच्छ की पट्टावली लिखने के समय में उस पट्टा-वली के कथनानुसार संवत् १०८० में नवागटीकाकार के गुरु श्रीजिने-श्वरसूरिजी को खरतर विरुद मिला उसको न लिख कर संवत् १२०४ में नवागसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के प्रशिष्य श्रीजिन-दत्तसूरिजी महाराज से खरतरगच्छ की उत्पत्ति हुई ऐसा जो लिखा है सो तो उस खरतरगच्छ की पट्टावली से विरुद्ध लिखा है, इसलिये इसका विशेष उत्तर आगे चल कर लिखेंगे किंतु तपगच्छ के महाप्रमा-णिक श्रीसोमधर्मगणिजी आदि आपके पूर्वजो ने लिखा है कि—

सूरयोऽभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥ २ ॥

इत्यादि सत्य वचनों से नवागसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में हुए लिखे हैं इस बात को भी आपके गुरुजी ने मंजूर नहीं करके अनेक प्रकार से सिद्धांत-विरुद्ध प्रत्यक्ष महामिथ्याप्ररूपणा शिष्यों के नाम से लिख बतलाई है सो विचारणीय है, देखिये कि श्रीआत्मारामजी ने अपने शिष्य कांतिविजयजी तथा अमरविजयजी के नाम से जैन-सिद्धान्त-विरुद्ध केवल कहने मात्र की जैन-सिद्धान्त-समाचारी नामक पुस्तक बना कर छपवाई है, उस पुस्तक के पृष्ठ ७४ तथा ७५ में लिखा है कि "जिनो के गच्छ में श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज की गुरु-शिष्य-परम्परा मिले तिनों के ही गच्छ में श्रीअभय-देवसूरि महाराज भये ।

उत्तर-हे मित्र ! जो हमने पहिले आपकी पट्टावलियाँ लिख दिखाइयाँ हैं उनके साथ आपका लेख विरुद्धता भजता है। देखिये कि पहली पट्टावली में श्रीअभयदेवसूरिजी को ३६ में पाट उपरि लिखे हैं और दूसरी में ४५ तीसरी में ४६ चतुर्थी में ४३ पचमी में ४६ छट्ठी में ४६ में पाट ऊपरी लिखे हैं। अब इन आपकी पट्टावलियों से आप ही विचारिये कि अनुक्रम से गुरु-शिष्य-परपरा कैसे मिलेगी ?" इस ऊपर

के लेख में जिनों के गच्छ में श्रीअभयदेवसूरिजी इत्यादि कथन शुद्ध समाचारी पुस्तक प्रकाशक खरतरगच्छ के पं० । प्र० । श्रीरायचन्द्रजी का लिखा हुआ ठीक है, क्योंकि उन्होंने अपनी उक्त पुस्तक में श्रीअभयदेवसूरिजी की गुरु-शिष्य-परंपरा शास्त्रपाठों से खरतरगच्छ में मिलती हुई बता कर नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छवालों की गुरु-शिष्य-परंपरा में हुए यह सत्य लिखा है किन्तु आत्मारामजी ने हे मित्र ! जो हमने पहिले आपकी पट्टावलियाँ लिख दिखाइयाँ है— इत्यादि जो उत्तर लेख लिखा है सो सिद्धांत विरुद्ध महामिथ्या है क्योंकि आत्मारामजी ने खरतरगच्छ के नाम से स्वकपोल-कल्पना द्वारा अपनी उक्त पुस्तक में पहली दूसरी तीसरी चौथी पांचवी इन पाँच पट्टावलियों में १२ वें पाट से आगे प्रायः ३०, ४० पाट तक कई अन्य आचार्य महाराजों के नाम लिख कर गुरु-शिष्य-परंपरा-संबंध-रहित अर्थात् एक से एक पाट न मिले वैसी आगम-विरुद्ध लिख दिखाई है । देखिये श्रीकल्पसूत्र में पाठ है कि--

११ थेरे अज्झसुहत्थी वासिट्ठसगुत्ते ॥ थेरस्सणं अज्झसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अंतेवासी १२ दुवे थेरा सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धा कोडिय काकंदगा वग्घावच्चसगुत्ता ॥ थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं अंतेवासी १३ थेरे अज्झइंददिन्ने कोसियगुत्ते ॥ थेरस्सणं अज्झइंददिन्नस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी १४ थेरे अज्झदिन्ने गोयमसगुत्ते ॥ थेरस्सणं अज्झदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी १५ थेरे अज्झसीहगिरि जाइस्सरे कोसियसगुत्ते ॥ थेरस्सणं अज्झसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियसगुत्तस्स अंतेवासी १६ थेरे अज्झवइरे गोयमसगुत्ते ॥ थेरस्सणं अज्झवइरस्स गोयमस

गुत्तस्स अंतेवासी १७ थेरे अज्झवइरसेणे उक्कोसियगुत्ते ॥

इस कल्पसूत्र स्थविरावली (पट्टावली) पाठ मे श्रीदेवर्द्धि गणिक्षमाश्रमणजी महाराज ने लिखा है कि श्रीमहावीरस्वामी से ११ वे पाटे श्रीस्थूलभद्रस्वामीजी के दूसरे शिष्य श्रीसुहस्तिसूरिजी हुए और १२ वे पाटे श्रीसुस्थितसूरिजी हुए जिनसे कोटिगण प्रसिद्ध हुआ सो वर्त्तमान काल में तपगच्छ खरतरगच्छ में शिष्यो की दीक्षादि समय में सबको सुनाया जाता है १३ वे पाटे श्रीइन्द्रदिन्नसूरिजी १४ वें पाटे श्रीदिन्नसूरिजी १५ वे पाटे आचार्य श्रीसिंहगिरिस्वामी १६ वे पाटे श्रीवज्रस्वामी जिनसे वज्रशाखा प्रसिद्ध हुई सो दीक्षा आदि समय मे कहने में आती है १७ वे पाटे श्रीवज्रसेनसूरिजी लिखे हैं, बाद श्रीवज्रसेनसूरिजी के लघु गुरुभाई आर्य श्रीरहसूरिजी से श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने कल्पसूत्र मूलपाठ में अपनी पट्टावली [स्थविरावली] अलग लिखी है टीकाकार महाराजो ने उपर्युक्त श्रीवज्रसेनसूरिजी के श्रीनागेन्द्र १ श्रीचन्द्र २ श्रीनिर्वृत्ति ३ श्रीविद्याधर ४ नाम के यह चार शिष्य हुए लिखे हैं, उनमे से श्रीवज्रसेनसूरिजी के १८ वें पाटे श्रीचन्द्रसूरिजी हुए उन्हीं से चन्द्रकुल प्रसिद्ध हुआ सो तप खरतर गच्छवाले अपने शिष्यों की दीक्षादि के समय में सबको सुनाते हैं इसी तरह अन्य शास्त्रों के आधार से रची हुई तप खरतर आदि गच्छो की पट्टावलियो मे १६ वे पाटे श्रीसामंतभद्रसूरिजी इत्यादि गुरुशिष्य पाट परपरा यावत् ३८ वे पाटे श्रीउद्योतनसूरिजी महाराज पर्यंत समानता से एक ही लिखी है और इन श्रीउद्योतनसूरिजी महाराज ने स्वपर के ८४ शिष्यों को आचार्यपद दिया इसलिये उक्त ३८ वे पाट के बाद तप खरतर आदि गच्छो की पट्टावलियो मे आचार्यो के लिखे हुए नाम अलग अलग हैं जैसा कि खरतरगच्छ की पट्टावलियो मे श्रीउद्योतनसूरिजी के ३६ वे पाटे प्रधान शिष्य श्रीवर्द्धमानसूरिजी ४० वे पाटे श्रीजिनेश्वरसूरिजी ४१ वे पाटे बड़े शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ४२ वे पाटे लघुशिष्य नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी ४३ वे पाटे श्रीजिनवल्लभसूरिजी ४४ वे पाटे श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी की गुरुशिष्यपरंपरा खरतरगच्छ मे मिलती हुई शास्त्रपाठो से समान रूप लिखी है और तप अचल आदि गच्छो की पट्टावलियो में श्रीउद्योतनसूरिजी के पाटे श्रीसर्वदेव-

सूरिजी इत्यादि पाटपरंपरा लिखी है अब देखिये कि आत्मारामजी ने अपने उक्त शिष्यों के नाम से छपवाई हुई जैनसिद्धांत विरुद्ध तपगच्छ समाचारी की उक्त पुस्तक के प्रस्तावना में लिखा है कि खरतरगच्छ की पट्टावलियों की नकल दिखलाते हैं इस प्रकार असत्यलेख लिख कर पाँच पट्टावलियाँ कल्पित लिखी हैं उनमें श्रीमहावीरस्वामी से श्रीसुहस्ति-सूरिजी महाराज पर्यंत ११ पाटों की गुरुशिष्यपरंपरा श्रीकल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार क्रम से सत्य लिखी है किंतु १२ वें पाटे श्रीवज्रस्वामी १३ वें पाटे कालकाचार्य १४ वें पाटे गर्दभिलोच्छेदक दूसरा कालकाचार्य १५ वें पाटे शांतिसूरि १६ वें पाटे हरिभद्रसूरि इत्यादि परस्पर गुरुशिष्यादि संबंधरहित विचारशून्यता से अन्य आचार्यों के नामों से पाटों का जो क्रम लिख दिखाया है सो तो प्रत्यक्ष उपर्युक्त श्रीकल्पसूत्रस्थविरावली पाठ से विरुद्ध लिखा है तथा आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक में कल्पित पहिली पट्टावली में श्रीवज्रस्वामी को १२ वें पाट उपरि लिखे हैं और दूसरी में २२ वें पाटे तीसरी में लिखे ही नहीं चतुर्थी में २० वें पाटे पंचमी में २३ वें पाट उपरि स्वकपोलकल्पना से लिख बताये हैं सो मिथ्या है क्योंकि उपर्युक्त कल्पसूत्रस्थविरावली पाठ के अनुसार सब पट्टावलियों में श्रीवज्रस्वामी को १६ वें पाट उपरि लिखे हैं। इसी तरह आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक में कल्पित पहली पट्टावली में श्रीउद्योतनसूरिजी को ३२ वें पाट ऊपरि लिखे हैं और दूसरी में ४१ वें पाटे तीसरी में १२ वें पाटे चतुर्थी में ३६ वें पाटे पंचमी में ४२ वें पाट उपरि लिख बतलायें है सो मिथ्या है क्योंकि वीरप्रभु से आचार्यों की पाट परंपरा के लेख से श्रीउद्योतनसूरिजी को खरतर आदि गच्छों की पट्टावलियों में ३८ वें पाटे लिखे हैं, सो शास्त्रसंमत सत्य है। इसी प्रकार आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक में पट्टावली में लिखे हुए आचार्यों के नाम (पाट) त्याग कर अनेक अन्य आचार्यों के (नाम) पाटों का प्रक्षेप करके कल्पित पहली पट्टावली में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी को ३६ वें पाट ऊपरि लिखे हैं और दूसरी में ४५ वें पाटे तीसरी में १६ वें पाटे चतुर्थी में ४३ वें पाटे पंचमी में ४६ वें पाट ऊपरि लिखे हैं, सो असत्य है, क्योंकि खरतरगच्छ की पट्टावलियों में शास्त्रपाठों के अनुसार श्रीजिनेश्वरसूरिजी के शिष्य नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी को ४२ वें पाट ऊपरि लिखे हैं सो सत्य है और आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक की प्रस्तावना के पृष्ठ २२ में छपवाई हुई खरतरगच्छ की छठी पट्टावली है सो श्रीकल्प-

सूत्र स्थविरावली तथा जीर्ण पट्टावली और अन्य शास्त्रपाठों के अनुसार सत्य है और वह पट्टावली खरतरगच्छ के वाचक श्रीक्षमाकल्याणगणिजी की रची हुई पुस्तको के अनेक भडारों मे विद्यमान है, उसमें ३२ वे पाटे श्रीजयानंदसूरिजी ३३ वें पाटे श्रीरविप्रभसूरिजी लिखे हुए हैं और तपगच्छ की पट्टावली में भी इन आचार्यों के नाम लिखे हैं तथापि इन दो आचार्यों के नाम उपरि आत्मारामजी ने अपने ढूँढियेपने के स्वभाव से सपेटा लगा के उन दो आचार्यो के नाम नकल में लिखने और छपवाने छोड कर उक्त पुस्तक के पृष्ठ २७ में झूँठा ही लिख दिया है कि "श्रीक्षमाकल्याणगणि ने एक जीर्ण पट्टावली के आचार्यों के नाम उपरि सपेटा लगा के पूर्वोक्त वृद्धगच्छ पट्टावली के सदृश आचार्यों के नाम लिखे हैं, और उक्त पुस्तक की प्रस्तावना मे छट्ठी पट्टावली की जो नकल छपवाई है उसके पहले पृष्ठ ७ में लिखा है कि "खरतरगच्छ की पुरानी पट्टावलियों की नकल नीचे लिख कर दिखलाते हैं" इस प्रकार से प्रथम झूठा लेख लिखकर पाँच पट्टावलियाँ अन्य आचार्यो के पाटो का प्रक्षेप करके आत्मारामजी ने अपनी मति कल्पना से कल्पित छपवाई है और अज्ञजीवो को भरमाने के लिये तथा आप निर्दोषी बनने के लिये आत्मारामजी ने जीर्णपट्टावली के आचार्यों के नामो पर सपेटा लगाके अन्य आचार्यों के नाम लिखे हैं तथा छपाई हुई कल्पित पाँच पट्टावलियो को पुराने जीर्णपत्रो में खरतरगच्छवालों के नाम से किसी दूसरे के हाथ से अपनी ढुढकपने की चतुराई से लिखवा के आत्मारामजी ने वह पट्टावलियाँ अपने पास रक्खीं, इसीलिये आत्मारामजी के उक्त दोनों शिष्यो ने उक्त पुस्तक के पृष्ठ २६ में लिखा है कि " यह पूर्वोक्त सर्व पट्टावलियाँ हमारे गुरु महाराज श्रीआत्मारामजी के पास विद्यमान हैं, जिसको शंका होवे सो आकर देख लेवे" और सर्व पट्टावलिया लिखने का प्रयोजन यही है कि इन पट्टावलियों मे १२ बारहवे पाट से आगे प्रायः ३०—४० पाट तक एक से एक पाट नहीं मिलते हैं और आपस आपस मे पट्टावलियाँ विचारने से यही सिद्ध होता है कि स्वकपोलकल्पना से जो जो प्रसिद्ध और प्रभावक आचार्य हुए हैं तिन सबका नाम लिखा मालुम होता है, परंतु खरतरगच्छ यथावस्थित परंपरा से चला आया ऐसा सर्वथा प्रकार से मालुम नहीं होता है, जेकर यह पट्टावलियाँ श्रीआत्मारामजी को जैनमत वृक्ष बनाने से पहिले मालुम होतियाँ तो इस वृक्ष की शाखा मे भी लिखने का विचार ही हो जाता क्योंकि यह सर्व पट्टावलियाँ प्रमाणिक नहीं होने से।"

फिर आगे पूर्व पक्ष कल्पित खड़ा करके लिखा है कि "यह सर्व पट्टावलियाँ एक पीछे की छट्टी पट्टावली वर्ज के मिथ्या स्वकपोलकल्पित किसी खरतरगच्छवाले अज्ञानियों ने लिखियाँ है ऐसा हम मानते हैं।"

फिर आगे उत्तर पक्ष द्वारा असत्य प्रलाप लिख बताया है कि-"हे मित्रो! पिछली ही प्रमाण है इसमें तुमारे पास क्या दृढ़ प्रमाण है कि जिसके बल से तुम पाँच पट्टावलियाँ को मिथ्या स्वकपोलकल्पित मान के एक पिछली ही सत्य मानते हो? क्योंकि जिस पिछली पट्टावली के अनुसार श्रीआत्मारामजी ने वृक्ष में खरतर शाखा की पट्टावली लिखी है वह पट्टावली श्रीक्षमाकल्याणगणिजी की रची हुई श्रीआत्मारामजी महाराज के पास है" इत्यादि तथा श्रीआत्मारामजी को और उनके शिष्य प्रशिष्यों को श्रीकल्पसूत्र में श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी की १५०० वर्ष की लिखी हुई (स्थविरावली) पट्टावली का ज्ञान तथा अनेक जीर्ण पट्टावली आदि शास्त्रों का पूरा पूरा ज्ञान न होने से आत्मारामजी ने उक्त शिष्यों के द्वारा खरतरगच्छ के नाम से अपने मनःकल्पित पाँच पट्टावलियाँ लिख कर उक्त पुस्तक के पृष्ठ २७ में यह लिखा है कि "अपनी मनमानी छट्टी पट्टावली (श्री-क्षमाकल्याणगणिजी की लिखी हुई) के सदृश ४०० सौ वा ५०० सौ वर्ष की लिखी हुई जीर्ण खरतरगच्छ की पट्टावली दिखाने का अनुग्रह करोगे तो हे प्रिय बांधव खरतरगच्छियों! तुमारा प्रधान उपकार मानने में आवेगा और श्रीआत्मारामजी की सर्व शिष्यों सहित शंका दूर हो जावेगी जेकर ४०० सौ वा ५०० वर्ष की लिखी हुई नहीं दिखलाओगे तब तो श्रीआत्मारामजी ऐसे मानेंगे कि खरतगच्छ के आचार्य साधु अपनी अव्यवच्छिन्न परंपरा से चले आते हैं परंतु किसी सबब से इनको पूर्वली पट्टावली की पूरी पूरी खबर नहीं है नहीं तो एक से एक भिन्न और सर्वथा अव्यवस्थित पट्टावलियाँ न लिखते।" यह उपर्युक्त सब कथन केवल कपट रचना से आत्मारामजी ने मिथ्या लिखा है क्योंकि उपर्युक्त आत्मारामजी के भाषा लेख से भी स्पष्ट विदित होता है कि आत्मारामजी ने उक्त शिष्यों के नाम से अपने हाथ से कल्पित लिखी हुई पाँच पट्टावलियों को स्वकपोलकल्पित ठहराई है तथा प्रमाणिक नहीं, ऐसी बतलाई है। और आपने श्रीकल्पसूत्र स्थविरावली विरुद्ध अपने हाथ से उक्त कल्पित पाँच पट्टावलियाँ लिखने का अनुचित कृत्य करके निर्दोषित बनने के लिये आपने लिख दिखलाया है कि— "मिथ्या स्वकपोलकल्पित किसी खरतरगच्छवाले अज्ञानियों ने लिखियाँ

है" परंतु बुद्धिमान् समझ सक्ते हैं कि आत्मारामजी ने द्वेषभाव तथा खरतरगच्छ की गुरुशिष्यपरंपरा में नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज नहीं हुए, इस महामिथ्या कदाग्रह को दिखलाने के लिये मन कल्पित नवीन पॉच पट्टावलियॉ तथा उन पट्टावलियों में आचार्यों की कमती वेसी कल्पित पाट संख्या जो लिख वतलाई है वह यदि सत्य होती तो उपर्युक्त श्रीकल्पसूत्र (स्थविरावली) पट्टावली पाट में वेसे ही पाटानुक्रम से आचार्यों के नाम श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी महाराज लिखते तथा श्रीक्षमाकल्याणगणिजी भी अपनी लिखी हुई संस्कृत पट्टावली में वेसीही आचार्यों की पट्टावली तथा पाट संख्या लिखते, परंतु उक्त महाराजों ने आत्मारामजी की तरह मन कल्पित असत्य पट्टावली नहीं लिखी है, इसी से सिद्ध होता है कि श्रीक्षमाकल्याणगणिजी ने श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी आदि अपने पूर्वजों की लिखी हुई जीर्ण पट्टावलियों के अनुसार पट्टावली लिख बताई है और वह पट्टावली श्रीकल्पसूत्रस्थविरावली तथा जीर्णपट्टावली आदि अनेक शास्त्रों के दृढ़ प्रमाणों से सर्वथा प्रकार से सत्य है। और उक्त लेख में आत्मारामजी ने कल्पित पाच पट्टावलियां लिखने का अपना मतलब दिखलाया है कि "खरतरगच्छ यथावस्थित परंपरा से चला आया ऐसा सर्वथा प्रकार से मालुम नहीं होता है" यह जो लिखा है सो महामिथ्या है, क्योंकि खरतरगच्छ के श्रीक्षमाकल्याणगणिजी महाराज विरचित पट्टावली के अनुसार श्रीमहावीरस्वामी से आज दिन पर्यंत खरतरगच्छवालों की यथावस्थित परंपरा चली आई प्रत्यक्ष दिखती है किंतु जैनसिद्धांतसमाचारी नाम की छपवाई हुई पुस्तक में आत्मारामजी ने अपनी मतिकल्पना से कल्पित पाच पट्टावलिया छपवाई है उनमें १२ वें पाट से आगे प्राय ३०—४० पाट तक एक से एक पाट नहीं मिले, वेसे गुरु या गुरुभाई या शिष्य प्रशिष्य आदि संबंधरहित अन्य आचार्यों के कमती वेसी नाम मात्र लिखकर श्रीउद्योतनसूरिजी महाराज को पहिली पट्टावली में ३२ वें पाट उपरि लिखे है और दूसरी में ४१ वें पाट तीसरी में ७२ वे पाट चतुर्थी में ३६ व पाट पचमी में ४२ वे पाट लिखे हैं और जैनतत्त्वादर्श पुस्तक में तथा जैनमत वृक्ष में आत्मारामजी ने तपगच्छ की पट्टावली छपवाई है उस छट्ठी पट्टावली में श्रीउद्योतनसूरिजी को ३५ वे तथा २४ वे पाट ऊपरि लिखे है इसीलिये इन छ पट्टावलियों में वारवें पाट से आगे प्राय ३०—४० पाट तक याने श्रीउद्योतनसूरिजी पर्यंत एक से एक पाट नहीं मिलते है उसको

पढ़ कर आत्मारामजी के शिष्य प्रशिष्यों की शंका दूर किस तरह होवेगी वा सत्यासत्य का निर्णय किस शास्त्र प्रमाणों से करेंगे क्योंकि श्रीमहावीरस्वामी से श्रीउद्योतनसूरिजी पर्यंत गुरुशिष्य पाट परंपरा तपगच्छवाले भी अपनी मानते हैं इसीलिये इस विषय का सत्यासत्य निर्णय आत्मारामजी के शिष्य प्रशिष्य नहीं करेंगे तब तो सब लोग ऐसा ही मानेंगे कि तपगच्छ यथावस्थित परंपरा से चला आया ऐसा सर्वथा प्रकार से मालूम नहीं होता है इसीलिये तपगच्छवालों को अपने पूर्वज श्रीउद्योतनसूरिजी के पहिले की पट्टावली की पूरी पूरी खबर नहीं है नहीं तो श्रीमहावीरस्वामी से श्रीउद्योतनसूरिजी पर्यंत अपनी पाट परंपरा मानते हुए भी आत्मारामजी एक से एक भिन्न तथा सर्वथा अव्यवस्थित पाट परंपरा नहीं लिखते इसलिये यह कहलावत भी ठीक मिलती है कि "तालों से चूकी डूमणी गावें आल पताल" अस्तु अब आगे महाशय ! शांतिविजयजी ! टुक विचार से देखिये कि आत्मारामजी ने अपनी रची हुई जैनसिद्धांत समाचारी नामक पुस्तक में उपर्युक्त श्रीकल्पसूत्र स्थविरावली सिद्धांत पाठ विरुद्ध अपनी मतिकल्पना से कल्पित पाँच पट्टावलियाँ तथा श्रीक्षमाकल्याण-गणिजी की रची हुई शास्त्रसंमत छट्ठी पट्टावली लिख दिखलाई है उनमें भी श्रीउद्योतनसूरिजी के पाटे प्रधान शिष्य श्रीवर्द्धमानसूरिजी उनके पाटे श्रीजिनेश्वरसूरिजी उनके पाटे बड़े शिष्य श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी उनके पाटे लघु गुरुभाई श्रीजिनेश्वरसूरिजी के लघु शिष्य नवांग-सूत्र टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके पाटे श्रीजिनवल्लभसूरिजी उनके पाटे श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि पूर्वापर उक्तनामों से खरतर-गच्छोन्नतिकारक नवांगसूत्र टीकाकार महाप्रभावक श्रीमद्अभयदेव-सूरिजी के पदादागुरु, दादागुरु, तथा गुरु और शिष्य, प्रशिष्य, आदि गुरुशिष्य परंपरा खरतरगच्छ में मिलती हुई अनेक ग्रंथों की प्रशस्तियों के अनुसार आत्मारामजी ने तथा श्रीक्षमाकल्याणगणीजी ने सत्य लिखी है उससे भी स्पष्ट मालूम होता है कि श्रीनवांगसूत्र टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालों की गुरु शिष्य परंपरा में ही हुए हैं तथापि आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ७८ में लिखा है कि "श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में हुए ऐसा कैसे सिद्ध करते हो" और पृष्ठ ७५ में लिखा है कि "अनुक्रम से गुरुशिष्य परंपरा कैसे मिलेगी" यह कथन खरतरगच्छ में नवांग-सूत्रटीकाकार होने से खरतरगच्छ की अधिक शोभा सहन नहीं होने के कारण सत्य बात में भी विघ्नरूप तथा शास्त्र विरुद्ध हठ-

कदाग्रह से मृषाप्रलापरूप ही लिखा है क्योंकि निम्नलिखित शास्त्रपाठ प्रमाणों से नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी की गुरुशिष्य-परंपरा खरतरगच्छ में ही मिलती है अन्य गच्छ में नहीं, इसीलिये श्रीअभयदेव-सूरिजी महाराज खरतरगच्छवालों की गुरुशिष्य परम्परा मे ही हुए हैं अन्य गच्छ में नहीं । देखिये श्रीठाणांगसूत्र टीका की प्रशस्ति में श्री-अभयदेवसूरिजी महाराज ने अपनी गुरुशिष्यपरंपरा उपर्युक्त ही लिख दिखलाई है तत्संबंधी पाठ यथा—

इति श्रीमदऽभयदेवसूरिविरचिते स्थानाख्य तृतीयांगविवरणे दशमस्थानकाख्यं दशममध्ययनं समाप्तमिति तत्समाप्तौ च समाप्तं स्थानांगविवरणं तथाच यदादावभिहितं स्थानांगस्य महानिधानस्येवोन्मुद्रणमिवानुयोगः प्रारभ्यते इति तच्चन्द्रकुलीन प्रवचन प्रणीताऽप्रतिबद्ध—विहारहारिचरित—श्रीवर्द्धमानाऽभिधान—मुनिपतिपादोपसेविनः प्रमाणादि व्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबंधप्रणयिनः प्रबुद्धप्रतिबंधकप्रवक्तृप्रवीणाऽप्रतिहतप्रवचनार्थ—प्रधानवाक्प्रसरस्य सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य च व्याकरणादिशास्त्रकर्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचंचरीककल्पेन श्रीमदऽभयदेवसूरिनाम्ना मया श्रीमहावीरजिनराजसंतानवर्त्तिना महाराजवंशजन्मनेव संविग्नमुनिवर्गप्रवर—श्रीमज्जिनचन्द्राचार्यान्तेवासि—यशोदेवगणि नामधेयसाधोरुत्तरसाधकस्येव विद्याक्रियाप्रधानस्य साहाय्येन समर्थितं तदेवं सिद्धमहानिधानस्येव समापिताधिकृताऽनुयोगस्य मम मंगलार्थं पूज्यपूज्याः भवंतु ।

भावार्थ—इस प्रकार श्रीमद्अभयदेवसूरिजी महाराज विरचित स्थानांग नाम का तीसरे सूत्र की टीका में दशमास्थान नामक दशमा अध्ययन समाप्त हुआ, उसकी समाप्ति होने पर श्रीस्थानांगसूत्र की टीका समाप्त हुई तथा प्रथम जो कहा था कि स्थानांगसूत्र का महानिधान की तरह प्रकाश करनेरूप [अनुयोग] टीका प्रारंभ करते हैं वह टीका चंद्रकुल के तथा सिद्धांत प्रणीत अप्रतिबद्ध विहार से मनोहर चरित्रवाले श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराज के शिष्य जोकि प्रमाणादि प्रतिपादन द्वारा श्रेष्ठप्रकरण ग्रंथों की रचना के करनेवाले और बुद्धिमान् वादी वक्ताओं में प्रवीणता द्वारा अप्रतिहत (अर्थात् परवादी खंडन न कर सके इस प्रकार के शास्त्रार्थ द्वारा प्रधान) है वाणी का प्रसार जिनका तथा सुविहित मुनियों में प्रधान ऐसे श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज के तथा उनके लघुगुरुभाई जोकि व्याकरण आदि शास्त्रकर्त्ता श्रीबुद्धिसागरसूरिजी महाराज के अर्थात् उक्त दोनों महाराजों के चरणकमल में भमरे के तुल्य शिष्य श्रीमत्अभयदेवसूरि नाम के जोकि श्रीमहावीरजिनराज की शिष्यपाटपरंपरा में वर्तनेवाले तथा उक्त प्रभु के वंश में जन्म धारण करनेवाले मैंने [श्रीअभयदेवसूरिजी ने] संविग्नमुनिगण में श्रेष्ठ श्रीमज्जिनचंद्रसूरिजी का [अंतेवासी] याने श्रीअभयदेवसूरिजी के वड़े गुरुभाई श्रीजिनचंद्रसूरिजी का शिष्य श्रीयशोदेवगणि नामके साधु जोकि उत्तर साधक की तरह विद्या क्रिया में प्रधान उनकी साहाय्य से श्रीस्थानांगसूत्र की टीका रची वह इस प्रकार से सिद्ध हुआ है महानिधान जिसको ऐसे पुरुष की तरह समाप्त की है स्थानांगसूत्र की टीका जिसने ऐसा मेरे को पूज्यों के पूज्य मंगल के लिये हों।

और भी देखिये कि तपगच्छ के श्रीमुनिसुंदरसूरिजी महाराज ने स्वविरचित्त उपदेशतरंगिणी ग्रंथ में स्तुतिपूर्वक नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी की तथा उनकी शिष्य प्रशिष्य परंपरा को इस तरह लिखी है कि—

व्याख्याताऽभयदेवसूरिरमलप्रज्ञो नवांग्याः पुनः
भव्यानां जिनदत्तसूरिरददीक्षां सहस्रस्य तु ।
प्रौढिं श्रीजिनवल्लभो गुरुरधाद् ज्ञानादिलक्ष्म्या पुनः

ग्रंथान् श्रीतिलकश्चकार विविधान् चन्द्रप्रभाचार्य वत् ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रीखरतरगच्छ में श्रीमत् अभयदेवसूरिजी महाराज ने नवांगी की व्याख्या [टीका] की उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज [श्री] लक्ष्मी के तिलक समान हुए जिन्हों ने ज्ञानादि लक्ष्मी से प्रोढ़ता को धारण की और चन्द्रप्रभाचार्य की तरह विविध ग्रंथों को करते भये उनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज एक हजार भव्य जीवों को दीक्षा देते भये इत्यादि अधिकार बहुत जैनशास्त्रों में लिखा हुआ प्रसिद्ध है।

प्रियपाठकगण! उपर्युक्त पाठों से स्पष्ट विदित होता है कि श्री॰ वर्द्धमानसूरिजी श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी श्रीअभयदेव-सूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि गुरु शिष्य पाट परंपरा तपगच्छीय लोग श्रीखरतरगच्छवालों की बतलाते हैं और इस पाटपरंपरा में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज हुए लिखे हैं तो फिर खरतरगच्छ वालों की गुरु शिष्य-पाट-परंपरा में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज को तपगच्छवाले नहीं हुए कहते हैं सो यह कथन तपगच्छवालों के मुख से सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो चुका या नहीं? और भी देखिये कि संस्कृत पट्टावली आदि अनेक ग्रंथों के अनुसार खरतरबिरुद संवत् १०८० में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी के गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज से प्रसिद्ध हुआ है तथापि शास्त्रविरुद्ध केवल कहने मात्र जैनसिद्धांतसमाचारी नामक पुस्तक की प्रस्तावना के प्रथम प्रारंभ में ही लिखा है कि "मुनि श्रीआत्मारामजी ने जो जैनतत्वादर्श १ अज्ञानतिमिरभास्कर २ और जैनमतवृक्षादि संस्कृतादि पुस्तकानुसार जैनधर्मियों के पढ़ने वास्ते भाषा में रचे हैं तिनमें जो खरतरगच्छ की उत्पत्ति संवत् १२०४ में श्रीजिनदत्तसूरिजी से लिखी है" फिर आगे इसी पुस्तक के पृष्ठ ७४ में लिखा है कि "हे मित्र जब हमने आपको खरतरगच्छ की उत्पत्ति १२०४ में सिद्ध कर दिखाई तो फिर काहे का श्रीअभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छ में होने की सिद्धि का प्रयास लेते हो क्योंकि श्रीअभयदे-वसूरिजी तो पहिले हुए हैं" इन दोनों लेखों को शास्त्र द्वारा विचारने से यही निश्चय होता है कि आत्मारामजी ने बालजीवों को भ्रमाने के लिये असत्य लेख तथा महामिथ्या दुराग्रह ही प्रकाशित किया है

क्योंकि संस्कृत आदि पुस्तकों में कोई भी सत्यवक्ताओं ने १२०४ में नवांगसूत्रटीकाकार महाराज के प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति हुई नहीं लिखी है किंतु आत्मारामजी ने धर्मसागर आदि असत्य वक्ताओं का शरण द्वारा संवत् १२०४ में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति असत्य लिखी है तथापि खरतरगच्छ में श्रीजिनदत्त सूरिजी के दादा गुरु नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी नहीं हुए अथवा खरतरगच्छवालों के पूर्वज गुरु दादागुरु इत्यादि पाट परंपरा में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज नहीं हुए इस प्रकार की महामिथ्या शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा मिथ्या प्रलापी दुराग्रही के विना अन्य कौन बुद्धिमान् सत्यवक्ता करेगा? क्योंकि उपर्युक्त पाठ में तपगच्छ के श्रीमुनिसुंदरसूरिजी ने खरतरगच्छ में श्रीजिनदत्तसूरिजी के दादागुरु तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी के गुरु नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी हुए यही शास्त्रसंमत सत्य बात लिख दिखलाई है तथापि आत्मारामजी ने अपने गच्छ के धर्मसागर गणी नामक असत्यवक्ता के अनुसरण द्वारा जैनसिद्धान्त विरुद्ध केवल कहने मात्रकी जैनसिद्धांतसमाचारी नामक पुस्तक के पृष्ठ २८ में केवल मिथ्या प्रलाप द्वारा अपने ही मुख से अपनी झूठी बड़ाई शुद्ध समाचारी प्रकाशक खरतरगच्छ के पं०प्र०रायचंद्रजी को लिखदिखलाईहै कि "श्रीआत्मारामजी के रचे ग्रंथों में से संवत् १२०४ की खरतरगच्छोत्पत्ति वांच के आपको इतना प्रयास करना पड़ा यह श्रीआत्मारामजी का यथार्थ दो अक्षर का लिखान भी हृदय में धारण न कर सके" तथा पृष्ठ ४ में लिखा है कि "श्रीआत्मारामजी का लेख असत्य न समझना क्योंकि श्रीआत्मारामजी ने जो संवत् १२०४ में खरतर विरुद की उत्पत्ति लिखी है सो कितने ही ग्रंथानुसार लिखी है" फिर आगे चलकर पृष्ठ ६ में लिखा है कि "श्रीधर्मसागरजी ने जो खरतरगच्छ की उत्पत्ति संवत् १२०४ में लिखी है सो स्वकपोलकल्पित नहीं लिखी है" इस प्रकार बड़े ज्ञानी और बड़े सत्यवादी के ढंग से लंबे चौड़े लेख लिख कर पृष्ठ १० में लिखा है कि—

वेदाभ्रारुण १२०४ काल उष्ट्रिकभवो।

इस प्रत्यक्ष द्वेषयुक्त महामिथ्या वाक्य से अपना लेख सत्य तथा यथार्थ और कपोलकल्पनारहित अपने मनसे ही मान लिया तो क्या

बुद्धिमान् सत्यवादी पुरुष मान लेंगे ? कदापि नहीं, क्योंकि यह उपर्युक्त वाक्य प्रत्यक्ष द्वेष तथा निंदा सूचक है इसीलिये यह वचन अवश्य महामिथ्या माना जायगा और अल्पबुद्धि उत्तम जीव भी ऐसे द्वेष निंदा वाची असत्य वाक्य में प्रतीत कदापि नहीं करेगा अतएव उपर्युक्त महाशयों का स्वकपोलकल्पित लेख भी महामिथ्या प्रलाप रूपही माना जायगा क्योंकि उक्त वाक्य में श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ वा खरतर विरुद् की उत्पत्ति हुई यह अक्षर वा अर्थ सर्वथा नहीं है तथा संवत् १५०० सो के लग भग हुए श्रीमुनिसुन्दरसूरिजी ने नवाग-टीकाकार तथा उनके उक्त शिष्य प्रशिष्य की स्तुति की है और उन्हो ने अपनी रची हुई तपगच्छ की पट्टावली में उपर्युक्त महामिथ्या वाक्य नहीं लिखा है किंतु स्वकपोलकल्पना से धर्मसागरगणी आदि ने स्वरचित नवीन पट्टावली आदि ग्रंथों में द्वेष से लिखा है इसीलिये उक्त वाक्य का अर्थ धर्मसागरजी आदि के पूर्वज श्रीजगचन्द्रसूरिजी से वा उनके गुरु से संवत् १२०४ में उष्ट्रिक मतकी उत्पत्ति हुई इस लेख को परम सत्य समझ कर आत्मारामजी के उक्त दोनों शिष्य स्वीकार करें अन्यथा अपने उक्त लेखों को झूठा समझें क्योंकि आपने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ५ में लिखा है कि "तुमारे कहने मूजिब तो संवत् १०८० में श्रीजिनेश्वरसूरिजी को दुर्लभ राजा की सभा में चैत्यवासियो को जीतने से खरतर विरुद मिला" यह वृत्तांत सत्य है तथापि इस सत्य वृत्तांत को भी मिथ्याप्रलाप द्वारा असत्य ठहराने के लिये आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ६ में लिखा है कि "संवत् १०६६ में दुर्लभराजा राजगद्दी ऊपर बैठा और ११ वर्ष ६ मास राज्य करके संवत् १०७७ में मृत्यु हुआ जब संवत् १०८० में दुर्लभराजा ही नहीं था तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज को खरतर विरुद किसने दिया" तथा इसी ६ में पृष्ठ में लिखा है कि "प्रभावक चरित्र में जहाँ श्रीजिनेश्वरसूरिजी का चरित कथन किया है और रुद्रपल्लीयगच्छाचार्य श्रीसंघतिलकसूरिजी ने सम्यक्त सप्ततिसूत्र की वृत्ति में जहाँ श्रीजिनेश्वरसूरिजी का चरित कथन किया है तहाँ तो, न चैत्यवासियों के साथ विवाद हुआ लिखा है और न तो खरतर विरुद् राजा दुर्लभ ने दिया लिखा है तो फिर तुमने कैसे मान लिया कि श्रीदुर्लभराजा ने संवत् १०८० में श्रीजिनेश्वरसूरिजी को खरतर विरुद दिया था खरतरगच्छियो के विना अन्य किसी गच्छवालो ने किसी ग्रंथ में पूर्वोक्त विरुद् पूर्वोक्त आचार्य जीको मिला लिखा होवे तो हमको कोई विवाद नहीं है।" यह लेख भी

महामिथ्या लिखा है क्योंकि आपने मिथ्या लेख द्वारा धर्मसागरजी के लिखे हुए उपर्युक्त द्वेष निंदासूचक मिथ्या वाक्य से श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति हुई यह असत्य लिखा है देखिये आपके तपगच्छ के श्रीसोमधर्मगणीजी ने सूरयोऽभयदेव इत्यादि उपर्युक्त श्लोक में श्रीजिनदत्तसूरिजी के दादा गुरु नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज से खरतरगच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ लिखा है आप अपने गच्छ के महान् पूर्वजों के शास्त्रसंमत सत्य वचनों को भी नहीं मानकर मिथ्या विवाद करते हैं तो अन्य गच्छवालों के सत्य वचन क्या मानोगे ? नहीं अस्तु आपने दुर्लभराजा का मृत्यु तथा चैत्यवासियों के साथ विवाद न हुआ इत्यादि जो लिखा है सो महामिथ्या लिखा है देखिये प्रभावक चरित्र में श्रीदुर्लभराजा जीवता हुआ था और चैत्यवासियों के साथ विवाद हुआ लिखा है कि—

जिनेश्वरस्ततः सूरिरपरो बुद्धिसागरः ।
नामभ्यां विश्रुतौ पूज्यैर्विहारेऽनुमतौ तदा ॥१॥

भावार्थ—सूरिपद में स्थापन करने के अनंतर श्रीजिनेश्वरसूरिजी और श्रीबुद्धिसागरसूरिजी नाम से प्रसिद्ध यह दोनों महात्मा गुरु महाराज श्रीवर्द्धमानसूरिजी की आज्ञा से विहार करने को (अनुमत) संमत हुए ॥ १ ॥

ददे शिक्षेति तैः श्रीमत्पत्तने चैत्यसूरिभिः ।
विघ्नं सुविहितानां स्यात्तत्रावस्थानवारणात् ॥२॥
युवाभ्यामपनेतव्यं शक्त्या बुद्ध्या च तत्किल ।
यदिदानींतने काले नास्ति प्राज्ञो भवत्समः ॥३॥

अर्थ—उस समय में उक्त दोनों शिष्यों को इस प्रकार की शिक्षा उक्त गुरु महाराज ने दी कि श्रीपाटणशहर में रहनेवाले चैत्यवासी आचार्यों से (सुविहित) उत्तम आचरणवाले मुनियों को विघ्न होता है क्योंकि उक्त नगर में वह चैत्यवासी यतिलोग उत्तम आचरणवाले मुनियों को रहने को मना करते हैं इसलिये तुम दोनों अपनी बुद्धि तथा शक्तिद्वारा उस विघ्न को निश्चय दूर करना चाहिये क्योंकि इस काल में तुम लोगों के समान दूसरा कोई पंडित नहीं है ॥ २ ॥ ३ ॥

अनुशास्ति प्रतीच्छाव इत्युक्त्वा गुर्जरावनौ ।
विहरन्तौ शनैः श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा ॥ ४ ॥

अर्थ—इस बात को सुन कर उक्त दोनों शिष्य बोले कि हम लोग आपकी शिक्षा को इच्छते हैं ऐसा कह कर धीरे धीरे गुर्जर देश में विहार करते हुए प्रसन्नता से श्रीपाटणनगर में पहुँचे ॥ ४ ॥

सद्गीतार्थपरीवारौ तत्र भ्रांतौ गृहे गृहे ।
विशुद्धोपाश्रयाऽलाभाद्वाचां सस्मरतुर्गुरोः ॥५॥

अर्थ—श्रेष्ठगीतार्थपरिवारवाले उक्त दोनो आचार्य महाराजों ने पाटणशहर के प्रतिगृह मे भ्रमण किया परन्तु रहने योग्य विशुद्ध उपाश्रय न मिलने से अपने गुरु महाराज की वाणी को स्मरण करते भये ॥ ५ ॥

श्रीमान् दुर्लभराजाख्य स्तत्रासीच्चविशांपतिः ।
गीःपतेरप्युपाध्यायो नीतिविक्रमशिक्षणात् ॥६॥

अर्थ—उस नगर में श्रीमान् दुर्लभ नाम का राजा राज्य करता था वह नृपति नीति और पराक्रम द्वारा शिक्षा देने में बृहस्पति का भी उपाध्याय सदृश था ॥ ६ ॥

श्रीसोमेश्वरदेवाख्य स्तत्र चासीत्पुरोहितः ।
तद्गृहे जग्मतुर्युग्मरूपौ सूर्यसुताविव ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रीसोमेश्वरदेव नामका राजपुरोहित वहाँ रहता था उसके गृह में सूर्य पुत्र के समान तेजस्वी दोनो महात्मा गये ॥ ७ ॥

तद्द्वारे चक्रतुर्वेदोच्चारं संकेतसंयुतं ।
तीर्थं सत्यापयंतौ च ब्राह्म्यं पैत्र्यं च दैवतम् ॥८॥

अर्थ—राजपुरोहित के द्वारपर जाकर तीर्थ और ब्राह्म्यकर्म तथा पितृकर्म एवं देव कर्मो की प्रशंसा करते हुए [संकेत संयुक्त] स्वरादि सयुक्त वेदोच्चारण करते भये ॥ ८ ॥

चतुर्वेदीरहस्यानि सारणीशुद्धिपूर्वकम् ।
व्याकुर्वन्तौ स सुश्राव देवतावसरे ततः ॥९॥

अर्थ—वेदोच्चारण के अनंतर शारणी की शुद्धिपूर्वक चारों वेदों के रहस्य को बोलते हुए उक्त दोनों आचार्यों को उस राजपुरोहित ने देव पूजन के समय में सुने ॥ ९ ॥

तद्ध्वानध्याननिर्मग्नचेतास्तंभितवत्तदा ।
समग्रेन्द्रियचैतन्यं श्रुत्योरेव स नीतवान् ॥१०॥

अर्थ—उस समय मंत्रस्तंभित पुरुष की तरह उक्त दोनों महात्माओं के उच्चारण किये शब्दों के ध्यान में मग्नचित्त वाला राजपुरोहित ने अपने समस्त इन्द्रियों का [चैतन्य] उपयोग दोनों कानों में प्राप्त किया ॥ १० ॥

ततो भक्त्या निजं बंधुमाप्याय वचनामृतैः ।
आह्वानाय तयोः प्रैषीत्प्रेक्षापेक्षी द्विजेश्वरः ॥११॥

अर्थ—उक्त महात्माओं के वचनामृत से तृप्त होकर उनके दर्शनाभिलाषी राजपुरोहित ने उन महात्माओं को अत्यंत भक्ति से बुलाने के लिये अपने भाई को भेजा ॥ ११ ॥

तौ च दृष्ट्वांतरायातौ दध्यावंभोजभूः किमु ।
द्विधा भूयाद आदत्त दर्शनं स्वस्य दर्शनं ॥१२॥

अर्थ—उन दोनों महात्माओं को आते हुए देख कर राजपुरोहित ने विचार किया कि दो मूर्तिधारण करके ब्रह्मा ने दर्शन दिया क्या ? ॥ १२ ॥

हित्वा भद्रासनादीनि तद्दत्तान्यासनानि तौ ।
समुपाविशतां शुद्धस्वकंबलनिषद्ययोः ॥१३॥

अर्थ—राजपुरोहित ने दिये हुए भद्रासनादि आसनों को त्यागकर अपने शुद्ध कंवल के आसनों पर दोनों महात्मा बैठे ॥ १३ ॥

वेदोपनिषदां जैनतत्वश्रुतगिरां तथा ।
वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावभ्यदत्तां तदाशिषम् ॥१४॥

अर्थ—वेद उपनिषद युक्त जैनतत्वज्ञान वाली वाणी को तथा वचनों से साम्यता को प्रकाश करके दोनो महात्माओं ने राजपुरोहित को आशीर्वाद दिया कि ॥ १४ ॥

अपाणिपादो ह्यमनो [जवनो] ग्रहीता, पश्यत्य चक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति विश्वं नहि तस्यास्ति वेत्ता. शिवो ह्यरूपः स जिनोऽवताद्वः ॥१५॥

अर्थ—जिसको हाथ और पैर तथा मन नहीं है तथापि सर्वस्थानों मे जाता है (ज्ञान से) और प्रत्येक पदार्थों को ग्रहण करता है और आँखो के बिना सब वस्तुओ को देखता है कान के बिनाही सुनता है वह परमात्मा चराचर विश्व को जानता है उसको कोई नहीं जानता है ऐसे रूपरहित शिव वह श्रीजिनभगवान् आप लोगों की रक्षा करें ॥ १५ ॥

ऊचतुश्चानयोः सम्यगऽवगम्यार्थसंग्रहं ।
दययाभ्यधिकं जैनं तत्रावां आद्रियावहे ॥१६॥

अर्थ—उपर्युक्त श्लोक का अर्थसग्रह [विस्तारयुक्त अर्थ] अच्छी तरह राजपुरोहित को बताकर दोनो महात्मा कहने लगे कि दया करके सब धर्मों मे अधिक जो जैन धर्म है उसमे हम लोगो ने आदर किया है ॥ १६ ॥

युवामत्रस्थितौ कुत्रेत्युक्ते तेनोचतुश्च तौ ।
न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः ॥१७॥

अर्थ–आप दोनो महात्माओ कहाँ पर ठहरे हुए है इस प्रकार राज पुरोहित के पूछने पर श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी दोनो महात्मा बोले कि यहाँ पर चैत्यवासी लोगों की मना से कहीं भी ठहरने का स्थान नहीं मिलता है ॥ १७॥

चन्द्रशालां निजां चंद्रज्योत्स्नानिर्मलमानसः ।
स तयोरर्पयत्तत्र तस्थतुः सपरिच्छदौ ॥ १८ ॥

अर्थ—चंद्रमा की चाँदनी की तरह निर्मल है मन जिसका ऐसे राजपुरोहित ने अपनी चंद्रशाला नाम का स्थान उन दोनों महात्माओं को रहने के लिये दिया उसी में अपने शिष्यों के साथ दोनों महात्मा ठहरें ॥ १८ ॥

द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्मुक्तमलोलुपम् ।
नवकोटीविशुद्धं चायातं भैक्षमभुंजताम् ॥१६॥

अर्थ—भिक्षा संबंधी ४२ दोषों से रहित और नव कोटि विशुद्ध लाये हुए भिक्षा का अलोलुपतापूर्वक आहार करते भये ॥ १६ ॥

मध्यान्हे याज्ञिकस्मार्तदीक्षितानग्निहोत्रिणः ।
आहूय दर्शितौ तत्र निर्व्यूढौ तत्परीक्षया ॥२०॥

अर्थ—मध्यान्ह काल में राजपुरोहित ने यज्ञ करनेवाले अपने याज्ञिक स्मार्त दीक्षितों को बुलाकर उक्त दोनों आचार्यों को दिखलायें उनकी परीक्षा से दोनों महात्मा अति उत्तम मालुम हुए ॥ २० ॥

यावद्विद्याविनोदोयं विरंचेरिव पर्षदि ।
वर्तते तावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः ॥२१॥

अर्थ—ब्रह्मा की सभा की तरह पर्षदा में उक्त विद्या विनोद जब तक होरहा था उतने में तो चैत्यवासियों के भेजेहुए मनुष्य आये ॥२१॥

ऊचुश्च ते झटित्येव गम्यतां नगराद्बहि ।
अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं चैत्यबाह्यसितांबरैः ॥२२॥

अर्थ—उन चैत्यवासी लोगों ने श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीबुद्धिसागर सूरिजी महाराजों को कहा कि तुम लोग शीघ्र ही इस नगर से बाहर निकल जाओ क्योंकि इस नगर में चैत्य बाह्य सितांबर मुनियों को ठहरने के लिये स्थान नहीं मिलता है ॥ २२ ॥

पुरोधाः प्राह निर्णेयमिदं भूपसभांतरे ।
इति गत्वा निजेशानामाख्यातमिह भाषितम् ॥२३॥

अर्थ—राजपुरोहित ने कहा कि इस विवाद का निर्णय राजसभा मे करना उचित है इस प्रकार उत्तर सुनकर उन लोगों ने यह कथन अपने स्वामियों के पास जाकर बोला ॥ २३ ॥

इत्याख्याते च तैः सर्वैः समुदायेन भूपतिः ।
वीक्षितः प्रातरायासीत्तत्र सौवस्तिकोपि सः ॥२४॥

अर्थ—उक्त कथन सुनकर वह सब चैत्यवासी लोग अपनी समुदाय मे मिलकर प्रातःकाल मे दुर्लभ राजा की राजसभा मे पहुँचे इधर से राजपुरोहित भी आया ॥ २४ ॥

व्याजहाराथ देवास्मद्गृहे जैनमुनी उभौ ।
स्वपक्षे स्थानमप्राप्नुवंतौ संप्रापतुस्ततः ॥२५॥

अर्थ—राजपुरोहित बोला कि हे राजन् दो जैन मुनि श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी अपने जैनपक्ष मे ठहरने का स्थान न पाकर उसके अनतर हमारे घर मे प्राप्त हुए ॥ २५ ॥

मया च गुणग्राह्यत्वात् स्थापितावाश्रये निजे ।
भट्टपुत्रा अमीभिर्मे प्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः ॥२६॥

अर्थ—मुनिके उत्तम आचरणवाले श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी इन दोनो मुनियो के गुण (ग्राह्य) ग्रहण करने योग्य होने से मैने अपने स्थान मे इन मुनियो को ठहरने दिये इस लिये इन शिथिलाचारी चैत्यवासी यतियो ने उत्तम आचरणवाले इन मुनियो को नगर से बाहर निकालने के वास्ते हमारे पास भट्ट पुत्रो को भेजे ॥ २६ ॥

अत्रादिशत मे युक्तं दंडं चाऽत्र यथार्हत ।
श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा भूपालः समदर्शनः ॥२७॥

अर्थ—हे राजन् इस विवाद में मेरा अपराध वा मेरे को उचित दंड आप जैसा समझें वैसा कृपा करके आदेश करें यह सुनकर समदर्शी दुर्लभ राजा हँसकर बोला कि ॥ २७ ॥

मत्पुरे गुणिनः कस्माद्देशांतरत आगता ।
वसंतः केन वार्यंते को दोषस्तत्र दृश्यते ॥२८॥

अर्थ—मेरे नगर में किसी दूसरे देशसे विचरते हुए उत्तम आचरणवाले श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी नाम के मुनियों को रहने के लिये कौन मना करता है? और उनमें क्या दोष देखने में आते हैं ॥ २८ ॥

अनुयुक्ताश्च ते चैवं प्राहुः शृणु महीपते ।
पुरा श्रीवनराजोऽभूच्चापोत्कटः वरान्वयः ॥२९॥

अर्थ—श्रीजिनमंदिर में रहनेवाले चैत्यवासी यति लोग इस प्रकार बोले कि हे राजन् सुनिये पूर्वकाल में श्रीवनराज नाम का राजा धनुर्विद्या में निपुण और उत्तम वंशपरंपरा वाला हुआ ॥२९॥

स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचंद्रेण सूरिणा ।
नागेंद्रगच्छभूद्वारप्राग्वराहोपमास्पृशा ॥३०॥

अर्थ—उस वनराज राजाको बाल्यावस्था में नागेंद्रगच्छ के प्रभावशाली श्रीदेवचंद्रसूरिजी ने (वर्द्धित) मोटा किया ॥ ३० ॥

पंचाश्रयाभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना ।
पुरं स च निवेश्येदमत्र राज्यं ददौ नवम् ॥३१॥

अर्थ–पंचाश्रय नामका स्थानमें रहाहुआ श्रीजिनमंदिर उसमें रहने वाले देवचंद्रसूरिजी ने यह पाटण नवीन पुर बसाकर वनराज राजा को राज्य दिया ॥ ३१ ॥

वनराजविहारं च तत्रास्थापयत प्रभुः ।
कृतज्ञत्वादसौ तेषां गुरूणामर्हणां व्यधात् ॥३२॥

अर्थ—उक्त स्थान में चैत्यवासी देवचंद्रसूरिजी ने वनराज राजा का महेलात स्थापन करवाया इस कृतज्ञता से उक्त राजा उन गुरुओं का (अर्हण) पूजन करता था ॥ ३२ ॥

व्यवस्था तत्र चाकारि सघेन नृपसाक्षिकं ।
संप्रदायविभेदेन लाघवं च यथाऽभवत् ॥३३॥

अर्थ—जैन सप्रदाय के विशेप भेद से जिनमंदिर में रहनेवाले चैत्यवासी यतियों का जैसा लाघव (पराजय) हुआ वैसा न होने के लिये सघ ने राजा की साक्षि पूर्वक पाटण नगर में (व्यवस्था) बदोबस्त किया कि ॥ ३३ ॥

चैत्यगच्छयतिव्रातसंमतो वसतान्मुनिः ।
नगरे मुनिभिर्नात्र वस्तव्यं तदऽसंमतैः ॥३४॥

अर्थ—श्रीजिनमंदिरों में रहनेवाले शिथिलाचारी चैत्यवासियों के गच्छ सबधी यतियों का समुदाय उनके आचरण में समत जो मुनि हो वह इस नगर में रहे परन्तु चैत्यवासी यतियों से असमत अर्थात् शुद्ध क्रियावत मुनियों को इस पाटण नगर में रहना नहीं ॥३४॥

राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां मान्या पाश्चात्यभूमिपैः ।
यदादिशसि तत्कार्यं राजन्नेवं स्थिते सति ॥३५॥

अर्थ-प्रथम के राजाओं की बाँधी हुई उपर्युक्त व्यवस्था पीछे हुए राजाओं को मानने योग्य होती है इस लिये हे राजन् इस प्रकार विवाद स्थित होने पर जैसी आज्ञा आप देवें वही की जायगी ॥३५॥

राजा प्राह समाचारं प्राग्भूपानां वयं दृढं ।
पालयामो गुणवतां पूजां तूल्लंघयेम न ॥३६ ॥

अर्थ—श्रीदुर्लभ राजा बोला कि प्रथम के राजाओं का जो समाचार याने राज्य सबधी व्यवहार उसको हम अच्छी तरह पालन करते हैं परन्तु शुद्ध आचरणवाले गुणवत मुनियों की (पूजा) आदर सत्कार को हम उल्लघन नहीं कर सकते हैं ॥ ३६ ॥

भवादृशां सदाचारनिष्ठानामाशिषा नृपाः ।
एधंते युष्मदीयं तद्राज्यं नात्रास्ति संशयः ॥३७॥

अर्थ—आपकी तरह (सदाचार) शुद्ध आचारनिष्ट मुनि महात्माओं के आशिर्वाद से राजा लोग वढ़ते हैं इस लिये आप लोगों का यह राज्य है इसमें संशय नहीं ॥ ३७ ॥

उपरोधेन नो यूयमऽमीषां वसनं पुरे ।
अनुमन्यध्वमेवं च श्रुत्वा तेऽत्र तदादधुः ॥३८॥

अर्थ—हमारे (उपरोध) आग्रह से तुम लोग (अमीषां) इन श्रीजिनेश्वरसूरिजी आदि मुनियों का पाटण नगर में रहना मानिये यह सुनकर चैत्यवासी यतियों ने दुर्लभ राजा का कथन स्वीकार किया ॥ ३८ ॥

सौवस्तिकस्ततः प्राह स्वामिन्नेषामवस्थितौ ।
भूमिः काप्याश्रयस्यार्थे श्रीमुखेन प्रदीयताम् ॥३९॥

अर्थ—उसके अनंतर राजपुरोहित वोला कि हे स्वामिन् (एषां) इन श्रीजिनेश्वरसूरिजी आदि मुनियों को रहने के निमित्त उपाश्रय के लिये कोई भूमि आपही श्रीमुख से दीजिये ॥ ३९ ॥

तदा समाययौ तत्र शैवदर्शनवासवः ।
ज्ञानदेवाभिधः पूज्यः सुभद्रविरुदाहितः ॥४०॥

अर्थ—उस समय राजसभा में शिवमत के अधिपति ज्ञानदेव नाम के वड़े प्रख्यात सुभद्र विरुदवाले तपस्वी कोई आये ॥ ४० ॥

अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य निविष्टं निज आसने ।
राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदद्य विज्ञाप्यते प्रभो ॥४१॥

अर्थ—अभ्युत्थान तथा पूजा सत्कार करने के अनंतर अपने सन पर वैठे हुए उन तपस्वी के प्रति राजा वोला कि हे प्रभो आज मैं कुछ आपसे निवेदन करता हूँ ॥ ४१ ॥

प्राप्ता जैनर्षयस्तेषामर्पयध्वमुपाश्रयं ।
इत्याकर्ण्य तपस्वीन्द्रः प्राह प्रहसिताननः ॥४२॥

अर्थ—जैनमुनि श्रीजिनेश्वरसूरिजी आदि यहाँ मुनिराज आये हैं इन मुनियों को ठहरने के लिये उपाश्रय आप दीजिये यह सुनकर तपस्वीन्द्र ज्ञानदेव हँसकर बोले कि ॥ ४२ ॥

गुणिनामर्चनं यूयं कुरुध्वं विधुतैनसां ।
सोऽस्माकमुपदेशानां फलपाकश्रियां निधिः ॥४३॥

अर्थ—(विधुतैनसा) याने समस्त पापो से रहित महागुणि श्रीजिनेश्वरसूरिजी आदि आए हुए इन मुनियो का (अर्चन) सत्कार आप लोग कीजिये क्योंकि हे राजन् हमारे उपदेशों का फल पाक लक्ष्मी के निधि रूप अर्थात् लक्ष्मी के भोक्ता वही होता है जो कि ऐसे गुणि मुनियो की भक्ति करे ॥ ४३ ॥

शिव एव जिनो वालत्यागात्परपदस्थितः ।
दर्शनेषु विभेदो हि चिन्हं मिथ्यामतेरिदं ॥४४॥

अर्थ—(वालत्याग) अर्थात् कर्मों का (त्याग) क्षय से परमपद (मोक्ष) में स्थित जो जिन है वही शिव है और दर्शनों में (मतो में) जो भेद याने भिन्नता यह (मिथ्यामते) अज्ञानियों का चिन्ह है ॥४४॥

निस्तूपत्रीहिहट्टानां मध्येऽस्त्रीपुरुषाश्रिता ।
भूमी पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाय यथारुचि ॥४५॥

अर्थ—यह सुनकर दुर्लभराजा ने अपने पुरोहित को आज्ञा दी कि (निस्तूपत्रीही) याने अन्न का जहाँ पर बाजार है वहाँ [illegible] पुरुषों के आश्रय रहित एकांत भूमि को उपाश्रय बनाने के लिये अपनी इच्छानुसार तुम ग्रहण करो ॥ ४५ ॥

विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो निषेध्यः सकलो मया ।
द्विजस्तच्च प्रतिश्रुत्य तदाश्रयमकारयत् ॥४६॥

अर्थ—और अपने तथा परपक्षियों से इन मुनियों को जो विघ्न होगा उन सबका निषेध हम करेंगे यह सुनकर राजपुरोहित उपाश्रय को कराता भया ॥ ४६ ॥

ततः खरतरः नाम वसतीनां परंपरा ।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नाऽत्र संशयः ॥४७॥

अर्थ—उसी दिन से याने श्रीजिनेश्वरसूरिजी से खरतरगच्छ नाम तथा पाटण शहर में मुनियों को रहने की परंपरा यह दोनों प्रचलित हुए हैं क्योंकि उपर्युक्त श्रीदुर्लभ राजा आदि महान् पुरुषों ने न्याय से तथा श्रीजिनेश्वरसूरिजी के खरतर शुद्ध आचरण से और उक्त विवाद में जीतने से खरतर याने यथोचित खरतर नाम जो स्थापन किया सो सर्वत्र वृद्धि को प्राप्त हुआ है इसमें संशय नहीं ॥४७॥

देखिये एक भाषाकार कवि ने भी कहा है कि—

हारया सो कवला थया जीत्या खरतर जाँणिया ।
तिणकाल श्रीसंघमें गच्छ दोय वखाँणिया ॥ १ ॥

श्रीप्रभावकचरित्र में उक्त अधिकार के अनंतर खरतरगच्छ-नायक श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज के शिष्य नवांग सूत्र वृत्तिकार श्रीस्थंभन पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रकटकर्त्ता श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज का चरित्र विस्तार से वर्णन किया है और तपगच्छ की लघुशाखा संबंधी पट्टावली में भी लिखा है कि—

खरतरगच्छाधीशश्रीजिनेश्वरसूरीणां-शिष्यैः श्रीमदऽभयदेवसूरिभिः नवांगटीकाः कृताः ।

तथा खरतरगच्छ की प्राचीन जिर्ण पट्टावली में पाठ यथा—

अशीत्यधिके वर्षसहस्रे १०८० पत्तने श्रीदुर्लभ भूपसभायां वादे चैत्यवासीनऽजयदऽतः श्रीजिनेश्वर सूरिः नृपात्खरतरेति विरुदमाऽऽप ।

प्रिय पाठकगण ! उपर्युक्त अनेक ग्रंथकारों के प्रमाणों से स्पष्ट विदित होता है कि खरतरगच्छवालों की गुरुशिष्यपरंपरा में नवांग-सूत्र टीकाकार श्रीमत्अभयदेवसूरिजी महाराज हुए हैं और उनके गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज से खरतरगच्छ नाम प्रख्यात हुआ है इस नाम के पहिले उक्त सूरिजी के महान् पूर्वजों से कोटिकगच्छ वज्रशाखा चान्द्रकुल यह प्राचीन नाम प्रथम प्रसिद्ध हुए थे इसीलिये नवांगसूत्र टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज ने श्रीठाणांगसूत्रादि की टीका तथा श्रीमत्भगवतीसूत्र की टीका की प्रशस्ति में अपने गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा दादागुरु श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराज का चान्द्रकुल ठीक लिखा है तत्संबंधी पाठ यथा—

चांद्रेकुले सद्वनकक्षकल्पे महाद्रुमो धर्मफलप्रदा-नात् । छायान्वितः शस्तविशालशाखः श्रीवर्द्धमानो मुनिनायकोऽभूत् ॥१॥

तत्पुष्पकल्पौ विलसद्विहारसद्गंधसंपूर्णदिशौ स-मंतात् । बभूवतुः शिष्यवरावऽनीचवृत्ती श्रुतज्ञानप-रागवन्तौ ॥२॥

एकस्तयोः सूरिवरो जिनेश्वरः ख्यातस्तथाऽन्यो भुवि बुद्धिसागरः । तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाप्यलं वृत्तिः कृतैषाऽभयदेवसूरिणा ॥३॥

भावार्थ-इस उपर्युक्त श्रीभगवतीसूत्र की टीका की प्रशस्ति के श्लोकों में श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज ने अपने दादागुरु श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराज को चान्द्रकुल में हुए ठीक लिखे हैं क्योंकि उनके महान् पूर्वजों का चान्द्रकुल प्राचीनकाल से प्रथम प्रसिद्ध था इसीलिये चान्द्र-कुलवाले श्रीवर्द्धमानसूरिजी के शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्री-बुद्धिसागरसूरिजी ने उपर्युक्त अनेक ग्रंथकारों के पाठानुसार खरतर बिरुद कहलाना उनके शिष्य नवांगसूत्रटीकाकर्त्ता श्रीअभयदेवसूरिजी

महाराज हुए और इन महाराज ने श्रीसमवायांगसूत्र की टीका सम्बन्धी प्रशस्ती में लिखा है कि—

निःसंबद्धविहारहारिचरितान् श्रीवर्द्धमानाभिधान्।
सूरीन् ध्यातवतो ऽतितीव्रतपसो ग्रंथप्रणातिप्रभो ॥
श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो दर्प्पीयसां वाग्मिनां।
तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर इति, ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥१॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्यसूरिणा विवृत्तिः कृता ।
श्रीमतः समवायाख्यतुर्य्यांगस्य समासतः ॥ २ ॥
एकादशसु शतेष्वथ विंशत्यधिकेषु विक्रमसमानां ।
अणहिलपाटणनगरे रचिता समवायटीकेयं ॥३॥

भावार्थ—प्रतिबंध रहित विहार तथा मनोहर चरित्र युक्त श्रीवर्द्धमानसूरिजी को ध्यानेवाले याने उनके शिष्य महातपस्वी तथा ग्रंथों की रचना करने में समर्थ और पाटण में बड़े अभिमानी चैत्यवासी वाचालवक्ताओं को विवाद में जीतनेवाले श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी हुए इसी लिए खरेतरे याने खरतर विरुद धारक भूमंडल में प्रख्यात हुए उनके शिष्य नवांगसूत्रटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी ने विक्रम संवत् ११२० में उसी अणहिलपुर पाटण में चतुर्थ श्रीसमवायांगसूत्र की टीका रची, यह कथन उपर्युक्त महाप्रामाणिक अनेक शास्त्रकार महाराजों के रचित ग्रंथपाठों के अभिप्राय से परस्पर मिलता हुआ सर्वथा सत्य विदित होता है क्योंकि लोक में यही न्याय देखने सुनने में आता है कि विवाद में मिथ्या अभिमानी वादियों को जीतनेवाले जो हों उनको लोग खरेतरे अवश्य कहते हैं इसी तरह पाटण में सुविहित मुनियों को नहीं रहने देने में मिथ्या विवाद करते हुए बड़े अभिमानी चैत्यवासियों को श्रीदुर्लभराजा की सभा में पराजय द्वारा जीतने से श्रीजिनेश्वरसूरि जी महाराज खरेतरे याने खरतर विरुद धारक कहलाये इस सत्य अधिकार को आत्मारामजी ने न मान कर अपने मिथ्या प्रलापों से रची हुई उक्त पुस्तक के पृष्ठ १२ में लिखा है कि—"श्रीजगच्चंद्रसूरिजी

ने यावज्जीवन आचाम्ल तप किया इस वास्ते राजा ने तपगच्छ नाम दिया" तथा तपगच्छ पट्टावली मे लिखा है कि सवत् १२८५ में श्रीजगच्चद्रसूरिजी से तपगच्छ की उत्पत्ति हुई और ३२ दिगम्बर जैनाचार्यों को विवाद में जीते हीरे की तरह भग्न न हुए इस लिये राजाने श्रीजगच्चद्रसूरिजी को हीरला विरुद दिया" तो इस अधिकार को भी मिथ्याही मानना उचित है क्योंकि श्रीजगच्चद्रसूरिजी के प्रशिष्य श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी ने संवत् १३३२ में रची हुई श्रीवृहत्कल्पसूत्रटीका की प्रशस्ति मे इस उक्त मतव्य सम्बधी किंचित् गध भी नहीं लिखा है देखिये उस प्रशस्ति का पाठ । यथा—

श्रीजैनशासननभस्तलतिग्मरस्मिः श्रीपद्मचंद्रकुलपद्मविकाशकारी । स्वज्योतिरावृतदिगंवरडंवरो ऽभृत् श्रीमान् धनेश्वरगुरुः प्रथितः पृथिव्यां ॥१॥

श्रीमच्चैत्रपुरैकमंडनमहावीरप्रतिष्ठाकृत—
स्तस्माच्चैत्रपुरप्रबोधतरणिः श्रीचैत्रगच्छो ऽजनि ॥
तत्र श्रीभुवनेंद्रसूरिसुगुरुर्भूभूषणं भासुरः ।
ज्योतिःसद्गुणरत्नरोहणगिरिः कालक्रमेणाऽभवत्२॥

तत्पादांबुजमंडनं समभवत्पक्षद्वयीशुद्धिमान् ।
नीरक्षीरसदृशदूषणगुणत्यागग्रहैवादृतः ॥
कालुष्यं च जडोद्भवं परिहरन् दूरेण सन्मानसः ।
स्थायी राजमरालवद्गणिवरः श्रीदेवभद्रः प्रभुः ॥३॥

शस्याः शिष्याः त्रयस्तत्पदसरसिरुहोत्संगशृंगारभृंगाः
विध्वस्तानंगसंगाः सुविहितविहितोत्तुंगरंगाः वभूवुः॥
तत्राद्यः सच्चरित्रानुमतिकृतमतिः श्रीजगच्चंद्रसूरिः ।
श्रीमद्देवेंद्रसूरिः सरलतरलसच्चित्तवृत्तिर्द्वितीयः ॥४॥

तृतीयशिष्याः श्रुतवारिवार्द्धयः
परीषहात्तौभ्यमनःसमाधयः ।
जयंति पूज्याः विजयेंदुसूरयः
परोपकारादिगुणौघसूरयः ॥ ५ ॥

प्रौढं मन्मथपार्थिवं त्रिजगतीजैत्रं विजित्यैयुषां ।
येषां जैनपुरे पुरेण महसा प्रक्रांतकांतोत्सवे ॥
स्थैर्यं मेरुरगाधतां च जलधिः सर्वं सहत्वं मही ।
सोमः सौम्यमहर्प्पतिः किल महत्तेजोकृतप्राभृतं ॥६॥

चापं चापं प्रवचनवचोवीजराजीं विनेय-
त्तेत्रे सुपरिमिलिते शब्दशास्त्रादिसीरैः ॥
यैः त्तेत्रज्ञैः शुचिगुरुजनाम्नायवाक्सारणीभिः ।
सिक्त्वा तेने सुजनहृदयानंदिसंज्ञानसत्यं ॥७॥

यैरप्रमत्तैः शुभमंत्रजापैर्वेतालमध्येयकलिप स्ववश्यं ।
अतुल्यकल्याणमयोत्तमार्थसत्पूरुषः सत्वधनैरसाधिः॥

किंबहुना ?

ज्योत्स्नामंजुलया यया धवलितं विश्वंतरामंडलं ।
या निशेषविशेषविज्ञजनता चेतश्चमत्कारिणी ॥
तस्यां श्रीविजयेंदुसूरिसुगुरुर्निष्कृत्रिमायां गुण-
श्रोणः स्याद्यदिवासवःस्तवकृतौ विज्ञः सचावां पतिः६

तत्पाणिपंकजरजःपरिपूतशीर्षाः
शिष्यास्त्वयो दधति संप्रति गच्छभारं ॥

श्रीवज्रसेन इति सद्गुरुरादिमोऽभूत्
श्रीपद्मचंद्रसुगुरुस्तु ततो द्वितीयः ॥१०॥

तार्त्तीयिकस्तेषां विनेयपरमाणुरऽनणुशास्त्रेऽस्मिन् ।
श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिर्विनिर्ममे विवृत्तिकल्पमिति ॥११॥

श्रीविक्रमतःक्रामति नयनाग्निगुणेन्दु१३३२परिमिते
वर्षे, ज्येष्ठश्वेतदशम्यां समर्थितैषा च हस्तार्के ॥१२॥

भावार्थ—इन श्लोको मे यह है कि श्रीपद्मचंद्र कुलपद्मविकाशी श्रीधनेश्वरसूरिजी हुए श्रीचैत्रपुरमंडन महावीर प्रतिष्ठा से चैत्रगच्छ हुआ उस गच्छ मे श्रीभुवनेंद्रसूरिजी उनके शिष्य श्रीदेवभद्रगणिजी उनके शिष्य श्रीजगच्चंद्रसूरिजी और श्रीदेवेंद्रसूरिजी तथा श्रीविजयेंदुसूरिजी यह ३ महाराज उक्त गुणोपेत हुए श्रीविजयेंदुसूरिजी के प्रथम शिष्य श्रीवज्रसेनसूरिजी दूसरे शिष्य श्रीपद्मचंद्रसूरिजी तीसरे शिष्य श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजीने श्रीवृहत्कल्पसूत्रकी टीका विक्रम संवत् १३३२ मे रची देखिये इस उपर्युक्त प्रशस्ति के पाठ मे न तो श्रीजगच्चंद्रसूरिजी के गुरु का नाम श्रीमणिरत्नसूरि लिखा और न तो श्रीजगच्चंद्रसूरिजी ने यावज्जीव आचाम्लतप किया लिखा और न तो संवत् १२८५ में अमुक नगर के अमुक राजा ने तपगच्छ नाम दिया लिखा तथा ३२ दिगंबर जैनाचार्यो को अमुक शहर मे अमुक विवाद मे जीतने से अमुक राजा ने श्रीजगच्चंद्रसूरिजी को हीरला बिरुद दिया नहीं लिखा है इसीलिये सिद्ध होता है कि तपगच्छ की पट्टावलियो में अपनी बड़ाई के लिये मन कल्पित उक्त असत्य बातें लिख दिखलाई हैं अगर वह सत्य मानी जाय तो श्रीखरतरगच्छ की पट्टावलियो मे लिखा है कि पाटण मे चैत्यवासियो को विवाद मे जीतने से नवांगटीकाकार महाराज के गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी से खरतरविरुद तथा खरतरगच्छ नाम प्रसिद्ध हुआ यह कथन भी उपर्युक्त श्रीप्रभावक चरित्र आदि अनेक ग्रंथो के प्रमाणो मे सर्वथा सत्य है किंतु आत्मारामजी ने अपनी रची हुई जैनसिद्धांतविरुद्ध केवल नाम से 'जैनसिद्धांतसमाचारी' नामक पुस्तक मे श्रीप्रभावक चरित्र का नाम लिख कर झूठा ही लिख दिया कि चैत्यवासियो के साथ विवाद नहीं हुआ दुर्लभ राजा मर गया था

और जब दुर्लभ राजा ही नहीं था तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज को खरतरविरुद् किसने दिया इत्यादि महाअसत्य लेख उपर्युक्त श्री-प्रभावक चरित्र आदि अनेक शास्त्रपाठ प्रमाणों से प्रत्यक्ष विरुद्ध लिखा है और भी देखिये कि आत्मारामजी ने अपने उक्त शिष्यों के नाम से नाममात्र की जैनसिद्धांतसमाचारी की पुस्तक के पृष्ठ २६ में लिखा है कि "जिस पट्टावली के अनुसार श्रीआत्मारामजी ने जैनमत वृक्ष में खरतर शाखा की पट्टावली लिखी है वह पट्टावली श्रीक्षमाकल्याणगणि जी की रची हुई श्रीआत्मारामजी महाराज के पास है" इस लेख को वाँचकर विद्वान् लोगों के चित्त में यह खेद तो अवश्य होगा कि आत्मारामजी ने खरतरगच्छ के श्रीक्षमाकल्याणगणिजी की रची हुई पट्टावली के अनुसार जैनमत वृक्ष में खरतरशाखा की पट्टावली लिखी है तो उस पट्टावली में लिखा है कि—

श्रीजिनेश्वरसूरिमुद्दिश्य अतिखरा एते इति-दुर्लभराज्ञा प्रोक्तं ततएव खरतरविरुदं लब्धं तथा चैत्यवासिनो हि पराजयप्ररूपणात् कुंवला इति नाम ध्येयं प्राप्ता एवंच सुविहितपक्षधारकाः श्रीजिनेश्वर सूरयो विक्रमतः १०८० वर्षे खरतरविरुदधारकाः जाताः ।

इस सत्य कथन से विरुद्ध आत्मारामजी ने संवत् १२०४ में नवांग-टीकाकार महाराज के प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरविरुद् की उत्पत्ति हुई यह मिथ्या लेख उस जैनमत वृक्ष संबंधी खरतरशाखा की पट्टावली में क्यों लिख दिखलाया ? क्योंकि उपर्युक्त पाठ में श्रीक्षमा-कल्याणगणिजी ने तो अनेक शास्त्रसंमत संवत् १०८० में नवांगटीका-कार श्रीअभयदेवसूरिजी के गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज चैत्य-वासियों को विवाद में जीतने से खरतरविरुद धारक हुए लिखे हैं अस्तु आत्मारामजी ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ७५ में शुद्धसमाचारी प्रकाशक का लिखा है कि "श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में हुए २ ऐसा झूठा प्रलाप काहेको करते क्योंकि आपके लिखे किसी भी ग्रंथ में श्रीअभयदेवसूरि महाराज को खरतर ऐसा विशेषण नहीं लिखा है"

यह लेख भी असमजस लिखा है क्योंकि नवागटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालो की गुरुशिष्यपरपरा मे ही हुए है यह बात उपर्युक्त अनेक ग्रंथों के प्रमाणो से बता चुके है तो शास्त्र विरुद्ध आपके प्रत्यक्ष महामिथ्या लेखो को बुद्धिमान् क्या सत्य मानेगा ? कदापि नहीं और आपने लिखा है कि "किसी भी ग्रथ मे श्रीअभयदेवसूरि महाराजको खरतर ऐसा विशेषण नहीं लिखाहै" यह लेख भी असत्य लिखा है क्योंकि आपके तपगच्छ के सत्यवादी श्रीसोमधर्मगणिजी ने सवत १५१२ मे रचा हुआ श्रीउपदेशसप्ततिका ग्रथ में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज से खरतरगच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ ऐसा विशेषण स्पष्ट लिखाहै तत्सबधी पाठ यथा—

जयत्यऽसौ स्थंभनपार्श्वनाथः
प्रभावपूरैः परितः सनाथः ।
स्फुटीचकाराऽभयदेवसूरि—
र्यंभूमिमध्यस्थितमूर्त्तिसिद्धं ॥१॥

अर्थ—भूमिमध्यस्थित मूर्त्तिमान् जिस पार्श्वप्रभु को श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज ने प्रगट किये वह सपूर्ण प्रभावयुक्त श्रीस्थभन पार्श्वनाथप्रभु जयवंते वर्तरहे है इसी अधिकार को पुन उक्त ग्रथकार महाराज विशेषरूप से बताते हैं कि—

पुरा श्रीपत्तने राज्यं कुर्वाणे भीमभूपतौ ।
अभूवन् भूतलाख्याताः श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥२॥
सूरयो ऽभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥३॥

भावार्थ—इन दो श्लोको मे तपगच्छ के श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज ने सक्षेप मे अपना यह भावार्थ बतलाया है कि पूर्वकाल मे याने सवत् १०८० मे गुर्जर देशस्थ श्रीअणहिलपुर पाटण में राजगद्दी के ऊपर विद्यमान श्रीमान् दुर्लभराजा तथा युवराज श्रीभीमराजा राज्य कर रहे थे उस समय शुद्ध क्रियाधारी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी महाराज विहार करते हुए उक्त नगर

में पधारे वहाँ पर शिथिलाचारी ईर्षालू चैत्यवासियों के साथ विवाद होने से राजसभा में चैत्यवासी लोगों का पराजय हुआ इसीलिये राजा आदि लोगों ने उनको शिथिलाचारी देखकर कुंवले ऐसा कहा इसी कारण उन लोगों का कुंवलागच्छ ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ और अतिशयेनखराः सत्य प्रतिज्ञा इति खरतरा अर्थात् अत्यंत सत्य प्रतिज्ञा वाले शुद्ध क्रियाधारी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी महाराज विवाद में जीत गये अर्थात् खरतर याने अत्यंत सच्चे रहे इसीलिये उपर्युक्त श्रीदुर्लभ राजा तथा श्रीभीमराजादि के मुख से यह मुनिगुणी है साधु क्रिया में खरतर हैं, इत्यादि प्रशंसा के द्वारा खरतर ऐसा विरुद पाकर श्रीजिनेऽवरसूरिजी महाराज भूतल में प्रख्यात होते भये उनके पाट पर नवांग सूत्र टीकाकार श्रीमत् अभयदेवसूरिजी महाराज दीप्तिमंत हुए जिनसे खरतर नाम का गच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ, यह विशेषण ठीक लिखा है।

प्रियपाठकगण ! श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज से खरतरगच्छ किस तरह प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ सो उपर्युक्त तपगच्छ के पंडित श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज ने उपदेशसप्ततिका ग्रन्थ में यह अधिकार आगे लिख बताया है कि—

तेषामाचार्यवर्याणां मान्यानां भूभृतामपि ।
कुष्ठव्याधिरभूद्देहे प्राच्यकर्मानुभावतः ॥४॥

भावार्थ—राजा महाराजाओं को भी मानने योग्य उपर्युक्त खरतर गच्छ की उन्नति करनेवाले श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के शरीर में पूर्व कर्मानुभाव से कुष्ठ व्याधि उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥

ततः गुर्ज्जरयात्रायां थंभणकपुरं प्रति ।
शक्तयऽल्पत्वे च ते चक्रुः विहारं मुनिपुंगवाः ॥५॥

अर्थ—उस व्याधि से शक्ति अल्प होने पर भी मुनिनायक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज गुजरात देश में यात्रा के लिये स्थंभनपुर प्रति विहार किया ॥ ५ ॥

रोगग्रस्ततयात्यंतं संभाव्य स्वायुषः क्षयं ।
मिथ्यादुष्कृतदानार्थं सर्वं संघं समाह्वयत् ॥६॥

अर्थ—अत्यन्त रोगग्रस्त होने से अपना आयुष्य का क्षय समझ कर मिथ्या दुष्कृत देने के लिये श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज श्रीसर्व संघ को बुलाते भये ॥ ६ ॥

तस्यामेव निशीथिन्यां स्वप्ने शासनदेवता ।
प्रभोः ! स्वपिषि जागर्षि किंचेत्याह गुरुं प्रति ॥७॥

अर्थ-उसी रात्रि को स्वप्न में शासनदेवी गुरु महाराज के प्रति कहने लगी कि हे प्रभो ! आप निद्रा लेते हैं या जागते हैं ॥ ७ ॥

रोगेण कास्ति मे निद्रेत्युक्ते देवी गुरुं जगौ ।
उन्मोहयत या एषा सूत्रस्य नव कुर्कटी ॥८॥

अर्थ—श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज ने उत्तर दिया कि रोग से मेरे को निद्रा कहाँ है ? ऐसा कहने पर गुरुमहाराज को देवी कहने लगी कि सूत की यह नव कोकडियों को आप उखेल दीजिये ॥ ८ ॥

शक्तेरभावात् किं कुर्वे साह मैवं वचो वद ।
त्वमद्यापि नवांग्या यद् वृत्तिः स्फीताः करिष्यति ॥६॥

अर्थ—गुरु महाराज कहने लगे कि शक्ति के अभाव से यह काम मैं क्या कर सकता हूँ ? अर्थात् नहीं, देवी कहने लगी कि ऐसा वचन मत बोलिये क्योंकि अभी तो आप नव अंग सूत्रो की टीका अच्छी तरह करेंगे ॥ ६ ॥

श्रीसुधर्मकृतग्रंथान् कथं कथयिष्याम्यहं ।
पंगुः प्रत्येति को नाम मेर्वारोहणकौशलम् ॥१०॥

अर्थ—श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज कहने लगे कि गणधर श्रीसुधर्म स्वामीजी महाराज के किये हुए सूत्रग्रन्थों को टीकाद्वारा किस तरह मैं कथन कर सकूँगा ? क्योंकि हे देवि ! मेरु पर्वतपर चढ़नेकी कुशलता को क्या पंगु मनुष्य प्राप्त कर सकता है ॥ १० ॥

देव्याह यत्र संदेहः स्मर्तव्याहं त्वया तदा ।
यदाभिनद्मि तान् सर्वान् पृष्ट्वा सीमंधरं जिनं ॥११॥

अर्थ—शासन देवी कहने लगी कि जिस विषय में जिस समय आपको संदेह हो उस समय में मेरे को स्मरण करना कि तीर्थंकर श्रीसीमंधर स्वामी महाराज को पूछकर वह सब संदेह दूर करूँगी ॥११॥

रोगग्रस्तः कथं मातः करोमि निवृत्तीरहम् ।
सा वादीत्तत्प्रतीकारः कितूपायमिमं शृणु ॥१२॥

अर्थ—श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज कहने लगे कि हे मातः ! रोगसे ग्रस्त हुआ मैं आराम किस तरह करूँ ? देवी कहने लगी कि रोग दूर करने में यह उपाय है कि ॥ १२ ॥

अस्ति स्थंभनकग्रामे सेढीनामा महानदी ।
तस्यां श्रीपार्श्वनाथस्य प्रतिमास्त्यतिशायिनी ॥१३॥

अर्थ—स्थंभन ग्राम के समीप सेढी नाम की महानदी है उसमें श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की अतिशयवाली प्रतिमा (मूर्त्ति) है ॥ १३ ॥

यत्र च क्षरति क्षीरं प्रत्यहं कपिलेति गौः ।
तत्सरोत्खातभूमौ च द्रक्ष्यसि प्रतिमामुखम् ॥१४॥

अर्थ—जहाँ पीली गौ हमेंशा दूध झराती है उसकी सेर की खोदी हुई भूमि में प्रतिमाजी का मुख देखोगे ॥ १४ ॥

तदेवं सप्रभावं तद् बिम्बं वंदस्व भावतः ।
यथा त्वं स्वस्थदेहःस्यादिति प्रोच्य गता सुरी ॥१५॥

अर्थ—उन २३ वें पार्श्वप्रभु की प्रभावयुक्त मूर्त्ति को भाव से वंदना करो कि जिससे आपका शरीर निरोग हो जायगा ऐसा कह कर देवी गई ॥ १५ ॥

प्रातर्जागरितास्तेऽथ स्वप्नार्थमवबुध्य च ।
समं समग्रसंघेन चेलुः स्थंभनकं प्रति ॥१६॥

अर्थ—उसके अनतर प्रात. समय मे जागे हुए श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज स्वप्न का अर्थ को जानकर सब सघ के साथ स्थमन ग्राम प्रति चले ॥ १६ ॥

तत्र गत्वा यथा स्थाने प्रेक्ष्य पार्श्वजिनेश्वरं ।
उल्लसत्सर्वरोमांचं एवं ते तुष्टुवुर्मुदा ॥१७॥

अर्थ—वहाँ जाकर देवी उक्त स्थान मे श्रीपार्श्वप्रभु की मूर्त्ति को देख के उल्लसित सर्व रोमांच पूर्वक खरतरगच्छनायक श्रीअभयदेव-सूरिजी महाराज हर्ष से इस प्रकार स्तुति करते भये कि ॥ १७ ॥

जय तिहुअणवरकप्परुक्ख जय जिणधन्नंतरि इत्यादि
एवं द्वात्रिंशद्वृत्तैः तुष्टुवुः पार्श्वतीर्थपम् ।
श्रीसंघोपि महापूजाद्युत्सवॉस्तत्र निर्ममे ॥१८॥

अर्थ—हे त्रिभुवनवर कल्पवृक्ष ! हे धन्वतरिवैद्यसमान पार्श्वजिन ! जयवते वर्त्तो इत्यादि ३२ बत्तीस गाथाओं से श्रीस्थभनपुर पार्श्व तीर्थपति की स्तवना करते भये श्रीसघ भी वहाँ पर महापूजादि उत्सवों को करते भये ॥ १८ ॥

अंत्यवृत्तद्वयं तत्र त्यक्त्वा देव्युपरोधतः ।
चक्रिरे त्रिंशता वृत्तैः सप्रभावं स्तवं हि ते ॥१६॥

अर्थ—शासनदेवी के आग्रह से स्तोत्र की अंतिम दो गाथाओं को वहाँ पर त्याग के ३० गाथाओं से प्रभावयुक्त जयतिहुअण स्तोत्र को श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज करते भये ॥ १६ ॥

तत्कालरोगनिर्मुक्ताः सूरयस्तेपि जज्ञिरे ।
नव्यकारितचैत्ये च प्रतिभा सा निवेशिता ॥२०॥

अर्थ—उक्त प्रभु की स्तवना से श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज भी तत्काल रोग रहित होते भये और नवीन कराये हुए मंदिर में उस प्रतिमाजी को स्थापित किया ॥ २० ॥

स्थानांगादिनवांगानां चक्रुर्वृत्तीः क्रमेण ते ।
देवता वचनं न स्यात् कल्पांतेपि हि निष्फलम् ॥२१॥

अर्थ—श्रीठाणांगसूत्र आदि नवअंग सूत्रों की टीका खरतरगच्छ उन्नतिकारक श्रीमद्अभयदेवसूरिजी महाराज क्रम से करते भये क्योंकि देवता का वचन कल्पांत काल में भी निष्फल नहीं होता है इत्यादि अनेक ग्रन्थों के प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि नवांग-टीकाकार श्रीमद्अभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालों की गुरुशिष्यपरंपरा में ही हुए हैं जिनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज और प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज भी बड़े प्रभाविक हुए। प्रमाण श्रीकल्पांतर्वाच्य में तपगच्छनायक श्रीहेमहंससूरिजी महाराज ने भिन्न भिन्न गच्छ के प्रभाविक आचार्यों के अधिकार में जो लिखा है तत्संबंधी पाठ यथा—

श्रीउकेशगच्छ में श्रीरत्नप्रभसूरि थया जिये कोरंटनगरे अने उसियानगरे समकाले एके लग्नें प्रतिष्ठा कीधी उसिया नगरीना राजादिकने प्रति-बोधीने उसवाल कीधा चित्रवालगच्छे श्रीवादीधर्म देवसूरि थया जिये गुणचंद्रदिगंबर जीत्यो खरतर-गच्छे नवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि थया जिये शासनदेवीना वचनथी स्थंभणग्रामें सेढीनदीने उपकंठे जय तिहुअण बतीसी नवीन स्तवना करीने श्रीपार्श्वनाथनी मूर्ति प्रगट कीधी धरणेन्द्र प्रत्यक्ष थयो शरीरतणो कोढ रोग उपसमाव्यो नव अंगनी

टीका कीधी तच्छिष्य श्रीजिनवल्लभसूरि थया जिये निर्मल चारित्र सुविहित पक्ष धारन करतां अनेक ग्रंथतणो निर्माण कीधो तच्छिष्य युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि थया जिये उज्जैनी चित्तोडना मंदिरथी विद्यापोथी प्रगट कीधी देशावरों में विहार करते रजपूतादिकने प्रतिबोधीने सवालाख जैनी श्रावक किधा इण अनुक्रमें श्रीखरतरगच्छमें अनेक सूरिवर अतिशयधारी थया इत्यादि अधिकार बहुत जैन शास्त्रों में लिखा हुआ प्रसिद्ध है तथापि तपगच्छ के नवीन आचार्य न्यायाम्भोनिधि अर्थात् न्यायसमुद्र आत्मारामजी ने अपने पूर्वजों के लिखे हुए वचन जोकि (खरतरगच्छे नवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि थया) इत्यादि उपर्युक्त तपगच्छ के श्रीहेमहंस-सूरिजी के सत्यवचनों को असत्य ठहराने के लिये अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ७५ में निरर्थक मिथ्या कदाग्रह से असत्य लेख लिख दिखलाया है कि "श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में हुए खर-तरगच्छ में हुए ऐसा झूठा प्रलाप काहे को करते क्योंकि आपके लिखे किसी भी ग्रंथ में श्रीअभयदेवसूरि महाराज को खरतर ऐसा विशेषण नहीं लिखा है" फिर अपने पूर्वज तपगच्छ के बड़े पंडित श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज के लिखे हुए—

सूरयोऽभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥३॥

इस श्लोक में श्रीजिनेश्वरसूरिजी के शिष्य नवांगटीकाकार श्री-अभयदेवसूरिजी महाराज से खरतरगच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ ऐसा विशेषण लिखा है इसको न्यायाम्भोनिधि अर्थात् न्यायसमुद्र आत्मारामजी ने देखकर किसी तरह से भी अपने असत्य अभीष्ट की सिद्धि नहीं होने से हार कर उसी पृष्ठ ७५ तथा ७६ में लिख दिखलाया है कि "सोमधर्मगणि विरचित उपदेश सप्ततिका ग्रंथ की साक्षी लिखी है कि—

पुरा श्रीपत्तने राज्यं कुर्वाणे भीमभूपतौ ।
अभूवन् भूतलाख्याताः श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥२॥
सूरयोऽभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥३॥

इत्यादि उत्तर—हे प्रिय मित्र ! यह लेख देख के काहे को दो दो वेरी लिख के कूदते हो ? क्योंकि सर्व पूर्वाचार्यों से विरुद्ध होने से इन सोमधर्मगणिजी महाराज का अनाभोग हुआ है कारण कि १४१२ में यह ग्रंथ रचा गया है उस अवसर में खरतरगच्छवालों ने अपनी पट्टावली में इसी तरह से माना हुआ था उस पट्टावली को देख के सरलता से लिखा है तुमही विचारिये कि जो यह खरतर विरुद श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के साथ संमत होता तो और आचार्य महाराज विशेषण लिखने में कदेभी देर न करते यह अनाभोग (अज्ञान) तो हमारे पूर्वके लेख से वालक भी समझ सक्ते हैं" इत्यादि असमंजस उत्तर लेख के प्रत्युत्तर में हमको लिखना पड़ता है कि न्यायमार्ग को त्यागकर न्यायांभोनिधि विशेषण को निरर्थक करते हुए आत्मारामजी ने उपर्युक्त विषय में शास्त्र विरुद्ध अनेक प्रकार के कूदाके मारते हुए वालजीवों को भरमाने के लिये प्रथम अपनी प्रतिज्ञापूर्वक सर्वथा महामिथ्या लेख लिखा कि—"किसी भी ग्रंथ में श्रीअभयदेवसूरि महाराज को खरतर ऐसा विशेषण नहीं लिखा है" सो तो अपने तपगच्छ के ही पूर्वज श्रीसोमधर्मगणिजी विरचित उपदेश सप्ततिका ग्रंथ में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी को खरतर ऐसा विशेषण लिखा है उसी से आत्मारामजी की उक्त प्रतिज्ञा का पराभव हो चुका तथापि नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालों की गुरु शिष्य परंपरा में नहीं हुए यह उपर्युक्त सिद्धांत पाठ विरुद्ध अपने झूठे कदाग्रह से आत्मारामजी ने श्रीअभयदेवसूरिजी को खरतर ऐसा विशेषण लिखनेवाले अपने पूर्वज श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज का अनाभोग हुआ लिखा सो भी प्रत्यक्ष महामिथ्या लिखा है क्योंकि पाटण में दुर्लभराजा तथा भीमराजा राज्य करते थे उस समय उक्त नगर में चैत्यवासियों को विवाद में जीतने से खरेतरे याने खरतर विरुद धारक श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज भूतल में प्रख्यात हुए इसीलिये उक्त सूरिजी के शिष्य नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी को

खरतर ऐसा विशेषण लिखनेवाले तपगच्छ के श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज का अनाभोग कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि शास्त्रों में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी आदि अनेक पूर्वाचार्यों ने तथा जैनमत वृक्ष में आत्मारामजी ने श्रीवर्द्धमानसूरिजी श्रीजिनेश्वरसूरिजी नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्त-सूरिजी इत्यादि लिखी हुई खरतरगच्छवालो की गुरु शिष्य परंपरा में नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी हुए लिखे हैं तथापि नहीं हुए बतलाने यह प्रत्यक्ष सर्व पूर्वाचार्य्योंसे विरुद्ध तथा अपने लिखे जैनमत वृक्ष के लेख से भी विरुद्ध केवल झूठे कदाग्रह की अज्ञानता से अनाभोग आत्मारामजी का ही सिद्ध होता है इसलिये तपगच्छ के श्रीसोमधर्मगणिजी विरचित उपदेशसप्ततिकाग्रथ में तथा खरतरगच्छ की पट्टावलियों में और दूसरे अनेक ग्रथो में चैत्यवासियो को जीतने से श्रीजिनेश्वरसूरिजी को तथा नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी आदि को खरतर ऐसा उचित विशेषण जो लिखा है सो कदाग्रही के विना कोई अल्पबुद्धि बालक भी असमत नहीं कह सकता है और हमारे पूर्वोक्त लेख मे नवांगटीकाकार श्रीमत्अभयदेवसूरिजी महाराज को खरतरगच्छवालो की गुरु शिष्य परपरा के विना अन्य गच्छ की परपरा में नहीं बतला सकता है देखिये आत्मारामजी ने जैनसिद्धात समाचारी नामक पुस्तक के प्रथम प्रारभ में नवांगटीकाकार श्रीअभय-देवसूरिजी के प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ ऐसा विशेषण लिखा है तथा उसी पुस्तक के पृष्ठ १६ मे लिखा है कि "खरतरगच्छ मे तो प्राय वेही श्रावक है कि जो श्रीजिनवल्लभसूरिजी और श्रीजिन-दत्तसूरिजी आदिकों ने नवीन प्रतिबोध के ओसवाल बनाये है" इस लेख मे नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी के शिष्य श्रीजिनवल्लभ-सूरिजी को तथा प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी को और नवीन प्रतिबोधे श्रावकों को खरतरगच्छ में लिखे हैं तथा तपगच्छ के श्रीसोमधर्म-गणिजीने उपर्युक्त पाठ में श्रीजिनेश्वरसूरिजी के शिष्य नवांगटीकार श्रीअभयदेवसूरिजी से खरतरगच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ लिखा है और आत्मारामजी ने अपनी जैनसिद्धातसमाचारी नामक पुस्तक के पृष्ठ ५ मे लिखा है कि "तुमारे कहने मुजिब तो संवत् १०८० मे (नवांगटीकाकार के गुरु) श्रीजिनेश्वरसूरिजी को दुर्लभराजा की सभा में चैत्यवासियों को विवाद में जीतने से खरतर बिरुद मिला" अब इन उपर्युक्त लेखो मे आप विचारिये कि नवांगटीकाकार श्रीमत् अभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छ वालों की परपरा के विना

अन्य गच्छ की परंपरा में हुए क्या सिद्ध हो सकते हैं? कदापि नहीं तो फिर आत्मारामजी ने अपना झूठा आडंबर क्यों दिखलाया? क्योंकि आप के लेख से अल्पबुद्धि बालक भी समझ सकते हैं कि तपगच्छ के धर्मसागरगणि विगैरः ने तो अपने पूर्वज श्रीसोमधर्मगणिजी आदि के उपर्युक्त कथन विरुद्ध खरतरगच्छ वालों के उपर महाद्वेष बुद्धि से चामुंडिक तथा सं० १२०४ में ऊष्ट्रिक हुए यह प्रत्यक्ष झूठे नामों से आक्षेप वचन अपनी रचीहुई पट्टावली आदि में लिखे हैं उनको कदाग्रह से विचार शून्यता से सच्चे मानकर आत्मारामजी ने अपने श्रीसोमधर्मगणिजी आदि पूर्वजों के सत्य वचनों से विरुद्ध सं०१२०४ में श्रीजिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति बालजीवों को लिख दिखलाई और नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में नहीं हुए इस मिथ्या कदाग्रह की सिद्धि के लिये अपने तपगच्छ के महान् पूर्वज श्रीसोमधर्मगणिजी महाराज का झूठा अनाभोग लिख दिखाया इससे अपने पूर्वजों के रचे हुए शास्त्रों से विरुद्ध प्रत्यक्ष महामिथ्या लेख के विना अन्य सिद्धि क्या दिखलाई? कुछ भी नहीं, इसीलिये धर्मसागरगणि आदि के द्वेष मूलक तथा अपने पूर्वजों के शास्त्र विरुद्ध असत्य लेख कदापि मानने योग्य नहीं हैं क्योंकि इसी प्रकार तपगच्छ के भी नाम चांडालिकमत तथा तपौष्ट्रिकमत इत्यादि १८ नाम हेतु वृत्तांत युक्त तपौष्ट्रिकमत खंडन ग्रंथ में तथा जीर्ण पत्रादिकों में लिखे हुए हैं और उनमें यह श्लोक भी लिखा है कि—

कलौ जिनमते जातो धर्मसागरनिन्हवः ।
तपौष्ट्रिकमतस्तस्मात् समुद्भूतः कदाग्रहात् ॥१॥

और इस श्लोक का यह भावार्थ लिखा है कि श्रीजिनमत के विषे इस कलियुग में संवत् १६१७ के लगभग धर्मसागर नाम का निन्हव हुआ उसी से तपौष्ट्रिकमत की उत्पत्ति हुई इत्यादि।

[प्रश्न] तपगच्छ के यह उक्त नाम किस हेतु से हुए हैं?

उत्तर—हे भव्य! किसी अवसर में यह भी तुमको बतला देवेंगे और अंचलगच्छ की पट्टावली आदि ग्रंथों में **हुंनंदेंद्रिय** श्लोक में **गाढक्रियस्तापसः** इस वाक्य से तपगच्छ का तापस नाम लिखा है और एक दूसरे ग्रंथ में तपौष्ट्रमत नाम लिखा है इसलिये यह उपर्युक्त नाम तथा सं० १६१७ के लगभग तपौष्ट्रिकमतोत्पत्ति तपगच्छवालों

को सत्य ही माननी पड़ेगी क्योंकि सवत् १३०० सौ से पहिले के रचे किसी भी ग्रंथ में श्रीजगच्चद्रसूरिजी महाराज को बतीस दिगंबर जैनवादिराजो को विवाद में जीतने से राजसभा में अमुक राजा की तर्फ से हीरला विरुद मिला लिखा हो तथा श्रीजगच्चद्रसूरिजी ने जावज्जीव आचाम्ल तप किया इसवास्ते अमुक राजा ने अमुक नगर में तपा विरुद वा तपगच्छ नाम दिया यह संपूर्ण अधिकार सं० १३०० सो के पहिले के रचे हुए ग्रथो में लिखा हो तब तो सत्य माना जायगा अन्यथा तपा नाम मात्र किसी ने पीछे से लिखा होगा तो झूठा ही समझा जायगा और सं० १३०० सो के पीछे के ग्रथो में उक्त अधिकार पूरे पुरा लिखा होगा तो भी उन ग्रथकारों का अनाभोग हुवा ऐसा तपगच्छवालो को मानना ही पड़ेगा क्योंकि—

पुरा श्रीपत्तने राज्यं कुर्वाणे भीमभूपतौ ।
अभूवन् भूतलाख्याताः श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥ २ ॥
सूरयोऽभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥

इत्यादि उपर्युक्त पाठ के रचनेवाले तथा खरतरगच्छ की पट्टावली को देख के नवाङ्गटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छ में लिखनेवाले अपने तपगच्छ के महान् पूर्वज श्रीसोमधर्मगणीजी का अनाभोग हुआ ऐसा आत्मारामजी ने लिख बताया है इसलिये हम भी कहते हैं कि संवत् १५०० सो १६०० सो के लगभग रची हुई तपगच्छ की पट्टावली को देख के आत्मारामजी ने अपने रचे हुवे जैनतत्त्वादर्श आदि ग्रथो में लिखा है कि श्रीजगच्चद्रसूरिजी ने जावज्जीव आचाम्ल तप किया इस वास्ते राजा ने तपगच्छ नाम दिया और ३२ दिगंबर वादियों को जीतने से हीरे की तरह अभग्न रहे इसलिये राजा ने श्रीजगच्चद्रसूरिजी को हीरला विरुद दिया इत्यादि अधिकार लिखने में आत्मारामजी का भी अनाभोग हुवा है ऐसा ही मानना उचित है और इस अनाभोग को अल्पबुद्धि बालक भी समझ सकता है क्योंकि बृहत्कल्पसूत्र टीकाकार श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी की तरह श्रीजगच्चंद्रसूरिजी के मुख्य शिष्य श्रीदेवेन्द्रसूरिजी महाराज ने भी अपने रचे हुवे धर्म रत्न प्रकरणादि की टीकाओ में बतीस दिगंबर वादिराजो को जीतने से अमुक नगर में अमुक राजा ने हीरे की तरह अभग्न रहे इसलिए

श्रीजगच्चंद्रसूरिजी को हीरला विरुद दिया यह नहीं लिखा है और श्रीजगच्चंद्रसूरिजी ने जावज्जीव आचाम्ल तपस्या की इसलिये अमुक नगर में अमुक राजा ने तपगच्छ नाम दिया इत्यादि अधिकार नहीं लिखा है तथा हमारे दादा गुरु श्रीमणिरत्नसूरिजी यह भी नहीं लिखा है और मेरा तथा मेरे गुरु श्रीजगच्चंद्रसूरिजी का वृद्ध गच्छ है यह भी नहीं लिखा और हमारे गुरु श्रीजगच्चंद्रसूरिजी तथा हम श्रीदेवेंद्र-सूरिजी तपगच्छ में हुए हैं यह भी नहीं लिखा है किंतु स्पष्ट अपना चित्रवालक गच्छ लिखा है देख लीजिये श्रीधर्मरत्न प्रकरण टीका की प्रशस्ति में श्रीदेवेंद्रसूरिजी के लिखे हुवे श्लोकों का पाठ यथा—

क्रमशश्चित्रवालकगच्छे कविराजराजिनभसीव ।
श्रीभुवनचन्द्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ १ ॥
तस्य विनेयः प्रशमैकमंदिरं देवभद्रगणिपूज्यः ।
शुचिसमयकनकनिकषो बभूव भुवि विदितभूरिगुणः
तत्पादपद्मभृङ्गा निस्संगाश्चंगतुंगसंवेगाः ।
संजनितशुद्धबोद्धा जगति जगच्चंद्रसूरिवराः ॥ ३ ॥
तेषामुभौ विनेयौ श्रीमान् देवेन्द्रसूरिरित्याद्यः ।
श्रीविजयचंद्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्तिभरः ॥ ४ ॥
स्वान्योरुपकाराय हि श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा ।
धर्मरत्नस्य टीकेयं सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ५ ॥

भावार्थ—अनुक्रम से कविराज श्रेणी [पक्ष तारागण] युक्त आकाश के तुल्य चित्रवालकच्छमें श्रेष्ठ तेजस्वी गुरु श्रीभुवनचंद्रसूरिजी उदय को प्राप्त हुए उनके शिष्य प्रशांत तथा पवित्र शास्त्रज्ञानवाले सुप्रसिद्ध और बहुत गुणवाले श्रीदेवभद्रगणि हुए उनके शिष्य निस्संग और वैराग्य तथा ज्ञान गुणयुक्त श्रीजगच्चंद्रसूरिजी हुए उनके दो शिष्य प्रथम श्रीमान् देवेन्द्रसूरिजी दूसरे बहुत कीर्त्तिवाले श्रीविजय चंद्रसूरिजी हुए उनमें श्रीदेवेन्द्रसूरिजी ने स्वपरोपकार के लिये धर्म-रत्न प्रकरण की सुखबोधा नामकी यह टीका बनाई है, महाशय शांति

विजयजी को विदित हो कि आपके तपगच्छ की और हीरलाबिरुदकी उत्पत्ति यदि श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी से हुई होती तो उनके मुख्य शिष्य श्रीदेवेन्द्रसूरिजीमहाराज उपर्युक्त प्रशस्तिके श्लोकोंमें अवश्य ही लिखते परंतु वास्तव मे श्रीजगच्चद्रसूरिजी से तपगच्छ की उत्पत्ति हुई नहीं है किंतु सिद्धांत विरुद्ध तपामतकी उत्पत्ति विशेषता से उपाध्याय धर्मसागरगणी से हुई है क्योंकि धर्मसागरगणि के बनायेहुवे प्रवचनपरीक्षा आदि सिद्धातविरुद्ध कदाग्रह ग्रंथों से ही तपामत विशेपता से सिद्ध होता है। इसीलिए इस ग्रथ में सिद्धांतविरुद्ध तपामत का मडन पूर्वक खडन शास्त्रपाठो से करने में आया है। इसी से पाठकगण को श्रीमत्खरतरगच्छवालो का जय और तपामत का पराजय स्पष्ट विदित कर दिया है। इसीतरह अणहिलपुरपाटण में सवत् १६१७ में खरतरगच्छ नायक वादिकंदकुद्दाल श्रीमज्जिनचद्रसूरीश्वरजी महाराज चातुर्मासी-स्थित हुए थे उस समय श्रीविजयदानसूरिजी के शिष्य धर्मसागरगणिने नवाग सूत्र टीकाकार श्रीमत् अभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालों की परपरा में नहीं हुए इस प्रकारकी शास्त्रविरुद्ध नवीन मिथ्या प्ररूपणा की तब खरतरगच्छ के उक्त सूरिजी ने उक्त विषय में सभा समक्ष शास्त्रों के पाठो से धर्मसागरगणि को मिथ्याप्रलापी ठहराया इस पराजय से तपगच्छवालों की अपकीर्त्ति आज दिन पर्यंत होरही है अतएव तपगच्छवाले चाहे जीतने उक्त विषय में शास्त्रविरुद्ध मिथ्या-प्रलाप तथा कुतर्क करे तथापि यह अपकीर्त्ति मिटने की नहीं है—

और सवत् १६४२ में श्रीहीरविजयसूरिजी के शिष्य श्रीविजयसेनसूरिजी ने श्रावण या भाद्रपदमासकी वृद्धि होने से ८० दिने या दूसरे भाद्रपद अधिकमास में ८० दिने पर्युषणपर्व करने और कार्त्तिकमास की वृद्धि होने से स्वाभाविक प्रथम कार्त्तिक सुदि १४ को ७० दिने चातुर्मासिक प्रतिक्रमण नहीं करना किंतु पर्युषण के बाद उस क्षेत्र में १०० दिन रहकर दूसरे कार्त्तिक अधिकमासकी सुदि १४ को पचमासिक प्रतिक्रमण करके विहार करना यह प्रत्यक्ष श्रीसमवायांग सूत्र तथा श्रीकल्पसूत्रादि सिद्धातपाठ विरुद्ध विवाद उक्त सूरिजीने खरतर गच्छ के श्रीजिनचद्रसूरिजी के शिष्य के साथ लगातार चौदहरोज तक राजाकी सभा में किया उसमें भी सिद्धात पाठानुवर्त्ति खरतर-गच्छवालो का प्रतिदिन जय जयकार हुआ और आगम पाठों से प्रतिकूल चलनेवाले तपोष्ट्रिकमतावलबियो का नित्य अत्यत पराजय हुआ इसलिये तपगच्छ के श्रीविजयसेनसूरिजी रुष्ट होकर अहमदाबाद

भाग गये वहांपर भी उक्तसूरिजी के शिष्यने खरतरगच्छवालों के साथ श्रीकल्पसूत्रादि सिद्धांत विरुद्ध इसतरह विवाद प्रारंभ किया था कि गर्भापहार के द्वारा श्रीवीरतीर्थंकर परमात्मा का त्रिशलामाता की कुक्षि में आना नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप ही है इस विवाद में भी श्रीवीरपरमात्मा का त्रिशलामाता की कुक्षि में आना प्रत्यक्ष उच्चगोत्रविपाकोदयरूप अत्यंतप्रशंसनीयरूप कल्याणकरूप ही मानना उचित है इस प्रकार खरतरगच्छवालों की जय कीर्त्ति अति विस्तृत हुई और तपगच्छ के श्रीविजयसेनसूरिजी का तथा उनके शिष्य का पराजय के साथ राजसभा में तथा सारे शहर में अपकीर्त्ति (निंदा) हुई कि यह लोग अपने श्रीवीरपरमात्मा के भी निंदक है इसी लिए गर्भापहार के द्वारा श्रीवीरपरमात्मा का त्रिशला माता की कुक्षि में आना नीचगोत्रविपाकरूप अत्यंतनिंदनीयरूप अकल्याणकरूप बतलाते हैं सो शास्त्रविरुद्ध सर्वथा अनुचित प्ररूपणा करते हैं ।

प्रियपाठकगण ! खरतरगच्छवालों के तथा तपगच्छवालों के आपस में जिस जिस मंतव्य में विरोध है उस उस मंतव्य में शास्त्रों के पाठों से परस्पर समालोचना के पूर्ण विचार द्वारा पक्षपात रहित देखा जाय तो तपगच्छवालों का ही पराभव होता है इसी लिये श्रीधर्म विजयजी के शिष्य विद्याविजय ने निर्विचार से "विजयप्रशस्तिसार" नामक पुस्तक में लिखा है कि "धर्मसागर के बनाए हुए प्रवचन परीक्षा ग्रंथ में खरतरगच्छवालों से श्रीविजयसेनसूरीश्वर का शास्त्रार्थ हुआ" इत्यादि लेख लिखकर अपने श्रीविजयसेनसूरिजी का तथा उनके शिष्य का जय और खरतरगच्छवालों का पराजय झूठा लिखा है क्योंकि उस विजयप्रशस्तिसार नामक पुस्तक के अंदर दोनों गच्छ के पर्युषण आदि मंतव्य संबंधी सिद्धांतों के पाठ हमने जैसे इस पुस्तक के ३ भागों में लिखे हैं वैसे लिखकर जय पराजय दिखलाया होता तो सत्यासत्य मानने में आता सो शास्त्र पाठ नहीं लिखकर केवल अपने उक्त सूरिजी की तथा उनके शिष्य की झूठी बड़ाई तथा अपना पराजय के द्वेषभाव से श्रीजिनआणारंगिखरतरगच्छवालों को औष्ट्रिक कुतीर्थिक उलूक लिखे हैं और धर्मसागरगणि ने भी अपने बनाए हुए प्रवचन परीक्षादि ग्रंथों में उक्त वाक्य द्वेष से लिखे हैं इसी लिये उस ग्रंथों के कटुवचनों को श्रीविजयदानसूरिजी आदि ने अप्रमाणिक तथा जलशरण किया और शास्त्रविरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणा

के कारण धर्मसागरगणि को उन्हीं के उक्त गुर्वादिने गच्छ बाहर किये थे तथा शास्त्रविरुद्ध धर्मसागरगणि के अनुचित वचनो में दुराग्रह रखनेवाले उनके शिष्य प्रशिष्य आदि भी उक्त दंड के भागी गुरु आज्ञा के लोपी हो इत्यादि वृत्तांत तपगच्छ के उक्त सूरिजी आदि ने द्वादशजल्पपट्ट ग्रंथ मे और कुमतिअहिविषजाङ्गुलि आदि ग्रंथ में लिखा है तथापि उस मर्यादा को त्याग के आत्मारामजी ने तथा विद्याविजय ने औष्ट्रिक चामुंडिक कुतीर्थिक उलूक श्रीजैनमतावलंबिखरतरगच्छवालो को लिखे हैं सो सर्वथा अनुचित है क्योंकि द्वेष से ऐसे अनुचित कटुवचन लिखने लिखवाने छपवाने सबको बुरे ही मालुम देते हैं वास्ते शास्त्रपाठो के द्वारा प्रियवचनो से सत्यासत्य मंतव्य को लिखना उचित है। परन्तु जब प्रथम तपगच्छवालों के पूर्वजोने खरतरगच्छ के श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज के ऊपर तथा श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज आदि के उपर द्वेष बुद्धि से चामुंडिक उष्ट्रिक इत्यादि कपोलकल्पित अनेकानेक आक्षेप के कटुवचन बोलने लिखने शुरू किये तब खरतरगच्छवालो ने भी तपोष्टिक लिखे हैं और वर्त्तमान काल में आत्मारामजी ने तथा विजयधर्मसूरिजीने अपने शिष्य विद्याविजय आदि के द्वारा ऊष्ट्रिक कुतीर्थिक उलूक इत्यादि खेदजनक कटुवचन-खरतरगच्छवालो के ऊपर आक्षेप के अभिप्राय से जैनसिद्धांतसमाचारी विजयप्रशस्ति विजयप्रशस्तिसार इत्यादि पुस्तको मे छपवाकर प्रथम जब प्रकाशित किये हैं तब हमको भी छापे द्वारा तपोष्ट्रिक आदि अनुचित वचन प्रकाशित करने पड़े हैं क्योंकि श्रीखरतरगच्छिय जैनमतावलंबियों को ऊष्ट्रिक कुतीर्थिक उलूक लिखने क्या उचित है ? नहीं तो अपनी कमजोरी के प्रदर्शक अनुचित कटुवचन त्यागकर सत्यासत्य या उचितानुचित मंतव्य को ही दिखलाना मुनासिब है इसीलिये उक्त महाशय याद रखे कि अनुचित कटुवचन लिखने छपवाने अच्छे मालुम देते हैं तो सुनने भी बुरे मालूम देंगे वास्ते शास्त्रोंके पाठोको लिखकर उनके अनुकूल सभ्यता से प्रत्युत्तर प्रकाशित करे उससे तपगच्छ का जयपराजय पाठकगण समझ सकते हैं अन्यथा नहीं इत्यलं विस्तरेण।

[प्रश्न] उक्त जैनपत्र के लेखमें शांतिविजयजी ने लिखा है कि दादाजी के सामने बोला हुआ प्रसाद थोडासा चढ़ाकर बाकी का श्रावकों में बांटदेते हैं और कहते हैं लीजिये यह गुरुदेव का प्रसाद है इसी तरह नारियल को तोड़कर थोड़ासा दादाजी के चरणों के

सामने चढ़ादेते हैं और वाकी का वांट देते हैं जैनशास्त्रों में बयान है देवद्रव्य गुरुद्रव्य खाना नहीं चाहिये दादाजी के चरणों के सामने चढ़ाने के लिये लाई हुई चीज़ पूरेपूरी चढ़ादेना चाहिये खावत नारियल या सेर दो सेर पांच सेर जितना लाये सव प्रसाद चढ़ादेना मुनासिव है उसमें से विलकुल खाना नहीं चाहिये क्योंकि वो गुरु द्रव्य होचुका कई जगह देखा जाता है दादाजी का प्रसाद वाँटते हैं इसका क्या सवब है कोई खुलासा करे ?

[उत्तर] दादाजी को केवल गुरुपने की भावना से और संपूर्ण प्रसाद चढ़ादेने की भावना से प्रसाद मानने में नहीं आता है किंतु दादाजी श्रीजिनदत्तसूरिजी तथा श्रीजिनकुशलसूरिजी आदि महाराज देवभव को प्राप्त हुए है और भक्तलोगों के मनोवांछित पूर्ण करते हैं इसलिये वह दादागुरुदेव कहलाते है अतएव प्रायः सवी गच्छवाले समकू तथा अपने गुरुदेव में श्रद्धावान् श्रावकगण अन्य मिथ्यात्वीदेव के सामने प्रसाद चढ़ाना तथा वाँटना और खाना मिथ्यात्व दोष के भय से अंगीकार नहीं करके उपर्युक्त दादागुरुदेव के चरणों के सामने भक्तश्रावक आदि इसतरह मानता मानते हैं कि हेगुरुदेव ! आप प्रसन्न होके मेरा अमुक मनोवांछितकार्य पूर्णकरेंगे तो मैं आपको अमुक प्रसाद चढ़ाकर सवको वाँटूंगा इस प्रकार की मनोगतभावना से उक्त दादागुरुदेव की देवपने के भवकी भावना से उनकी मनोवांछित पूर्ण संबंधी शक्ति का मनमें स्मरण करके प्रसाद चढ़ाना और वाँटदेना यह दोनों मनकी धारणा से मानने में आता है इसलिये कार्य पूर्ण होने पर उपर्युक्त भावना के अनुसार नारियल आदि प्रसाद उक्त दादागुरुदेवके चरणों में चढ़ाना तथा अलग रक्खा हुआ शेषप्रसाद वांटदेना यह दोनों श्रद्धावृद्धि के लिये करते हैं । क्योंकि इसतरह देखने में भी आता है कि पर्युषणापर्व में श्रीमहावीर तीर्थंकर के जन्मके दिन लड्डू पेड़े वतासे मिश्री और नारियल तोड़कर गुरु तथा स्थापनाचार्य महाराज के आगे वा कल्पसूत्र के पानोंपर थोड़ासा प्रसाद अपनी भावना के अनुसार चढ़ादेते हैं और वाकी का शेष अलग रक्खा हुआ प्रसाद श्रावक लोग आपस में थोड़ा थोड़ा वाँटते हैं और खाते हैं यह प्रवृत्ति श्रद्धा-भक्ति तथा उत्साह की वृद्धि के अभिप्राय से देखने में आती है किंतु देवद्रव्य या गुरुद्रव्य वा ज्ञानद्रव्य भक्षण करने के अभिप्राय से प्रायः नहीं है क्योंकि उन लोगों का अभिप्राय पहिले से ही वांटदेने का और खाने का रहता है और भी देखिये श्रीपालरासमें श्रीविनयविजयजी ने लिखा है कि—

कुसुम माला निज कंठथी रे लो। हाथतणुं फल दीध रे जिणेसर॥ प्रभुपसाय सहु देखतां रे लो। उंबरे ए बेहु लीध रे जिणेसर ॥ तिहुअणनायक तूं वड़ो रे लो। तुम सम अवर न कोय रे जिणेसर ॥ तिहु० ॥ मयणा काउस्सग्ग पारिओ रे लो। हियड़े हर्ष न मायरे जिणेसर ॥ ए सही शासन देवता रे लो। कीधो अम सुपसाय रे जिणेसर ॥ तिहु० ॥

अर्थात् हे त्रिभुवननायक! आप बड़े हैं आपके समान दूसरा देव कोई नहीं है ऐसे श्रीऋषभदेवस्वामी के कंठ से फूलकी माला तथा प्रभु के हाथ में रहा हुआ बीजोरे का फल शासन देवताने प्रभुका प्रसाद रूप दिया सो सबके देखते हुए उंबर राणाने उन दोनों वस्तुओं को ग्रहण किया और श्रीजिनेश्वरदेव में अत्यंत श्रद्धावाली मयणासुंदरी कायोत्सर्ग पालके हृदय में हर्ष न समाने से कहने लगी कि यह सब शासन देवता ने हमको सुप्रसाद प्राप्त किया एवं मयणासुंदरी ने श्रीजिनस्नात्र जल तथा पंचामृत जल ग्रहण करके उंबरराणा [श्रीपालकुमार] के अंग में लगाया और ७०० कुष्टियों के शरीरपर नांखा एवं वर्तमानकाल में भी श्रीजिनस्नात्रजल को श्रावकलोग अपने अंग में लगाते हैं श्रीशांतिस्नात्र का पंचामृतजल ग्रहण करके अपने घर में छिड़कते हैं श्रीगुरुमहाराज का वासक्षेप शिरपर ग्रहण करते हैं इत्यादि उपर्युक्त प्रवृत्ति अपनी शुद्धभावना के अनुसार श्रद्धावृद्धि के लियेही देखने में आती है। अगर ऐसा नहीं मानोगे तो आपके कथनानुसार श्रीमहावीरदेव का जन्म के निमित्त चढ़ाने को लाये हुए हजारों पुरुषों ने हजारों नारियल तथा हजारों गोले नह सावत के सावत पूरेपूरा चढ़ादेना होगा उसमें से बिलकुल बाँटना और खाना नहीं होगा क्योंकि वह भी देवद्रव्य होचुका ऐसा मानना पड़ेगा कई जगह देखा जाता है श्रीमहावीरदेव का जन्म का प्रसाद चालोरी बाँटके खाते हैं इसका क्या सबब है सो अब शांतिविजयजी खुलासा करें?

[प्रश्न] उक्तजैनपत्र में शांतिविजयजी ने लिखा है कि "प्रतिष्ठा कराते वख्त कई जैन मंदिरों में काले गोरे भैरवकी मूर्त्ति एक तर्फ

स्थापन कराते हैं और उस भैरवकी मूर्त्ति के हाथमें मनुष्यका मस्तक कटा हुआ रहता है ऐसी मूर्त्ति जैनमंदिर में स्थापन करना किस जैन शास्त्रों में लिखा है ?

[उत्तर] यह कथन ढूंढियों की तरह द्वेषभाव का मालुम होता है अस्तु इस प्रकारकी प्ररूपणा करने से अनेक तरहकी बाधा पहुँचेगी क्योंकि जैनशास्त्रों के अनुसार जैनमंदिरों में कई अधिष्ठाता देव देवियों की मूर्त्तियां इस प्रकारकी स्थापन की हुई तथा चित्री हुई देखने में आती हैं कि माणिभद्रकी मूर्त्ति मनुष्य का मस्तक फोड़ने के लिये हाथ में भयंकर मुद्गरधारी तथा कोई मूर्त्ति मनुष्य को वा अन्यको भेदने के लिये त्रिशूलधारी एवं सर्पधारी शिरच्छेदक चक्रधारी आदि अनेकतरहकी प्रतिष्ठाके समय स्थापन की जाती हैं वह क्या जैनशास्त्र विरुद्ध मानी जायगी ? नहीं इसीतरह काले गोरे भैरव यह क्षेत्रपाल है सिद्धचक्र के अधिष्ठायक देव हैं अतएव तपगच्छ के श्रीविनयविजयजी उपाध्याय विरचित श्रीपालरास में सिद्धचक्र के उक्त अधिष्ठाता का स्वरूप इस तरह लिखा है कि—

डमडम डमरू डमकते रे मुखफूंके हुंकार रे ।
क्षेत्रपाल तिहां आविया रे हाथे लेइ तरवार रे ॥ जी० ॥
वीरबावन्न परवर्या रे हाथे विविध हथियार रे ।
छड़ीदार दोरे छड़ा रे चार चतुर पड़िहार रे ॥जी०॥
बैठी मृगपति वाहने रे चक्र भमाड़े हाथ रे ।
चक्केसरी पाऊ धारिया रे देवदेवी बहु साथ रे ॥जी०॥
हरयो कुबुद्धिमित्रने रे जिणे वांकीमति दीध रे ।
क्षेत्रपाले तव ते ग्रही रे खंड खंड तनु कीध रे ॥जी०॥
ते देखी बिहितो घणू रे मयणा शरणे पईठ रे ।
शेठ पशू परे धुजतो रे देखी चक्केसरी दिठ रे ॥जी०॥
जा रे मूक्यो जीवतो रे सतीशरण सुपसाय रे ।
अंते जाइश जीवथी रे जो मन धरीश अन्याय रे ॥जी०॥

प्रियबंधु शांतिविजयजी से हम यह कहते हैं कि देखिये आपके उक्त उपाध्यायजी ने उपर्युक्त गाथाओं में मनुष्य के मस्तक को तलवार से काटनेवाला तथा शरीर को खड खड करनेवाला क्षेत्रपाल आदि देवताओं का जो स्वरूप लिखा है वह जैनशास्त्रों में है या नहीं? अगर कहाजाय कि है तो जैनधर्म के वैरियों का शिक्षा देने के लिये और जैनधर्म तथा जैन धर्मी जीवों की रक्षा और कुशलमंगल के लिये उपर्युक्त अधिष्ठायक देवी देवताओं की मूर्त्तियां जैनमंदिर में स्थापन करने में आतींहैं उस विषय में आपको तर्क करना सर्वथा अनुचित है।

इति श्रीजिनशासननायकश्रीमहावीरजिनेन्द्र मंगलाय भवतु शांति शांति।

॥ प्रशस्ति पाठ ॥

गच्छे खरतरेऽभूवन् वाचंयमपुरंदराः ।
श्रीमन्मोहनलालाख्याः सत्योपदेशतत्परा. ॥१॥

अर्थ—श्रीखरतरगच्छ में सदुपदेशतत्पर मुनिनायक श्रीमन्मोहनलालजी महाराज हुए ॥ १ ॥

तेषामाज्ञापत्रेण स्व-समाचारिकृतादराः ।
शिष्या अभूवन् पन्यास श्रीमद्यशोमुनीश्वराः ॥२॥

अर्थ—श्रीमोहनलालजी महाराज का सदुपदेश रूप आज्ञापत्र के द्वारा शास्त्रसमत ५० दिने पर्युषणा आदि अपने खरतरगच्छ की समाचारी अंगीकार करनेवाले शिष्य पन्यास श्रीमद्यशोमुनिजी महाराज हुए ॥ २ ॥

तेषामाज्ञानुसारेण शास्त्रपाठप्रमाणतः ।
लिखितोऽयं मया ग्रंथो केशराभिधसाधुना ॥३॥

अर्थ—श्रीयशोमुनिजी महाराज की आज्ञा के अनुसार शास्त्रपाठों के प्रमाणों से यह ग्रंथ केशरमुनि ने लिखा ॥ ३ ॥

आगमाद्विरुद्धं यत्स्यात मिथ्यादुष्कृतमस्तु तत् ।
जिनवाणी प्रमाणं मे भवत्वत्र भवे भवे ॥४॥

अर्थ—आगम से विरुद्ध जो लिखाना हो वो मिथ्या दुष्कृत हो और इस भव तथा भवोभव में मेरे को श्रीजिनराज की वाणी प्रमाण हो ॥ ४ ॥

निवेदन ।

महाशय ! धर्मानुरागी सज्जनादि वृंद !

आप लोगों से सविनय निवेदन है कि कुछ प्रमाद से या प्रेस में छपने संबंधी इस ग्रंथ में त्रुटि रह गई हो, उसको शुद्धता से पढ़ें । क्योंकि भूल होना छद्मस्थ का सहज स्वभाव है और भी प्रार्थना है कि सत्यग्राही होकर असत्य मंतव्य को अवश्य त्याग करें । इत्यलम् ॥

आपलोगों का कृपाकांक्षी, निवेदक—

बुद्धिसागरमुनिः